ज्ञानदिवाकर, मर्यादा शिष्योत्तम, प्रशांतमूर्ति
आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज की स्वर्णजयंती वर्ष के उपलक्ष में :

महाकवि बूचराज विरचित

मदनजुद्ध काव्य

सम्पादन-अनुवाद

डॉ० (श्रीमती) विद्यावती जैन

एम० ए० (द्वय, स्वर्णपदक प्राप्त) पी-एच० डी०
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष—हिन्दी विभाग
म० म० महिला कालेज
(वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय) आरा (बिहार)

अर्थ सहयोगी
स्व० मांगीलाल श्री पाटोदी की स्मृति में धर्मपत्नी श्रीमती महावीरी देवी
पाटोदी तत्पुत्र कमल, अशोक, दिलीप, प्रदीप, साकम

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

प्रस्तावना विषयसूची

	पृ० सं०
प्रति परिचय	११
कवि परिचय	११
कवि का समय	१२
कवि का निवासस्थल	१२
कवि के नामों में विविधता	१२
गुरु-परम्परा	१३
रचनाएँ–	
(1) मयणजुद्ध-कव्व, (2) संतोष जयतिलकु,	
(3) बारहमासा-नेमीश्वर का (4) चेतन पुद्गल धमाल,	
(5) नेमिनाथ वसन्तु, (6) भुवनकीर्ति-गीत	
(7) टंडाणा-गीत, (8) नेमि-गीत, (9-20) अध्यात्म गीत एवं एक पद	१४-१५
मयणजुद्धकव्व : एक काव्य-रूपक	१६
मयणजुद्ध कव्व : पृष्ठभूमि	१६
रूपक-काव्य का स्वरूप एवं परम्परा	१६
रूपकों की प्राचीनता (रूपकों का विकास)	१६
अर्द्धमागधी आगम-साहित्य–	
प्रबोध चन्द्रोदय, मयणपराजयचरिउ, मोह-पराजय	
प्रबोध-चिन्तामणि, ज्ञानसूर्योदय, मदनपराजय	१७-१९
प्रतीकात्मक जैन-कथा-साहित्य	१९
काम सम्बन्धी प्राचीन काव्य-परम्परा	२०
मयणजुद्ध-काव्य की कथावस्तु	२१
मयणजुद्ध-काव्य का कथास्रोत	२३
मयणजुद्ध कव्व की कथावस्तु में अन्तर	२४
मयणजुद्ध-कव्व में काव्यात्मकता–	
रसयोजना–	
(1) शृंगार रस, (2) हास्य रस, (3) रौद्र रस (4) वीर रस	
(5) भयानक रस (6) वीभत्स रस (7) शान्त रस ।	२६-२९

छन्द-विधान–

(1) शार्दूलविक्रीडित-छन्द (2) वस्तु-छन्द (3) मडिल्ल छन्द
(4) पाथडी-छन्द (5) पद्धडी-छन्द (6) गाथा-छन्द
(7) रोड छन्द (8) एकावलो-छन्द (9) रंगिक्का-छन्द
(10) चउपइया-छन्द (11) षट्पद-छन्द (12) दोहा-छन्द
(13) आभानक-छन्द (14) गीता छन्द । ३२-३६

अलंकार-योजना–

अनुप्रास, श्लेष, पुनरुक्ति, वीप्सा, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, ३७-४१
उदाहरण, समुच्चय ।

मयणजुद्ध का भाषा-सौन्दर्य–

अपभ्रंश-शब्द, संस्कृत तत्सम-शब्द, राजस्थानी-शब्द
तद्भव, ब्रज, देशी, अरबी-शब्द । ४२-४३

मयणजुद्ध की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव–

(1) उकार बहुल, (2) उपधा स्वर की सुरक्षा (3) आदि स्वर लोप
(4) अपभ्रंश में ऋ के स्थान पर रि का प्रयोग
(5) पद के अन्त में दीर्घ स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर का उच्चारण
(6) अपभ्रंश में एक स्वर के स्थान पर दूसरा स्वर
(7) दन्त व्यंजनों के स्थान पर मूर्धन्य का प्रयोग
(8) वर्णागम (9) वर्णविपर्यय (10) वर्णलोप । ४३-४४

प्रस्तुत ग्रन्थ में भाषा व्याकरणिक प्रवृत्तियाँ–

सर्वनाम--- ४४

पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, निजवाचक, प्रश्नवाचक

कारक— ४५

कर्ता, कर्म, करण, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण,

परिसर्ग— ४५

क्रियाएँ-भूतकाल— ४५

भूतकृदन्त, वर्तमान काल, भविष्यत काल

क्रिया-विशेषण– ४६

कालवाचक, स्थानवाचक, रीतिवाचक, परिमाणवाचक

ध्वन्यात्मकशब्द— ४६

क्रियापद— ४६

धातुप्रयोग— ४७

सूक्तियाँ– ४७

वर्णन प्रसंग–

युद्ध प्रसंग ४८

युद्धवर्णन प्रसंग में समानता ५०

चन्दबरदायी के पृथ्वीराज रासो से युद्ध वर्णन की मान्यता ५०

वाद्य एवं संगीत ५१

ऋतु-वर्णन ५२

अस्त्र-शस्त्र ५२

जैनेतर-सन्दर्भ ५२

कामी-नारियाँ ५३

कामी-पुरुष ५३

सौन्दर्य-प्रसाधन ५३

आभूषण एवं वस्त्र ५३

लोक व्यवहार–

पान का बीड़ा देना ५४

प्रणाम एवं चरणस्पर्श ५४

आरती उतारना ५५

बधावणा ५५

शकुन ५५

अशकुन ५६

— ● —

प्रस्तावना

प्रति परिचय—

मयण-जुद्ध काव्य की उक्त प्रति आमेर शास्त्रभण्डार, महावीर-भवन, जयपुर (राजस्थान) के संग्रह के वेष्टन सं० 287 के गुटका सं० 49 में उपलब्ध है । इस में कुल 24 पत्र हैं, जिनमें पद्यों की कुल संख्या 159 है । इस प्रति में प्रतिलिपिकाल एवं प्रतिलिपिकार का कोई उल्लेख नहीं है । अध्ययन-क्रम में हमने प्रस्तुत प्रति का सांकेतिक नाम "क" दिया है ।

यह प्रति बड़ी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है । लेकिन इसके पाठ प्रायः शुद्ध हैं । मयणजुद्ध की अन्य चार प्रतियाँ राजस्थान के विभिन्न शास्त्र-भण्डारों में भी उपलब्ध हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

पत्र सं०	प्रतिलिपि		काल	पद्य सं०
2.	शास्त्रभण्डार, दि० जैन बड़ामन्दिर, जयपुर -		— पत्र संख्या 41	158 (ख) ॥
3.	शास्त्रभण्डार नागदामन्दिर, बूँदी	22	—	142 (ग)
4.	भट्टारकीय शास्त्रभण्डार, अजमेर	20	वि०सं० 1619	158
5.	शास्त्रभण्डार दि० जैन ठोलियान, जयपुर -	20	वि०सं० 1712 ॥ ॥	158 ।

प्रस्तुत प्रति का पाठ-संशोधन उक्त प्रथम दो प्रतियों के आधार पर किया गया है । इस प्रसंग में दि० जैन बड़ा मन्दिर, जयपुर प्रति का सांकेतिक नाम "ख" एवं नागदा शास्त्रभण्डार, बूँदी की प्रति को "ग" नाम दिया गया है । अन्य प्रतियाँ उपलब्ध न रहने से उनके पाठान्तर एकत्र नहीं किए जा सके ।

कवि-परिचय

अन्य अनेक जैन महाकवियों की भाँति महाकवि बूचराज भी यशोकामना से निर्लिप्त प्रतीत होते हैं । अतः इनके परिचय के विषय में कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती । कवि की स्वयं की कृतियों एवं समकालीन रचनाओं से जो सामान्य जानकारी प्राप्त होती है, उसीके आधार पर यहाँ उनका सामान्य परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

कवि बूचराज का सर्वप्रथम उल्लेख वि० सं० 1582 में रचित "सम्यक्त्व कौमुदी" की प्रशस्ति में हुआ है। प्रशस्ति के अनुसार राजस्थान की चम्पावती नगरी के शासक महाराज रामचन्द्र के समय खण्डेलवालवंशीय, साह गोत्र वाले श्रावक काथिल एवं उनके परिवार ने "सम्यक्त्व कौमुदी" की प्रतिलिपि कराकर ब्रह्म बूचराज को प्रदान की थी। यथा—

"संवत् 1582 वर्ष फाल्गुन सुदी 14 शुभदिने श्री मूलसंघे बलात्कारगण सरस्वती नगरे भट्टारक प्रभाचन्द्र देवास्तदाम्नाये चंपावती नामनगरे महाराव श्रीरामचन्द्र राज्ये खंडेलवालान्वये साह गोत्रे संघभारधुरंधर सा० काथिल भार्या कावलदे तस्य पुत्र जिनपूजापुरन्दर सा० गूजर भार्या प्रथम लाछी दुतीय सरो"—एतान् इदं शास्त्रं कौमुदी लिखाप्य कर्मक्षय निमित्तं ब्रह्म बूचराज दत्तं ।।"

उक्त प्रतिलिपिकार-प्रशस्ति से इतना तो विदित हो ही जाता है कि कवि बूचराज ब्रह्मचारी थे और भट्टारक प्रभाचन्द्र के वे शिष्य थे। उस समय चम्पावती (राजस्थान) में मूलसंघ के भट्टारकों की प्रतिष्ठा थी। भट्टारक संघ में गुरु-शिष्य परम्परा का उत्तम निर्वाह होता था एवं उनमें पठन-पाठन की उचित व्यवस्था रहती थी, कदाचित् इसीलिए भक्त श्रावकों द्वारा भट्टारकों-ब्रह्मचारियों एवं साधुओं के लिए पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ कराकर भेंट करने की परम्परा रही होगी।

कवि का समय—

कवि बूचराज ने अपनी दो रचनाओं के लेखन-काल का उल्लेख किया है। मयणजुद्ध का लेखन काल वि० सं० 1589 शरदकालीन आश्विनमास के शुक्लपक्ष की पडिमा शनिवार, हस्तनक्षत्र एवं संतोष जयतिलकु का लेखन-काल वि० सं० 1591 भादवा सुदी पंचमी। कवि ने प्रस्तुत कृति दशलक्षणपर्वपर स्वाध्याय हेतु समाज को भेंटस्वरूप प्रदान की थी। मयणजुद्ध में कवि ने लेखन-काल के अतिरिक्त कोई जानकारी नहीं दी, जबकि "संतोष जयतिलकु" में उक्त लेखनकाल के साथ-साथ हिसार नगर में उसकी रचना किए जाने का भी उल्लेख किया है।

इन दोनों प्रतियों का अध्ययन करने से कवि के कुल लेखन-काल एवं कुल आयुष्य तथा कृतित्व का लेखा-जोखा कर पाना सम्भव नहीं। केवल इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि लेखन-काल वि० सं० 1580 से वि० सं० 1600 के आसपास रहा होगा।

कवि का निवासस्थल—

कवि के माता-पिता का एवं निवासस्थान का भी कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। रचनाओं की भाषा के आधार पर ये राजस्थानी कवि सिद्ध होते हैं। "सम्यक्त्व कौमुदी" की प्रशस्ति में भी चम्पावती नगर का उल्लेख आया है। उसके

अनुसार भी उनका निवासस्थल राजस्थान ही निश्चित होता है । "संतोष जयतिलकु" की रचना उन्होंने हिसार (आधुनिक हरियाणा प्रान्त में स्थित) में की थी । इससे विदित होता है कि ब्रह्मचारी बनने के बाद स्थान-स्थान पर विहार करते रहने के क्रम में वे तत्कालीन पंजाब भी गए होंगे और उसी समय उक्त रचना का निर्माण किया होगा । किन्तु उनका कार्य-क्षेत्र मुख्यतः राजस्थान ही रहा होगा ।

कवि ने अपने एक गीत में हस्तिनापुर के मन्दिर एवं शान्तिनाथ भगवान के मंदिर का भी वर्णन किया है तथा वहाँ पर होने वाले कथा-पाठ का भी उल्लेख किया है । इससे प्रतीत होता है कि उनके विहार राजस्थान, पंजाब और दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में होते रहे होंगे ।

कवि के नामों में विविधता—

कवि बूचराज के विविध नाम उपलब्ध होते हैं । उन्होंने अपनी कृतियों में बूजराज, वल्ह, वील्हा, वल्हण और बूचा का उल्लेख किया है । बूचराज, वल्ह, वील्हा, वल्हण और बूचा का उल्लेख किया है ।

मयणजुद्ध में उन्होंने अपना नाम कवि वल्ह[1] और बूचराज[2] दिया है । "चेतन पुद्गल धमाल" रचना में उन्होंने वल्हपति[3], वल्ह[4], और बूचा[5] नाम दिया । बारहमासा नेमिश्वर "रचना में बूचा नाम[6] और "संतोष जयतिलकु" में वल्हि नाम दिया है । यथा—

यहु संतोषहु जय तिलहु जंपइ वल्हि समाई[7] ।

इन सभी नामों का अवलोकन करने से यह विदित होता है कि साधारण जनता में कवि बहुत लोकप्रिय था और उसके सभी नामों से लोग सुपरिचित थे ।

गुरु-परम्परा—

कवि ने अपनी "भुवनकीर्ति गीत" नामक रचना में भट्टाकर सकलकीर्ति के शिष्य भट्टारक भुवनकीर्ति को अपना गुरु माना है, जिन्होंने सकलकीर्ति के पश्चात् भट्टारकीय पट्ट को सुशोभित किया था । "सम्यक्त्व कौमुदी" की प्रशस्ति में उन्हें भट्टाकर प्रभाचन्द्र का शिष्य बतलाया गया है । अपने अन्तिम समय मे उन्हें भट्टारक रत्नकीर्ति के साथ रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था ।

1. मयणजुद्ध, पद्य 136
2. वही, पद्य 158
3. चेतनपुद्गल धमाल, पद्य 1
4. वही, पद्य 3
5. वही, पद्य 136
6. आषाड घडिया भणइ बूचा नेमि अजउ न आईया ।। पद्य 12
7. संतोष जयतिलकु, पद्य 123

रचनाएँ

अभी तक कवि बूचराज की छोटी, बड़ी लगभग 20 रचनाएँ प्राप्त हो चुकी हैं, जो निम्न प्रकार है—

(1) मयणजुद्ध कव्व (2) संतोष जयतिलकु (3) बारहमासा नेमीश्वरका (4) चेतन पुद्गलधमाल (5) नेमिनाथ बसंतु (6) टंडाणागीत (7) भुवनकीर्ति गीत, (8) नेमि गीत और विभिन्न रागों में 11 गीत, एवं एक पद ।

1. मयणजुद्ध कव्व —

मयणजुद्ध कव्व की कथावस्तु अगले प्रसंग में प्रस्तुत की जा रही है । अतः पुनरुक्ति दोष से बचने के लिए उसका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा रहा ।

2. संतोष जयतिलकु —

यह एक रूपक काव्य है, जिसमें लोभ पर संतोष की विजय दिखलाई गई है । इसमें 123 पद्य हैं । इस काव्य में सन्तोष नायक और लोभ प्रतिनायक है, उन्हीं के माध्यम से कवि ने आत्मिक-विकारों का वास्तविकता का दिग्दर्शन करा कर आत्मिक-गुणों के महत्व का प्रतिपादन किया है ।

मानव लोभ के वशीभूत होकर नाना प्रकार के बुरे कर्म करता है और संसार में परिभ्रमण करता रहा है । इस विकारी भाव को संतोष के द्वारा जीता जा सकता है । सन्तोष आत्मा का धर्म है । इसी भाव को अपनाने से परिणामों में ऋजुता आती है तथा संवर की प्राप्ति होती है और कवि के अनुसार निर्वाण प्राप्ति का यह एक प्रमुख साधन है ।

3. बारहमासा नेमीस्वर का—

प्रस्तुत रचना में 12 पद्य हैं, जिनमें नेमिनाथ की तपस्या और राजुल की विरह-वेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है । इसमें श्रावणमास से लेकर आषाढ़ मास तक बारह महिनों का वर्णन किया गया है । विरह दशा का उत्कर्ष दिखलाने के लिए षड्ऋतुओं या बारह मासों का वर्णन किया जाता है । इसमें गर्मी, वर्षा और शीत की भीषणता, विरहरूपी अग्नि को अधिकाधिक उद्दीप्त करने में सहायक होती है । कवि ने पूर्व परम्परा को अपने ढंग से कुछ मोड़ देकर उसे सरस बनाने का प्रयत्न किया है ।

4. चेतन पुद्गल धमाल—

इस रचना में 136 पद्य हैं । उनमें से 131 पद रागदीपगु में और 5 पद्य छप्पय छंद में रचित हैं । इसका वर्ण्य-विषय तात्त्विक एवं दार्शनिक है । कवि ने प्रस्तुत रचना का समय एवं लेखन-स्थान का उल्लेख नहीं किया है किन्तु भाषा एवं शैली की दृष्टि से उनकी रचनाओं में यह रचना अन्तिम प्रतीत होती है ।

"चेतना पुद्गल धमाल" संवादात्मक शैली में रचित है। इसमें पारस्परिक संवादों के माध्यम से चेतन और पुद्गल दोनों ही एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते हैं कि संसार में भ्रमण कराने और निर्वाण-मार्ग में रुकावटें डालने में कौन कितना सहायक है ? कवि ने इसीका अत्यधिक आकर्षक, रोचक एवं विस्तृत वर्णन किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ सुभाषितों एवं सूक्तियों का भण्डार है। कवि ने प्रस्तुत कृति में अपने तीन नामों बल्हपति, वल्ह और बूधा के विविध प्रसंगों में उल्लेख किए हैं।

5. नेमिनाथ बसन्तु—

कवि ने भट्टारक पद्मनन्दि की कृपा से इस रचना का निर्माण किया था जैसा कि उन्होंने उल्लेख किया है—

मूलसंघ मुखमंडण पद्मनन्दि सुपसाइ।
वील्ह बसंतु जि गावइ से सुखि रलीय कराई ।।[1]

यह एक लघु रचना है। इसके नाम से स्वयं विदित होता है, कि इसमें नेमिनाथ की तपस्या के साथ बसन्तु ऋतु की मादकता का वर्णन किया गया है। यह एक रूपक काव्य है, जिसके माध्यम से नेमिनाथ को अपनी तपस्या में लीन दिखलाया गया है।

6. भुवनकीर्ति गीत—

प्रस्तुत कृति में भट्टाकर भुवनकीर्ति की यशो-गाथा का गान किया है। यह ऐतिहासिक कृति है, जिसमें भट्टारक-परम्परा पर प्रकाश डाला गया है। भुवनकीर्ति के साथ-साथ भ० प्रभाचन्द्र के शिष्य भट्टारक रत्नकीर्ति का भी उल्लेख किया गया है।

7. टंडाणा गीत—

"टंडाणा" शब्द टांडे से बना है। बनजारों का समूह अपने-अपने बैलों पर व्यापारिक वस्तुएँ लाद कर ले जाते हैं, उसे टांडा कहा जाता है। इस टांडा के माध्यम से कवि ने संसार के स्वरूप का रोचक चित्रण किया है। यह एक मार्मिक आध्यात्मिक गीत है।

8. नेमिगीत—

उक्त रचना 15 पद्यों की लघु रचना है, जिसमें नेमिनाथ के वैराग्य और गुणों का वर्णन किया गया है। इस कृति की रचना कवि ने "वल्हण" नाम से की है।

9. अध्यात्म गीत एवं एक पद—

कवि की अन्य रचनाएँ भी ग्यारह गीतों एवं एक पद के रूप में चित्रित हैं, जिनमें संसार की नश्वरता, भ्रमणशीलता, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि का वर्णन कर समाज को इन दूषितभावों से विरक्त करना तथा मानव को जिनेन्द्र भक्ति

1. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि, पृ० 103

की ओर उन्मुख करना है। इनके सभी गीत उपदेशात्मक एवं अध्यात्म-भावना से परिपूर्ण हैं।

मयणजुद्ध कव्व : एक काव्य रूपक

मयणजुद्ध कव्व : पृष्ठभूमि—

मयणजुद्ध कव्व एक आध्यात्मिक कृति है, जिसकी रचना रूपकात्मक या प्रतीकात्मक शैली में हुई है। भारतीय साहित्य में यह शैली अत्यन्त प्राचीन रही है।

रूपक काव्य का स्वरूप एवं परम्परा—

साहित्य-सर्जना की विभिन्न शैलियों में एक शैली प्रतीकात्मक भी है। साहित्यकार किसी तथ्य का निरूपण जब अमूर्त या अप्रस्तुत के माध्यम से करता है, तब वह कुछ मान्य रूपकों या प्रतीकों की योजना करता है। काव्य-जगत में वस्तुतः अमूर्त भावों के मूर्तिकरण का तथा उनके रूपविधान का जो स्वरूप सामने आता है। वह रूपक कहलाता है।

इस शैली के उपकरणों में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति और लक्षणा के दो भेद–सारोपा लक्षणा एवं साध्यवसाना लक्षणा आते हैं। इनमें से सादृश्यमूलक सारोपा लक्षणा रूपक की आधारशिला है। इसी की भित्ति पर रूपक का भव्य-महल निर्मित होता है। सारोपा-लक्षणा उपमेय और उपमान को एक ही धरातल पर स्थित कर देती है, जिससे वस्तुस्वरूप को सहजता से समझा जा सकता है।

रूपकों की प्राचीनता (रूपकों का विकास)—

भारतीय वाङ्मय में अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान करने वाली शैली अत्यन्त प्राचीन है। सर्वप्रथम बृहदारण्यक उपनिषद् के उद्गीथ ब्राह्मण[1] और छान्दोग्योपनिषद् में भी रूपकात्मक आख्यायिकाओं का स्वरूप उपलब्ध होता है[2]। श्रीमद्भगवद्-गीता में पाप और पुण्य का उल्लेख दैवी और आसुरी सम्पत्ति के रूप में किया गया है। बौद्ध साहित्य की जातक कथाओं में भी रूपक शैली दृष्टिगोचर होती है।

अर्धमागधी आगम साहित्य—

अर्धमागधी प्राकृत-साहित्य के सूत्रकृतांग, नायाधम्मकहाओ और उत्तराध्ययनसूत्र में उपलब्ध रूपक विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। इन रूपकों के आधार पर भगवान महावीर ने भौतिकवाद, नियतिवाद, आत्मवाद एवं पुरुषार्थ आदि दार्शनिक मतों के स्वरूप बतला कर उनके गुण-दोषों का स्पष्ट विवेचन किया है।

इस प्रतीक शैली को काव्यरूप प्रदान करने वाले सर्वप्रथम महाकवि अश्वघोष (प्रथमसदी) हैं, जिन्होंने अपने "बुद्धचरित में भावात्मक गुणों को मूर्तिमान स्वरूप

---

1. बृहदारण्यक : उद्गीथ ब्राह्मण, 1,3   2. छान्दोग्य उपनिषद् 1.2

प्रदान किया है । उनके पात्र कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, अपितु बुद्धि, कीर्ति, धृति आदि भाव हैं, जिन्हें उन्होंने साक्षात् मनुष्य के रूप में रंगमंच पर लाकर खड़ा कर दिया है । इस परम्परा को स्थापित एवं विकसित करने में अश्वघोष का बड़ा योगदान है ।[1]

प्रबोध-चन्द्रोदय—

अश्वघोष के पश्चात् लगभग एक हजार वर्ष तक रूपकात्मक-शैली की कोई उत्कृष्ट कोटि की काव्य-रचना साहित्य-जगत में नहीं आ पाई । ग्यारहवीं सदी में चन्देलवंशी नरेश कीर्तिवर्मा के युग में कृष्णमिश्र ने "प्रबोधचन्द्रोदयनाटक" नामकी रचना की, जिसमें भावात्मक गुणों को मूर्तिमान पात्र बनाने की शैली अपने चरम विकसित रूप को पहुँच सकी । इस नाटक में कथा का विस्तार छह अंकों में किया गया है । इसके सभी पात्र भावात्मक हैं । इसके अनुसार आदि महेश्वर और माया से मन की उत्पत्ति होती है । मन की निवृत्ति नामक पत्नी से विवेक की और प्रवृत्ति नामक पत्नी से मोह की उत्पत्ति होती है । मोह अपनी सन्तति के साथ विवेक से युद्ध करता है । अन्त में विवेक के पुत्र प्रबोध और पुरुष का मेल होता है, जिससे पुरुष को अपने परमात्म-तत्त्व का बोध होता है और पुरुष द्वारा विश्वशान्ति की प्रार्थना के पश्चात् नाटक की समाप्ति हो जाती है ।

इस रचना में नाटककार ने आक्रामक शैली को अपनाया है । उन्होंने अन्य दर्शनों के प्रति विशेषकर जैन मुनियों के प्रति तीव्र प्रतिशोधात्मक प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया है । फिर भी अद्वैतवाद, अध्यात्मवाद जैसे शुष्क विषयों का प्रतिपादन जिस नाटकीय, मनोरंजक शैली में किया है, वह प्रशंसनीय है ।

मयणपराजयचरिउ—

इस कृति का रचनाकाल लगभग 12वीं सदी से 14वीं सदी के मध्य माना गया है । इसके कर्त्ता चंगदेव के पुत्र हरिदेव हैं । यह रचना अपभ्रंश-भाषा में रचित है । इसकी कथावस्तु का विस्तार दो सन्धियों में किया गया है । तदनुसार भावनगर का राजा मकरध्वज अपनी रानी रति एवं महामंत्री मोह के साथ निवास करता था । वह जिनेन्द्र की निस्पृह वृत्ति से व्याकुल होकर उन पर आक्रमण कर देता है । किन्तु जिनेन्द्र तो सिद्धिरूपी रमणी को अपने हृदय में स्थान दे चुके थे । इसलिए अपनी आन्तरिक भावरूपी सेना के साथ वे मदन का सामना करते हैं और अन्त में मदन को पराजित करके सिद्धि का वरण करते हैं ।

इसमें घटनाओं का चित्रण रूपकों के आधार पर बड़ी आकर्षक शैली में किया गया है ।

1. मयण पराजय चरिउ, का॰ प्रस्तावना, पृ॰ 39, ५० –डॉ॰ हीरालाल जैन

मोह-पराजय—

कवि यशःपाल द्वारा रचित "मोह पराजय" नामक नाटक इसी रूपकात्मक शैली में विरचित नाटक है। वैश्यवंशी धनदेव और रुक्मिणी के पुत्र यशःपाल ने अभयदेव के राज्य में सन् 1229-1232 ई० में इस नाटक की रचना की। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। इसकी कथावस्तु पाँच अंकों में नियोजित की गई है। ऐतिहासिक नामों के साथ लाक्षणिक चरित्रों का सम्मिश्रण अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है।

नायक कुमारपाल, उसके गुरु हेमचन्द्र और विदूषक को छोड़कर अन्य सभी पात्र भावात्मक हैं। इस कथानक का उद्देश्य भी कुमारपाल द्वारा मोह-विजय प्राप्त करना है और नाटककार को इसमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

अन्त में कुमारपाल द्वारा जिनेन्द्र भगवान और हेमचन्द्राचार्य की स्तुति के साथ कृपा और विवेक की परिधि में अपने उज्ज्वल यश के प्रकाश में मोहान्धकार को विलीन कर देने की आकांक्षा व्यक्त की गई है। इसी आशय के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

प्रबोध चिन्तामणि—

वि० सं० 1462 मे स्तम्भनक नरेश की राजधानी स्तम्भतीर्थ में जयशेखरसूरि ने "प्रबोध-चिन्तामणि" की रचना की। उक्त रचना में सात अधिकार हैं। कवि ने पहले अधिकार में ही इस बात का संकेत कर दिया है कि इसमें पद्मनाथ तीर्थंकर और उनके शिष्य धर्मरुचि मुनि का आख्यान निरूपित किया गया है। इसमें भी मोह और विवेक का संघर्ष दिखलाया गया है।

इसमें नाटककार ने सामाजिक-स्थिति का यथार्थ और मार्मिक चित्रण किया है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनकी यह उक्ति अत्यन्त मर्मस्पर्शी है, जिसमें कहा गया है कि "महावीर की सन्तान होने पर भी आज के साधु विभिन्न गच्छों मे विभाजित हैं और पारस्परिक सौहार्द के स्थान पर एक दूसरे के दुश्मन बने हुए हैं।

ज्ञानसूर्योदय—

"ज्ञानसूर्योदय नाटक" की रचना वादिचन्द्रसूरि ने वि० सं० 1648 में मधूकनगर में की थी। इस रचना का आधार "प्रबोध-चन्द्रोदय" है। उक्त रचना में भी रूपकात्मक शैली के माध्यम से आक्रामक प्रतिक्रिया को व्यक्त किया गया है। इसमें बौद्धों और श्वेताम्बरों का उपहास किया गया है।

मदन-पराजय—

मदनपराजय संस्कृत-भाषा में रचित एक प्रतीकात्मक रचना है। इसके रचनाकार भल्लुगिल के पुत्र नागदेव हैं, जो अपभ्रंश मयणपराजयचरिउ के लेखक

हरिदेव की छठवीं पीढ़ी मे आते हैं । उक्त रचना पाँच परिच्छेदों में समाप्त हुई है । इस रचना का आधार अपभ्रंश का मयणपराजय-चरिउ है । इसकी कथावस्तु एवं पात्र ज्यों के त्यों हैं । इसमें विषयवस्तु के प्रतिपादन में ही कहीं-कहीं भिन्नता दृष्टिगोचर होती है ।

इस रचनाका मूल अभिप्राय मदन को पराजित कर जिनेन्द्रदेव को मोक्षपुरी पहुँचाना है । उक्त काव्यग्रन्थ के पंचम परिच्छेद में कवि ने अपनी कल्पनाशक्ति का सुन्दर परिचय दिया है । तदनुसार यमपुरी के मन्दिर में कर्मधनुष की स्थापना की गई । जिनेन्द्रदेव द्वारा उस धनुष को तोड़े जाने की विधि सम्पन्न हुई, उनके गले में वरमाला डाली गई, तब वे मुक्ति श्री के साथ मोक्षपुरी के लिए रवाना हुए ।

उक्त महत्वपूर्ण कृतियों के अतिरिक्त भी उक्त रूपकात्मक शैली में रची गई और भी अनेक रचनाएँ हैं । किन्तु उन सबका परिचय दे पाना स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं ।

प्रतीकात्मक जैन-कथा साहित्य—

अर्द्धमागधी-आगम-साहित्य में ऐसे अनेक कथानक हैं, जिनमे भावात्मक गुणों को मूर्तरूप प्रदान कर उनके कार्यों द्वारा उपदेश की अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया है । सूत्रकृतांग में "पुण्डरीक अध्ययन" नामक प्रसंग कथा के सभी अंगों से परिपूर्ण कथानक है । वह एक प्रतीकात्मक-कथा है—तदनुसार एक सरोवर था, जिसमें प्रभूत जल था और जिसमें सुगन्धित कमल खिले हुए थे । उनके बीचोंबीच एक रमणीक कमल भी खिला हुआ था, जो दूर से ही पथिक जनों को आकर्षित कर रहा था । पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं के मनुष्य उस कमल को तोड़ने के लिए सरोवर में घुसे । लेकिन कीचड़ की अधिकता के कारण वे उसीमें फँसकर रह गये । उसी समय एक भिक्षु वहाँ आया । वह सारी स्थिति को समझ गया । उसने तट पर खड़े होकर उस कमल पुष्पको आवाज लगाई । उस शब्दध्वनि-मात्र से ही वह कमल उस पुण्डरीक-सरोवर से निकल कर उसके हाथ में आ गया ।

भगवान महावीर ने इस कथा का भावार्थ इस प्रकार समझाया—यह लोक ही सरोवर है । जल उसका कर्म है । सरोवर की कीचड़ ही काम-भोग है । संसार के सभी प्रकार के छोटे-बड़े, मनुष्य ही कमल हैं । वह श्रेष्ठकमल ही उन सब कमल पुष्पों का राजा है । नाना-मतों के अल्पज्ञ-उपदेशक वे सभी पुरुष हैं, जो राजा को अपना मतानुयायी बनाने के लिए अचानक वहाँ आ फँसते हैं । वह भिक्षु सच्चा धर्म है और तट है धर्मतीर्थ, धर्म-कथा ही उसकी आवाज है और उस महाकमल की प्राप्ति ही उसका निर्वाण है ।

इस प्रकार णायाधम्मकहाओ और उत्तराध्ययन सूत्र एक से एक सुन्दर

प्रतीकात्मक कथा के भण्डार हैं । वसुदेवहिण्डी और समरादित्यकथा में भी 'मधुबिन्दु' नामक प्रतीक-कथा उपलब्ध है । इस कथा का रूपक इतना व्यापक है कि उस पर कई चित्र बन चुके हैं । कई गीतों में भी उसका सार लिया जा चुका है । यह कथा मनुष्य को यह शिक्षा देती है, कि संसार के विषय-भोगों का परिणाम इतना भयंकर होता है, कि अनन्तकाल तक वह इसी संसार में भ्रमणशील बना रहता है । यह कथा भव्यजनों के मोह को दूर करने के लिए एक उत्कृष्ट उदाहरण है ।

इस रूपक शैली को और भी परिपुष्ट बनाने का कार्य आचार्य उद्योतनसूरि की "कुवलयमाला कथा" को जाता है । यह रचना प्राकृत-भाषा में प्रणीत है, जिसको कवि ने शकसंवत् 700 में एक दिन शेष रहने पर पूर्ण किया था । इसमें चारों कषाय एवं मोह के दुष्परिणाम और उनसे उद्धार का उपाय सुन्दर रूपक शैली में प्रस्तुत किया गया है ।

प्रतीकात्मक शैली को चरम विकास पर पहुँचाने वाले सिद्धर्षि गणि हैं, जिन्होंने संस्कृत में "उपमितिभवप्रपंच कथा" का सृजन किया । उन्होंने भवभ्रमण का प्रपंच (विस्तार) दिखाकर मानव की दुष्प्रवृत्तियों का रूपक प्रस्तुत कर, उनसे दूर रहने की ओर मानव का ध्यान आकृष्ट किया तथा सद्वृत्तियों को अपनाने का उपदेश दिया । उन्होंने उक्त ग्रन्थ में पात्रों की विशाल कतार खड़ी कर दी है । उनके सभी पात्र भावात्मक हैं, जो कर्मानुसार भ्रमण करते रहते हैं । सिद्धर्षि गणि का यह ग्रन्थ भारतीय रूपक-साहित्य में अनुपमेय माना गया है ।

काम सम्बन्धी प्राचीन काव्य-परम्परा—

भारतीय-वाङ्मय के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद माने गए हैं । किसी भी काव्य-परम्परा के स्रोत सर्वप्रथम इन वेदों में ही खोजने के प्रयास किए जाते हैं । ऋग्वेद के दशम मण्डल (10/29/4) में "काम" की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है । अथर्ववेद में भी "काम" और उसके बाण की चर्चा (3/25) आई है, किन्तु वेदों में उसकी देवत्व रूप में स्थापना नहीं पाई जाती । किन्तु पुराण-साहित्य में उसका विस्तार से वर्णन मिलता है । शिवपुराण में उसकी उत्पत्ति, देवत्व रूप में स्थापना एवं उसके शरीरविहीन होने का उल्लेख उपलब्ध होता है ।

पालि-साहित्य के सुत्तनिपात में बुद्ध और मार (कामदेव) के संघर्ष का उत्कृष्ट कथानक आया है और उसकी विजय ने बुद्ध को मारजित की उपाधि प्रदान की । तत्पश्चात् जातककट्ठ वण्णणा (4-5वीं सदी) में "मारपराजय" में काम और बुद्ध के संघर्ष को अतिरंजित रूप में दिखलाया गया है एवं अंत में बुद्ध की विजय और काम की पराजय से देवों, नागों और सुपर्णों द्वारा बुद्ध की स्तुति की गई ।

काम के इन कथानकों में पुराण-साहित्य को छोड़कर रति का उल्लेख किसी भी रूप में नहीं हुआ।

महाकवि अश्वघोष ने अपने ''बुद्धचरित'' में मार का वर्णन उसकी सभी विशेषताओं के साथ अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। उन्होंने रति, प्रीति एवं तृषा को पुत्री तथा विभ्रम, हर्ष और दर्प को पुत्र रूप में चित्रित किया है। मार ने अपने समस्त साधनों एवं पुष्प-धनुष द्वारा बुद्ध पर आक्रमण किया लेकिन बुद्ध के त्याग, तपस्या, इन्द्रियनिग्रह और आत्मदृढ़ता के समक्ष उसे परास्त होना पड़ा।

''ललित-विस्तर'' नामक ग्रंथ में भी काम सम्बन्धी उपर्युक्त कथानक ही उपलब्ध होता है।

कालिदास के कुमारसम्भव में ''काम'' की कथा पूर्ण विस्तार के साथ वर्णित हुई है। कालिदास ने ''रति'' को ''काम'' की प्रेयसी के रूप में दर्शाया है। शिव की तपस्या भंग करने के कारण कुपित होकर शिव ने काम को भस्म कर दिया। रति के अत्यधिक विलाप करने पर भविष्यवाणी हुई कि शिव के पार्वती से विवाह कर लेने के पश्चात् ''काम'' पुनः जीवित हो उठेगा, लेकिन वह सशरीरी नहीं हो सकेगा।

वैदिक और बौद्ध साहित्य के अतिरिक्त जैन-साहित्य में भी ''काम'' का वर्णन उपलब्ध होता है। शुभचन्द्र कृत ज्ञानार्णव के ग्यारहवें प्रकरण के श्लोक सं० 11 से 48 तक एवं इक्कीसवें प्रकरण में ब्रह्मचर्य और आत्मा के प्रसंग में उसका विस्तृत वर्णन हुआ है।

मयणजुद्ध काव्य की कथावस्तु—

प्रस्तुत ग्रन्थ की कथावस्तु का प्रारम्भ कवि ने मंगलाचरण से किया है। उसने 159 पद्यों में उक्त कथा को विस्तार दिया है। सम्पूर्ण कृति प्रतीकात्मक शैली में वर्णित है। तदनुसार शरीररूपी गढ़ में चेतन नामका राजा निवास करता है। उसकी प्रवृत्ति और निवृत्ति नामकी दो पत्नियाँ हैं। मन उसका मंत्री है। दोनों पत्नियों का एक-एक पुत्र है, जिसका नाम मोह और विवेक है। राजा दोनों को समान स्नेह करता है। मोह की माया नामकी पत्नी सारे संसार को अपने प्रपंच-जाल में फुसलाकर रखती है और माया के आचरण को देखकर निवृत्ति रानी अपने पुत्र विवेक के साथ पुण्यपुरी चली जाती है।

उस पुण्यपुरी के सत्यनामक राजा ने अपनी पुत्री सुमति का विवाह विवेक के साथ कर दिया और उसे पुण्यपुरी का राजा बना दिया। उससे मोह को अत्यधिक निराशा हुई। मोह ने अपने चार दूतों को विवेक का रहस्य जानने के लिए भेजा। उनमें से तीन को उस नगरी में प्रवेश नहीं मिल सका और वे वापिस लौट गए। चौथा कपट नामका दूत साधु का वेष धारण कर नगर में घुस गया।

वहाँ उसे (कपटी-साधु को) चारों ओर सुख और शान्ति ही दिखलाई पड़ी । उसने वापिस आकर राजा मोह से सब समाचार कह सुनाया, जिसे सुनकर उसे बड़ा दुख हुआ ।

राजा मोह ने शीघ्र ही चिन्ता, रोष, शोक, संताप, झूठ, क्लेश, दुराव, आदि सभी को अपने दरबार में बुलाया और उनसे कहा "जब तक विवेक जीवित है, तब तक हमारे सम्पूर्ण सुख व्यर्थ हैं" यह सुनकर उसका पुत्र कामदेव क्रोध से उसी प्रकार काँपने लगा जैसे वन में हाथी को देखकर केहरि (सिंह) क्रोध से काँपने लगता है । उसने प्रतिज्ञा की मैं शीघ्र ही निवृत्ति सहित विवेक को बंदी बनाकर आपके समक्ष लाऊँगा ।

इस प्रतिज्ञा से मोह अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने मदन को अपने हाथों से पान का बीड़ा दिया । कामदेव के साथ कुबुद्धि, कुशिक्षा और कुमति को भी भेज दिया गया ।

कामदेव को अपनी विजय की पूर्ण आशा थी । उसने पहले वसन्त को भेजा । वसन्त के आगमन से चारों ओर प्रकृति हरी-भरी हो गई, सभी वृक्ष-लताएँ नवपल्लव और पुष्पों से भर गए । भ्रमर गूँजने लगे, कोयल मधुर तान छेड़ने लगी । चारों ओर मलय समीर बहने लगी । वातावरण में मादकता छा गई । सभी लोग कहने लगे कि मदन का आगमन हो गया । कामदेव सभी पर विजय प्राप्त करता हुआ पुण्यपुरी की ओर बढ़ा । जब विवेक ने कामदेव को अपनी ओर आते देखा, तो वह वहाँ से धर्मपुरी की ओर चला गया, जहाँ ऋषभेश ध्यानस्थ थे । वहाँ प्रभु ने विवेक का विवाह संयमश्री से कर दिया, जहाँ वह अपनी पत्नी के साथ विविध सुख भोग करने लगा ।

कामदेव ने समझा कि विवेक युद्ध-भूमि से पीठ दिखाकर भाग गया है, तब वह प्रसन्नचित्त होकर अपनी सेना सहित अपनी पापपुरी में लौट आया । वहाँ उसका बहुत आदर-सत्कार हुआ । उसकी पत्नी रति ने जब युद्ध का सारा वृत्तान्त जाना, तो उसने कहा कि अभी धर्मपुरी को जीतना तो शेष ही है । रति की यह बात सुनकर कामदेव क्रोध से भर उठा और उसने शीघ्र ही धर्मपुरी को जीतने के लिए प्रयाण किया ।

कामदेव, क्रोध, मोह, मान, माया तथा हाव-भाव और विभ्रम-विलास के शस्त्रों को लेकर धर्मपुरी की ओर चल पड़ा । दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध-स्थल पर एकत्रित हो गईं और घमासान युद्ध हुआ । सभी विकारी भावों ने मिलकर ऋषभदेव के गुणों पर आक्रमण कर दिया । लेकिन शुभ भावों ने सभी को धराशायी कर दिया । मोह ने अपना रौद्र रूप दिखला कर आक्रमण किया किन्तु विवेक ने उसे तत्काल पराजित कर दिया । इस कारण वह उल्टे पैर भागने पर विवश हो गया ।

कामदेव ने जब मोह को भागते हुए देखा तब वह अपनी सम्पूर्ण सेना-सहित युद्ध भूमि में आ गया। लेकिन उस समय ऋषभदेव संयमरूपी रथ पर सवार हो चुके थे। उनके रथ में तीन गुप्तिरूपी घोड़े जुते हुए थे। पाँच महाव्रत एवं क्षमा उनके वीर योद्धा थे। उनके हाथों में ज्ञानरूपी तलवार थी और सम्यक्त्वरूपी छत्र लगाकर वे युद्ध-क्षेत्र में जा पहुँचे। प्रभु को देखकर कामदेव के वीर एक-एक कर भागने लगे, लेकिन प्रभु ने सभी पर विजय प्राप्त कर ली। ऋषभदेव को कैवल्य की प्राप्ति होते ही देवों ने वाद्य बजाना आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में कवि ने सद्गुणों के द्वारा विकारी भावों पर विजय दिखलाई है, वह अपने आप में अभूतपूर्व है। इस रूपक के माध्यम से कवि ने एक ओर युद्ध का दिग्दर्शन कराया है तो दूसरी ओर बड़ी कुशलता से आध्यात्मिकता से सुपरिचित भी कराया है।

मयणजुद्धकाव्य का कथास्रोत—

वैदिक परम्परा में काम और शिव एवं बौद्ध परम्परा में काम और बुद्ध का संग्राम बहुत चर्चित है। किन्तु प्राचीन जैन-साहित्य में काम का इस प्रकार का कोई उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ, मोह को आध्यात्मिक विकास में बाधक अवश्य माना गया है और उसका जैन-साहित्य में विस्तृत वर्णन भी उपलब्ध है। काम का सर्वप्रथम वर्णन जैसाकि पूर्व में कहा जा चुका है, शुभचन्द्र कृत ज्ञानार्णव में उपलब्ध होता है। उसके ग्यारहवें और इक्कीसवें प्रकरण में काम की कथा का उल्लेख किया गया है।

ज्ञानार्णव के ग्यारहवें प्रकरण के 11 श्लोक से लेकर 48 श्लोक तक ब्रह्मचर्यव्रत के वर्णन में काम के भेद-प्रभेद का वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि ब्रह्म की उपासना करने वाले योगी को काम के भेदों सहित त्याग कर देना चाहिए और स्त्रियों का भी त्याग कर देना चाहिए।

काम ऐसा अचिन्त्य पराक्रमी वीर है, जिसने अपनी शक्ति से चराचर को अपना दास बना लिया है। स्मररूपी बैरी लोक को दिग्मूढ़, उद्भ्रान्त, उन्मत्त, शंकाग्रस्त एवं व्याकुल बना देता है। कामाग्नि का ताप जेठ मास के ताप से भी भयंकर होता है, जो मेघों की वृष्टि और सागर-जल से भी शान्त नहीं होता। सर्प के डँसने पर तो शरीर में सात प्रकार के उद्वेग उत्पन्न होते हैं पर स्मररूपी सर्प से डसे जाने पर लोगों में भयंकर दस दशाएँ उत्पन्न होती हैं—चिन्ता, दर्शन, अभिलाषा, दीर्घश्वास, अरुचि, दाह, मूर्च्छा, उन्माद, प्राणसन्देह एवं प्राणनाश[1]।

कवि के अनुसार स्मर एक विषम ठग है, जिससे हरि, हर, ब्रह्मा भी नहीं बच

1. ज्ञानार्णव 11/29-31।

सके हैं। इसलिए हे मूढ़ जीव, यदि तूने मनुष्य जन्म धारण किया है तो कोई ऐसा उपाय कर जिससे काम की ज्वाला शान्त हो सके।

ज्ञानार्णव के 21वें प्रकरण में बतलाया गया है कि विद्वानों ने आत्मा को ही शिव, वैनतेय और स्मर कहा है[1]। मुनिजनों और मोक्ष-लक्ष्मी का वरण करने वाले साधक पुरुषों को काम अपने धनुष-बाण का लक्ष्य बनाए हुए है। वह अपनी विदग्धा पत्नी रति के साथ विविध क्रीड़ाओं में आसक्त है। वसन्त उसका मित्र है, जो आम्र-मंजरी द्वारा अपने आगमन को सूचित करता है, तथा कोकिलों की स्वर-लहरी, मधुपों की गुंजार और सुगन्धित मलयानिल के द्वारा लोगों में उल्लास भर देता है। वह काम, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार को बन्द करने वाली अर्गला है। काम के स्वरूप का चिन्तन करने से यह आत्मा काम विषय का अनुभव करने लगता है।

इस प्रकार उक्त दो प्रकरणों में कवि शुभचन्द्र ने "काम पर" पर्याप्त प्रकाश डाला है और उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है। मयणजुद्ध की कथा के स्रोत का जहाँ तक प्रश्न है वह शुभचन्द्रकृत "ज्ञानार्णव", हरिदेवकृत "मयणपराजय चरिउ" और नागदेवकृत मदन पराजय है।

कवि बूचराज ने मयणजुद्ध में कामदेव के समस्त गुण-धर्मों का वर्णन ज्ञानार्णव के अनुरूप किया है। उन्होंने काम के कुसुमकोवंड, भ्रमर, पणच, पुष्प, बाण आदि पंचबाण, रतिस्त्री, मल्लिकाओं के द्वारा त्रैलोक्य वशीकरण और मुनियों के मन को चलायमान कर देना, देवों और दानवों को भी अपने स्थान से डिगा देना, ब्रह्मा, विष्णु और शिव को अपनी प्रवृत्तियों के अधीन कर लेना एवं मुक्ति प्राप्त करने के इच्छुक साधकों के प्रयत्नों में बाधा उत्पन्न करना आदि सभी वृत्तान्त दोनों में समान रूप से उपलब्ध हैं[2]।

इसी प्रकार कामदेव की सेना में प्रबल योद्धाओं का नाम जिस प्रकार ज्ञानार्णव में वर्णित है उसी प्रकार मयणजुद्ध में भी उपलब्ध है। जैसे—राग, द्वेष, रोष, मद, अज्ञान, मिथ्यात्व, कषाय, कुशील आर्त्त रौद्रध्यान आदि[3]।

मयणजुद्ध कव्व की कथावस्तु में अन्तर—

मयणजुद्ध की कथावस्तु और संस्कृत तथा अपभ्रंश के मदनपराजयचरित की कथावस्तु में कुछ अन्तर उपलब्ध है। जैसे मयणजुद्ध में कथा का प्रारम्भ करते हुए कवि ने स्पष्ट किया है कि आदीश्वर प्रभु ने जुगलाधर्म का निवारण किया, जैनधर्म का उद्धार किया, जो संसार को तारने वाले हैं, वे आदीश्वर प्रभु सुरेन्द्र द्वारा वन्दित हैं। उन्होंने किस प्रकार रतिपति पर विजय प्राप्त की, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ।

1. ज्ञानार्णव, 20/9
2. मयण० पद्य० 37-51, ज्ञानार्णव 11/28-29-48।
3. मयण० पद्य० 32, ज्ञानार्णव, 7-9।

तत्पश्चात् कवि ने बतलाया है कि शरीररूपी गढ़ के भीतर चेतन राजा निवास करता है, मन नामका उसका महामन्त्री है। प्रवृत्ति और निवृत्ति नामकी उसकी दो रानियाँ हैं। प्रवृत्ति से मोह नामक पुत्र ने जन्म लिया और निवृत्ति से विवेक ने। राजकुमार मोह की रानी का नाम माया है। उसका मन्मथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। विवेक के ऊपर मदन ने चढ़ाई की, तब विवेक आदीश्वर से मिला और आदीश्वर ने अपनी गुणरूपी सेना लेकर मदन और मोह के साथ संग्राम किया और उसे अपने ध्यानरूपी सर्प से पराजित कर दिया। इस प्रकार चेतन परतन्त्रता से छूट कर ज्ञानी बन गया तब केवलज्ञानरूपी सूर्य प्रकट हुआ है इस प्रकार मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसके पश्चात् कवि ने 21 पद्यों में प्रभु के उपदेश तथा शिवपद आदि के स्वरूप का वर्णन किया है।

"मयणपराजयचरिउ" की कथावस्तु इससे कुछ भिन्न है। उसमें बतलाया गया है कि भवनगर पट्टन का राजा मकरध्वज अपनी रति और प्रीति नामकी दो नारियों के साथ निवास करता था। उसका मोह नामका महामंत्री था। एक दिन राजा ने सभा-भवन में पूछा कि त्रिभुवन में कोई ऐसी महिला है, जो मुझे न चाहती हो ? तब रति उसे बतलाती है कि अष्टभूमि में रहने वाली सिद्धिनामक रमणी आपको नहीं चाहती। उसके ऐसा कहने पर कामदेव ने रति से उसे लाकर मिलाने के लिए दूती-कर्म करने को कहा। तब मोह ने राजा मदन से कहा कि सिद्धि रमणी का जिनेन्द्र से विवाह होना निश्चित हो गया है। इसलिए उसने दूत द्वारा जिनेन्द्र के पास सन्देश भेजा कि वे आकर या तो हमारी सेवा करें या युद्ध के लिए तैयार हो जावें। इसी कारण मदन और जिनेन्द्र का युद्ध होता है, जिसमें मदन पराजित होता है और जिनेन्द्र का सिद्धि से विवाह सम्पन्न हो जाता है।

मयणजुद्ध में काव्यात्मकता

कवि बूचराज के अनुसार प्रस्तुत कृति का नाम मयणजुद्ध अथवा मदनजुद्ध है जो अपनी अभिव्यक्ति में पूर्णरूपेण सटीक है। उक्त ग्रन्थ की आदि और अन्त्य दोनों पुष्पिकाओं में यही दोनों नाम प्राप्त होते हैं। यद्यपि कवि ने इसके आगे काव्य, कव्व, वृत्त या वृत्त कुछ भी नहीं लगाया है तथापि यह एक काव्य-रचना है और काव्य-गुणो से भरपूर है। इसका वर्ण्य-विषय अध्याय, सर्ग या सन्धियों में विभक्त नहीं, फिर भी वह विविध प्रकार के छन्दों मे चित्रित होने के कारण उसमें एकरसता नहीं आ पाई है। इसकी सम्पूर्ण कथावस्तु भावात्मक और रसप्रधान है। उसमें प्रसंगानुकूल प्रायः सभी रसों का विधान किया गया है। वह एक आध्यात्मिक रचना होते हुए भी काव्य-गुणों से युक्त है। सभी दृष्टियों से अध्ययन करने से यह स्पष्ट

विदित होता है कि कवि की प्रतिभा बहुआयामी थी। यहाँ उक्त रचना के काव्य-गुणों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है---

रस-योजना—

कविता अनुभूति का मूर्तरूप है, जिसमें कवि के संवेदनशील भाव-संवेगों का स्फूर्त प्रवाह प्रवर्तित होता है। अनुभूति का उचित भावन कर कवि अपने अन्तस्तल में वर्तमान अप्रतिम-सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण करता है और यह प्रत्यक्षीकृत सौन्दर्य ही कला है। काव्य के निर्माण में अनुभूति और अभिव्यक्ति का मणिकांचन योग रहता है, जिसे दूसरे शब्दों में भाव-पक्ष कहते हैं। भाव-पक्ष का तात्पर्य आत्मा से और कला-पक्ष का कलेवर से है।

भारतीय काव्य-शास्त्र में रस की आनन्दानुभूति ब्रह्मानन्द सहोदर की अनुभूति के समान अप्रतिम है। इस सहृदय के हृदय का प्राणवन्त संवाद है। रस के प्राचुर्य से काव्य के अर्थ में उसी प्रकार नवीनता आ जाती है, जैसे मधुमास के आगमन से वृक्षों में नई शोभा[1]। आचार्य कुन्तक ने कहा है कि कवि की वाणी-मात्र कथा के आश्रित नहीं जीती, उसे तो रसोद्गार गर्भ निर्भर होना चाहिए। जो कवि मार्मिक स्थलों की सृष्टि में जितनी कुशलता का परिचय देगा, उसकी रसव्यंजना उतनी ही तीव्र होगी[2]।

मयणजुद्ध काव्य-ग्रन्थ में रसों की अवसरानुकूल सुन्दर योजना हुई है। इसमें शान्त रस अपने अंगीरूप में विद्यमान है। प्रारम्भ से अन्त तक उसी की परिव्याप्ति है। अन्य रस उसीके परिपाक से परिपुष्ट हुए हैं और उनका पर्यवसान भी निर्वेद में ही हो गया है। शान्त रस निर्मल-निर्झरणी की तरह प्रवाहित होता हुआ अन्य नदी रूप रसों को भी अपने में लीन करता हुआ निरन्तर प्रवहमान है।

शृंगार रस—

ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन ने शृंगार रस की सर्वमान्यता घोषित करते हुए बतलाया है कि सबसे आह्लादक और मधुर रस शृंगार ही है। इसी से काव्य में माधुर्य की प्रतिष्ठा होती है। शृंगार रस से नायक और नायिका के बीच द्वयता मिट जाती है और दोनों में समान समाकर्षण होता है। दोनों के बीच अनुभूति की तीव्रता और तन्मयता की व्यापकता बढ़ जाती है।

मयणजुद्धकव्व में शृंगार रस की अभिव्यंजना कवि ने वसन्त ऋतु के आगमन के प्रसंग में की है। मदन ने संसार को किस प्रकार अपने वशीभूत कर लिया है, इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए शृंगार रस का मनमोहक चित्रण किया गया है।

---

1. ध्वन्यालोक, 4/4-5
2. वक्रोक्तिजीवित, उन्मेष 4

वसन्त की मादकता सम्पूर्ण पृथिवी को अपने वशंगत कर लेती है। सभी कामदेव के वशीभूत हो जाते हैं, चाहे वे शिव और कृष्ण हों या ऋषि मुनि। इसीको कवि ने शृंगार रस के माध्यम से चित्रित किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पद्य सं० 36 से 48 तक शृंगार रस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

इसमें वसन्त ऋतु का आगमन आलम्बन विभाव है। नारियों का साज-शृंगार उद्दीपन विभाव और आश्रय पाठक या श्रोतागण हैं। विविध प्रकार की चेष्टाएँ अनुभाव हैं और हर्ष, चापल्य आदि संचारी-भावों से पुष्ट होकर संयोग-शृंगार की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है यथा—

जिन्हराग कटि बद्धिय पटंबर जिरह और उरि कंचुय कसे।
हाकंति हसति कूकति कुरलति मुछति भड लहरी विसे।

. . . .

गावंति गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइय[1]
हरि लियउ मदनि कसि सोलह सहास वसि।
रहिउ गूजरि रसि रयणि दिणा[2] ।।
जिन मिलिउ संकर मानु छोड़िउ अंतरध्यानु
गौरी संगि हित प्राणु इव नडियं[3] ।।

यहाँ दूसरे उदाहरण में कृष्ण आश्रय है, गोपियाँ आलम्बन हैं, उनके हावभाव, उद्दीपन और अनुभाव, संचारी भाव का शब्दों द्वारा उल्लेख न होने पर भी यह प्रसंग शृंगार रस की प्रतीति कराने में समर्थ है। इसी प्रकार शिव का गौरी के साथ एक प्राण हो जाना भी शृंगार-रस की अनुभूति कराने में समर्थ है।

हास्य-रस—

हास्य रस के केवल एक-दो प्रसंग ही प्रस्तुत कृति में उपलब्ध हैं। जब मदन युद्ध में समस्त राजाओं को पराजित करके अपने नगर में लौटता है उस समय समस्त प्रजा उसकी विजय की खुशी में उल्लसित हो उठती है। उसकी माता पुत्र को घर लौटा हुआ देखकर हर्ष-विभोर हो जाती है और उसका वर्धापण करती है। मदन भी गर्व से भरकर ऐसी हँसी हँसता है कि वह उसके अंग में नहीं समाती। यथा—

"माया करिउ वधावणउ मोहह रंजिउ चित्तु।
सव्वहं इच्छा पुन्निया घरि आयउ जिणि पुत्त" (57)
माई पिता पगि लग्गि करि तब मनमथु घरि जाई।

---

1. मयण० 41
2. वही, 46
3. मयण० 46

रहसिउ अंग न माइयइ जीतें राणे राइ" (58)

रौद्र रस—

जब मदन अपनी पत्नी रति द्वारा अपमानित होता है तब रौद्र रस का समुचित संचार हुआ है। जैसे—

रोम-रोम उद्धसिय भृकुटि चाडिय णिल्लाडिय।
गुरणायउ जिम सिंघु घालि बलु लिय अंगाडिय।
विसहरु जिय फुंकरिउ लहरि ले कोपह चडियउ।
जिम पावस घणु मत्तु तिम सु गज्जिवि गडवडियउ। (68)

इसमें स्थायी भाव क्रोध, शत्रु विवेक आलम्बन विभाव, रति के शब्द उद्दीपन विभाव, आश्रय मदन, रोम-रोम का फड़क उठना, भृकुटि टेढ़ी हो जाना, जोर से गुर्राना आदि अनुभाव और अमर्ष, गर्व आदि संचारी भावों से परिपुष्ट रौद्ररस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार मोह के वर्णन में भी रौद्र रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। यथा—

"करि रत्त नयण बहु दंत पीसि। अणिहउ पडिउ जणु टूटि सीसि (118)
"बहु रुद्द रूपि हुई डहिउ आपु। सो करइ बहुत जीवह संतापु (119)
चडिउ कोपि कंदप्पु उप्पबलि अण्णु न मण्णाई। कुंदइ कुररलइ तसइ हसइ सुभटहं अवगण्णइ ।। (136)

वीर-रस—

प्रताप, विनय, अध्यवसाय, स्वत्व, अविषाद आदि विभावों से उत्साह स्थायी भाव का वीररस में परिपाक होता है।

मदन और ऋषभदेव के युद्ध प्रसंग में वीर-रस की सफल निष्पत्ति हुई है। अहंकार के वशीभूत होकर मदन ने आदीश्वर के ऊपर चढ़ाई की और अपने वीरों को उत्साहित करने हेतु विविध प्रकार की दर्पोक्तियों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत कृति में सं० पद्य० 101 से लेकर 135 तक वीर-रस की अभिव्यंजना हुई है। यथा—

वे अणिय जोडि जुट्टिय भुवाल।
तहँ पडहिं खग्ग जणु अगणिझाल।
तेय लेस गोले मिलंति।
ते सीय लेस झाला झलंति (130)
वे दोनउं ढुक्किय काल कंधि।
बे भिडिय रणंगणि फोज बंधि (129)

भयानक-रस—

भयप्रद दृश्य को देखने-सुनने, स्मरण करने अथवा उसकी प्रतीति से उत्पन्न भय भयानक रस की व्यंजना करता है।

इसका स्थायी भाव भय, भयप्रद जीव आलम्बन, वस्तु अथवा दृश्य और दृश्य की भीषणता को बढ़ाने वाले कार्य-व्यापार, उद्दीपन, भयभीत व्यक्ति आश्रय, स्वेद, कम्प, रोमांच, स्वरभंग आदि अनुभाव एवं दैन्य, चिन्ता एवं त्रास आदि संचारी भाव हैं।

भय भीम भयंकर पालि जाह ।
आसाता वेयणी नलिणि नाह ।
लहिं विरख तिक्ख करवाल पत्त ।
झडपडहिं तुट्टि छेदहिं ति गत्त (76)
इक्क लेइ कुहाडु कूटहिं गहीरु ।
करि खंडु-खंडु घालहिं सरीरु ।
जहिं तपा तपहिं नितु लोह थंभ ।
तिन्हि लावहिं अंगि जि खलिय बंभ । (79)

वीभत्स

इस रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है अतः जिस रचना से जुगुप्सा नामक भाव का उद्रेक हो, वहाँ उक्त रस का सद्भाव माना है। प्रस्तुत रचना में नरक-वर्णन के प्रसंग में इस रस की व्यंजना हुई है। यथा—

जहिं ढंक कंक पक्खिय निनेह ।
जिन्ह चुंच संडासी भखहि देह (77)

प्याइयइ सु तांबउ ताइ सुद्ध ।
मदि मांसि जि हुंति या जीव लुद्ध (80)

यहाँ मांस, मदिरा आदि आलम्बन विभाव हैं, चोंचों का संडासी के रूप में कार्य करना उद्दीपन विभाव है। ताँबे का रस पीना या मांस का भक्षण करना अनुभाव, दैन्य, हर्ष आदि संचारी भावों से पुष्ट वीभत्स रस का परिपाक हुआ है।

शान्त-रस—

कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ में इस रस को नौवाँ रस माना है, और इसे अमृत रस से सम्बोधित किया है। समस्त संसार कामजन्य विषय-वासनाओं में पूर्ण रूप से निमग्न है। यौवन के उन्माद में मानव काम-कथा ही सुनना पसन्द करते हैं और उसी में अनुरक्त हैं। वे अमृत (शान्त) रस की कथा सुनना पसन्द नहीं करते। यथा—

"सुणहि नाहि जुवइ जे रत्त ।
जो रत्तिय काम-रसि बहु उपाधि धंधइ जि रत्तिय ।
नवमा रसु यहु अमियरसु तेइ न सुणहि कानि (5)

आचार्य मम्मट ने सर्वप्रथम शान्त रस की उपादेयता को स्वीकार किया— "शान्तों पि नवमोरसः।।"[1] जिस प्रकार आनन्द की सम्प्राप्ति के लिए शृंगार रस की परम उपादेयता है उसी प्रकार परम मोक्ष की आध्यात्मिक सुखानुभूति के लिए शान्त रस की अपेक्षा है। शान्त रस की अनुभूति में संसार निस्सार प्रतीत होता है। चतुर्दिक वैराग्य और संयम की आभा दिखलाई पड़ती है। इस रस का स्थायी भाव शम या निर्वेद होता है।

उक्त काव्य ग्रन्थ में शान्त रस अन्तःसलिला के प्रवाह सदृश निरन्तर प्रवहमान है। इसमें आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने संसार की नश्वरता और क्षणिकता का दिग्दर्शन करा कर मुक्ति का मार्ग निर्वेद के परिज्ञान को बतलाया। कवि का कथन है कि - मदन और मोह प्राणि-मात्र के शत्रु हैं और इनको समझ लेने पर ही वैराग्य का प्रादुर्भाव होता है, जो शान्त रस का आन्तरिक तत्व है। यथा—

"दुसहु वद्धतु मोहु परचंडु।
भडु मयणु निकंदियउ कलियकालु तब पाडि लीयउ।

जे वटपांडे धम्म के ते सब घाले बंदि।
चेयण खउ छुडाइयउ स्वामी रिसह जिणिंदि।। (137)
"सुणहु साधहं धम्मु हितकारणु।
तो पालहु अखलमनि सुगइ होइ दुग्गइ निवारइ।
बुड्डंत संसार महि हुइ तरंडु खिण माहिं तारइ।

ते तप बलि सहु निद्दलहु भवतरु कंद कुदालि।। (153)

इन वर्णनों द्वारा कवि ने शान्त रस की जो तप धारा बहाई है, वह अनुपम है। शान्त रस मानवीय मनोयोगों के पराभव के पश्चात् उत्पन्न होता है और अन्तः-सलिला होकर प्रवाहित होता है। इसमें अनेक रसों का समाहार निश्चय ही कवि की विलक्षणता का द्योतक है।

छन्द-विधान--

लय और स्वर की समन्विति ही छन्द है। स्वर और लय से नियन्त्रित गति अपने को भावधारा में संयमित करती हुई प्रस्फुटित होती है[2]। शब्द की सत्ता स्वतन्त्र नहीं है, उसे तो अर्थ-सौन्दर्य के द्वारा नियंत्रित रहना पड़ता है। स्वर और लय की

---

1. काव्यप्रकाश, 4/9
2. गतिसंयमाश्छन्दः अ० छ० शा०

सम्पूर्णता से काव्य का संगीत-तत्त्व स्फूर्त होता है । अतएव काव्य के लिए छन्द की नितान्त आवश्यकता है ।

कविता के अन्त में सन्निहित भावधाराओं की अभिव्यक्ति लयात्मक स्वर प्रधान छन्द में ही हो सकती है । छन्द के बिना काव्य के रागात्मक तत्त्व की सुरक्षा नहीं हो सकती । क्योंकि छन्दरूपी दो किनारों के बीच प्रवाहित भाव-धारा में ही शब्द ताल और लय से युक्त होकर नर्तन करते हुए आगे बढ़ते हैं ।

मयणजुद्ध की रचना अपभ्रंश-चरित काव्यों की शैली पर आधारित है । उसमें अपभ्रंश चरित-काव्यों की तरह ही छन्दों की विविधता, विचित्रता, और बाहुल्य देखने को मिलता है । उक्त काव्य-कृति अपभ्रंश और हिन्दी के बीच की कड़ी है । अतएव अपभ्रंश की सभी विशेषताओं को अपने में सँजोए हुए है ।

प्रस्तुत कृति को कवि बूचराज ने "मयणजुद्ध" कहा है । ग्रन्थ के आदि और अन्त में कवि ने इसका उल्लेख किया है । यथा—

"जिणवर वागवाणी पणवउँ सुह थत्ति देह जग जणणी ।
वणणउं सुमयणजुद्ध किम जित्तिउ देव रिसहेसु[1] ।
तिसि दिनि वल्ल पसंठियउ मदनजुद्ध सविसेसु[2] ।।

यह रचना अन्य चरित-काव्यों से भिन्न है । इसमें चरित-नायक का वर्णन उस प्रकार उपलब्ध नहीं होता जिस प्रकार वह चरित्र-ग्रन्थों में गुम्फित रहता है । इसका घटनाचक्र तो भावात्मक और कल्पित है । इसकी रचना 159 पद्यों में विस्तृत हुई है, जिसमें अनेक छन्द प्रयुक्त हुए हैं । उसमें वस्तु, गाथा, मडिल्ल, षट्पद, रोड, पद्धडी, रंगिक्का, पाथडी, आभानक और चउपइया प्रमुख हैं । छन्दों की विविधता के कारण काव्य में माधुर्य और सरसता अक्षुण्ण रूप से व्याप्त है तथा उसका गेयात्मक रूप भी सुरक्षित है । ग्रन्थ में जिस प्रकार बदल-बदल कर छन्दों की योजना की गई है, उस दृष्टि से इस रचना को यदि रासक कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी । कवि स्वयंभू के अनुसार घत्ता, छड्डुनिका, पद्धडिया तथा अन्य सुन्दर छन्दों के रूप में रचा गया रासा-बन्ध काव्य लोगों के मन को प्रसन्न करने वाला होता है[3] ।

मयणजुद्ध काव्य पर ये लक्षण ज्यों के त्यों घटित होते हैं । मयण-जुद्ध की रचना पद्यों में हुई है । इसमें कुल 159 पद्य हैं, जिनमें 14 प्रकार के छन्दों के प्रयोग किए गए हैं । ग्रन्थ में एकमात्र वर्णिक छन्द—शार्दूलविक्रीड़ित का प्रयोग किया गया है । मंगलाचरण शार्दूलविक्रीड़ित-छन्द में किया गया है, बाकी के अन्य सभी छन्द

---

1. मयणजुद्ध, पद्य 2
2. वही, पद्य 159/4
3. स्वयंभू-छन्दस, 8/49

मात्रिक हैं। इसमें 29 वस्तु, 27 दोहा, 22 पद्धडी, 13 पायड़ी, 12 मडिल्ल, 11 गाथा, 11 रंगिक्का, 10 षट्पद, 7 गीता, 4 रोड, 4 चउपइया, 4 एकावली और 4 आभानक छन्द हैं।

शार्दूलविक्रीडित छन्द—

यह वर्णिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु क्रमशः होता है तथा 12 वर्णों पर यति होती है[1]। कवि ने इसको ताटंक-छन्द भी कहा है। छन्दशास्त्र में ताटंक एक मात्रिक छन्द है। उसमें 30 मात्राएं होती हैं, तथा 16 और 14 मात्राओं पर यति होती है और चरणान्त में मगण अवश्य होता है। परन्तु उक्त काव्य ग्रन्थ में उल्लिखित ताटंक छन्द में मात्राओं की संख्या तो छन्दशास्त्र के ताटंक छन्द के अनुकूल है किन्तु चरणान्त में मगण नहीं है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने ताटंक शब्द का प्रयोग श्लिष्ट अर्थ में किया है, जिसका दूसरा अर्थ कर्णाभूषण भी होता है। शार्दूलविक्रीड़ित स्वयं भी कर्ण को आनन्द प्रदान करने वाला छन्द है। इसीलिए कवि ने कदाचित् इसको ताटंक कहा हो? मयणजुद्ध में उल्लिखित यह छन्द शार्दूलविक्रीड़ित ही है। कवि ने वर्णिक छन्द के रूप में एकमात्र इसी छन्द का प्रयोग किया है जैसे—

"जो सव्वट्ठ विमाण हुंति चविओ तिण्णाण-चिर्लातिरे।
उव्वण्णो मरुदेवि कुक्खि रयणो इक्खाक कुल्मंडणो।।

वस्तु-छंद—

यह विषम मात्रिक छन्द है। महाकवि स्वयम्भू ने इसे मिश्र छन्द माना है[2]। इसमें नौ चरण अथवा पाँच पदियाँ होती हैं। इसके प्रथम चरण में 15, द्वितीय चरण में 12, तृतीय चरण में 15, चतुर्थ चरण में 11 और पंचम चरण में 15 मात्राएँ होती हैं एवं अन्त में दोहा छन्द की योजना रहती है। दोहा छन्द के चार चरणों को मिलाकर वस्तु छन्द के नौ चरण होते हैं। इसका दूसरा नाम रड्डा भी है। यथा—

"फिरिउ मनमथु जित्ति सुहु देस।
नट भाट जय-जय करहि पेसाच गंधव्व गावहिं।
बहु खिल्लिय दुड्ढ मनि कुजंस पटहु गडमहि बजावहिं।
माया करिउ वधावणउ मोह रंजिउ चित्तु।
सव्वहं इच्छा पुन्निया घरि आयउ जिणि पुत्तु।। (57)

कवि बूचराज ने वस्तु-छंद का प्रयोग सर्वाधिक किया है। प्रतीत होता है कि यह छन्द उक्त कृति के वर्णन प्रसंगों के लिए अनुकूल रहा होगा इसलिए इसका प्रचुर प्रयोग किया गया है।

---

1. स्वयम्भूछन्दस, पृ० 57   2. वही

मडिल्ल-छंद—

इस छन्द को प्राकृत पैंगलम में अडिल्ल कहा गया है[1]। इस कृति में उल्लिखित छन्द के लक्षण अडिल्ल की भाँति ही है। इसमें "अ" के स्थान पर "म" हो जाने से यह "मडिल्ल" बन गया है। प्रस्तुत रचना में इस छन्द की कुल संख्या 12 है।

प्राकृत पैंगलम के अनुसार इसके प्रत्येक चरण मे 16 मात्राएँ होनी हैं। प्रारम्भ के दो चरणों में यमक (तुकबन्दी) हो तथा पादान्त में पयोधर अर्थात् लघु, गुरु, लघु की संयोजना न हो। अन्त में सुप्रिय अर्थात् दो लघु मात्राएँ हों तो इसे अडिल्ल छन्द कहा गया है। इस छन्द का एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है—

"मोह धरिहि माया पटराणी।
करइ न संक अधिक सबलाणी।
करि परपंचु जगतु फुसलावइ।
नहिं निवर्ति किम आदरु पावइ।। (8)

पाथड़ी—

प्रस्तुत ग्रन्थ में इस छन्द के कुल 13 पद्य हैं (दे० 73-85)। इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं और अन्त में गुरु, लघु की योजना रहती है तथा चरणान्त में तुकबन्दी रहती है। उसे "पाथड़ी छन्द" कहते हैं। राजस्थानी भाषा में पद्धडी का पाथडी हो गया है। पद्धड़ी छन्द का ही अपरनाम पाथडी है। कवि ने प्रस्तुतग्रन्थ में दोनों ही प्रयोग किए हैं। इस छन्द का एक उदाहरण देखिए—

"अब आइ जुडी यह विषम संधि।
वह संक न मानइ जीति कंधि।
वह अप्पु-अप्पु अप्पउ भणेइ।
वह अवर कोडि तिण वडि गणेइ (84)

पद्धडी-छन्द—

इस कृति में पद्धडि छंद की कुल संख्या 22 है[2]। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होनी हैं। पादान्त में पयोधर अर्थात् जगण की योजना रहती है। प्राकृत पैंगलम में जो लक्षण पज्झटिका के दिए गए हैं, वे ही ज्यों के त्यों पद्धडी छन्द पर भी लागू होते हैं। अतः यह पज्झटिका का ही दूसरा नाम है। इसका एक उदाहरण देखिए—

---

1. प्रा० पैं० 1/125
2. प०, पद्य० 102-119, 28-31।

"आयउ पहिले अज्ञान घोरु
तिहि ज्ञानि पछाडिउ करिवि जोरु
मिथ्यातु उठिउ तब अति करालु ।
जिनि जीव रुलाये नन्त कालु (103)

गाथाछन्द—

यह छन्द प्राकृत-काव्य की आत्मा माना गया है । अपभ्रंश-काल तक इसका प्रयोग प्रचुरमात्रा में होता आया है । प्राकृत पैंगलम् के अनुसार यह प्रथम चरण में बारह, द्वितीय चरण में अठारह, तृतीय चरण में तेरह और चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्राओं से युक्त रहता है[1] संस्कृताचार्यों ने इसे "आर्या" छन्द कहा है । प्रस्तुत रचना में इस छंद के 11 पद्य हैं । इसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

"गढु पुत्रपुरी नामों राजा तहं सतु करइ थिरु रज्जो ।
तहि लेइ पुसु पहुत्ती बहु आदरु पाइओ तेणि ।।"(10)

रोड छन्द—

इस कृति में 4 पद्य इस छन्द में रचित हैं । यह एक मात्रिक छन्द है । इस छन्द में चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं । 11, 7, और 6 मात्रा पर यति होती है, और चरणान्त में दो लघु की योजना होती है । यथा—

भद्र प्रकृति जे होंहिं ध्यानि आरति न चहुट्टहि ।
अणुकंपा चिति करहि विनय सतभाई पयट्ठहिं ।
सदाकाल परिणाम मनि न राखहि मच्छर गति ।
कहियउ हम सरवत्ति ति नर पावहिं मानुष गति ।। (144)

एकावली-छन्द—

प्रस्तुत रचना में इस छन्द के 4 पद्य लिखित हैं । यह एक मात्रिक छन्द है । इसके चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ होती हैं । चरण के अन्त में गुरु और लघु रहते हैं । यथा—

"निलटासु बांबी बोलियउ चढि सुफ्फल विरखह ठाइ ।
इकु निउल जुअलु पलोइयउ सावडु चडियउ आइ ।। (99)

रंगिक्का—

प्रस्तुत कृति में इस छन्द के 11 पद्य उपलब्ध हैं । यह एक मात्रिक छन्द है । इसके प्रत्येक चरण में 40 मात्राएँ होती हैं । 13 मात्रा, 11 मात्रा, 9 मात्रा और 7 मात्रा पर यति होती है । दो-दो चरणों में तुकबन्दी की नियोजना रहती है । चरणान्त सगण (115) की योजना रहती है ।

---

1 प्रा० पैं० पृ० 52

"तीनि रतन ओसण करमि, धारि बंभव्रत असि, नफोगी बाजहि जमि, गहिर सरे ।
रहिय दया पोरिष-पूरि, भागिय हिंसा दूरि, बल उपसम सूरि, कियउ नरे ।।
आए अतिशय तीस चरि, परजै ति चक्करि, मंतु शुक्ल धानु धारि, राखिउ मणो ।
भाजु-भाजु रे मदन भुट, आदिनाहु सिरि सट, देइ करइ दहवट, प्रथम जिणो (134)

चउपइआ—

इस छन्द के 4 पद्य प्रस्तुत रचना में उपलब्ध हैं । इसके चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण में 30 मात्राएँ होती हैं । कवि पिंगल के अनुसार यह छन्द अमृत के समान प्रकाशित होता है[1] । इसमें 10, 8 और 12 मात्रा पर यति होती है । अन्त में एक सगण (115) और एक गुरु होता है । जैसे—

"जो दल बल पूरो, सब विधि सूरो, पंचहं महि परवीणो ।
परमत्थउ बुज्झइ, आगमु मुज्झइ, धम्म झाणि नितु लीणो ।। (125)

षट्पद—

इस कृति में इस छन्द के 10 पद्य प्राप्त होते हैं । इस छन्द का अपर नाम छप्पय भी है । इसके छह चरणों में से चार चरण रोला के और दो चरण उल्लाला के रहते हैं । पहले चार चरण में 24-24 मात्राएँ और दो चरणों में 28-28 मात्राएँ होती हैं । कुल 152 मात्रा का षट्पद छन्द होता है । यथा—

"जित्त सुभट बलवंड जिनिहि गज सिंह नवाइय ।
जित्त दइत्त परचंड लोय जिनि कुमगहि लाइय ।
जित्त देव बलिभद्र धारि बहु रूप दिखालिय ।
जित्त दुट्ठ तिज्जंच घालि लहु वणखंड जालिय ।
अस्सप्पति गजप्पति नरप्पति भूपत्तिय भूरहिय भरिय ।
ते छलिय अछल टालिय अटल मयण नृपति परपंचु करि ।। (52)

दोहा—

उक्त रचना में 27 दोहा छंद है । यह विषम मात्रिक छन्द है । इसके प्रथम चरण में 13 और द्वितीय चरण में 11 मात्राएँ होती हैं । तृतीय और चतुर्थ चरण में मात्रा का क्रम पूर्वोक्त ही रहता है । प्राकृत पैंगलम में दोहा छन्द के 23 भेद बतलाये गये हैं[2] । यथा—

"चलिउ विवेकु आनंदकरि धम्मप्पुरि सु पहुत्तु ।
परणाई संजम सिरी सुख भोगवइ बहुत्तु ।। (55)

---

1. प्रा० पैं० पृ० 89
2. वही, पृ० 72

आभाणक---

प्रस्तुत ग्रन्थ में इस छन्द की संख्या 4 है । इसका उल्लेख छन्दकोश के 17वें प्रकरण में हुआ है । 21 मात्रा वाले गेय छन्दों में इसकी गणना की जाती है । इसके अन्त में मगण होता है । यथा—

''करिवि पयाणउ मोहु महाभडु चल्लियउ ।

सम्मुह झंखडु वाय व्रधूलउ झुल्लियउ ।। (89)

गीता-छन्द—

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ होती हैं । यति 14 और 12 मात्रा पर होती है । चरणान्त में लघु और गुरु (1/5) का संयोजन रहता है । इसी छन्द को पिंगलशास्त्र मे गीतिका कहा गया है । यथा—

''बज्जिउ निसाणु वसंतु आय उछल्लि कुंद सुखिल्लियं ।।

रुणझुणिय केयइ कलिय महुयर सुतरु पत्तिहिं छाइयं ।।

गावंति गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।। (37)

अलंकार-योजना—

काव्य में अलंकार-योजना का महत्वपूर्ण स्थान है । भारतीय-साहित्य-शास्त्र में आचार्यो ने अलंकार को शोभाकारक तत्त्व माना है । आचार्य भामह[1], वामन[2] और जयदेव[3] ने अलंकार की महत्ता को प्रतिष्ठित किया है । आचार्य दण्डी ने अलंकार को काव्य का शोभा विधायक धर्म माना है[4] । आचार्य विश्वनाथ ने इसे रस का उपकारक मात्र माना है[5] ।

अलंकार की काव्य में जो भी स्थिति रहती हो, इतना तो अवश्य मान्य है कि अलंकार भावों की अभिव्यक्ति को प्रांजल और प्रभावशाली बनाने मे समर्थ होते हैं । अलंकारों की सार्थकता तभी सिद्ध होती है, जब वे रस, भावादि के तात्पर्य का आश्रय ग्रहण कर काव्य में सन्निविष्ट होते हैं[6] ।

अलंकार भाव और भाषा को सौन्दर्य प्रदान करते हैं और उससे तादात्म्य स्थापित कर उसे मधुर एवं सजीव बना देते हैं । जो अलंकार अपनी प्रभावोत्पादकता के अभाव में रसध्वनि की अभिव्यंजना नहीं करते उन्हें अलंकार की संज्ञा से विभूषित नहीं किया जा सकता ।

---

1. काव्यालंकार, 1/12
2. काव्यालंकार सूत्र 1/12
3. चन्द्रालोक, 1/8
4. काव्यादर्श, 2/1
5. साहित्यदर्पण, 10/1
6. ध्वन्यालोक, 2/6

कवि बूचराज का मयणजुद्ध काव्य रूपक शैली का काव्य है, जिसका भव्य प्रासाद रूपक, उपमा, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों के आधार पर निर्मित हुआ है। काव्य में इनके प्रयोग अपने-अपने स्थान पर समुचित ढंग से सन्निविष्ट हुए हैं और उनमें कृत्रिमता नहीं आने पाई है। वस्तुतः जिन कवियों की प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा से सम्वलित होती है, उन्हें अलंकार-योजना के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता।

कवि द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रमुख अलंकारों का संक्षिप्त सोदाहरण परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है---

अनुप्रास—

यह अलंकार नाद-व्यंजना के प्रकटीकरण में सहायक होता है। इसमें रसादि के अनुकूल समान शब्दों की आवृत्ति होती है। वर्णों के साम्य में भी अनुप्रास अलंकार होता है[1]। प्रस्तुत काव्य-ग्रन्थ में दोनों प्रकार के उदाहरण उपलब्ध हैं। यथा—

''जब दोनउं बइठे एक सत्थ।
कलिकालु कहइ तब जोडि हत्थ (73)
''जीवंतउ बैरी गयउ देखु जु कटिहइ सोजु।
नहि तूं मदन न मोह भडु दुहू गवावइ खोजु (64)
''दीनी कन्या सत्ति तिसु सुमति सरिस सुविशाल।
थापिउ रज्जु विवेकु थिरु घल्लि गलइ गुणमाल (11)

श्लेष—

श्लिष्ट पदों के योग से इस अलंकार की योजना की जाती है। अपने भावों में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कवि प्रायः इस अलंकार का प्रयोग करते हैं। उक्त कृति में कवि बूचराज ने अपने भावों को चमत्कृत करने हेतु इसका प्रयोग किया है। यथा—

''पवण छत्तीसउं सुखि वसइ करइ न को परतांति।
काचे कंचन गलिय महि पड़े रहहिं दिन राति (25)

यहाँ पवण शब्द श्लिष्ट है। उसके दो अर्थ हैं, एक अर्थ समर्थ है और दूसरा अर्थ है वायु। आत्मा की दृष्टि से वायु और जातियों की अपेक्षा से समर्थ है।

इसी प्रकार 122वें पद्य में भी ''राम'' शब्द श्लिष्ट है, जिसका एक अर्थ अकेला होता है और दूसरा अर्थ ''रमण करता'' है। निम्न पद्य में भी श्लेष का चमत्कार द्रष्टव्य है—

---

1. वर्ण साम्यानुप्रासः काव्यप्रकाश, 9/104

यह देखि जुद्ध सो कलिय कालु ।
खिण मांहि फिरिउ ना रदु वि तालु (114)

यहाँ तालु शब्द में श्लेष है । इसका एक अर्थ मुख का ऊर्ध्व-भाग अर्थात् तालु है और दूसरा ताली बजाना है ।

पुनरुक्ति—

काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए कवि ने जहाँ एक ही शब्द की चमत्कारपूर्ण आवृत्ति की है, वहाँ पुनरुक्ति अलंकार की योजना हुई है । प्रस्तुत कृति में इसके अनेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं । जैसे—रोम-रोम (पद्य 68), खोजत-खोजत (पद्य, 14), ठामि-ठामि (पद्य, 41) जो-जो, सो-सो, मा-मा (पद्य, 141) आदि । यथा—

वह अप्पु अप्पु अप्पउ भणेइ ।
वह अवरकोडि तिण बद्धि गणेइ (84)

वीप्सा—

जहाँ शोक, क्रोध और भय आदि मनोवेगों के सूचक शब्दों का प्रयोग बार-बार किया जाता है वहाँ वीप्सा अलंकार होता है । उदाहरणार्थ—

"भाजु भाजु रे मदन धुट आदिनाहु सिरि सट ।
देइ करइ दहवट प्रथम जिणे ।। (132)

उपमा—

साहित्य श्री की अलंकृति के लिए उपमा सर्वातिशयी अलंकार है । यह हृदयगत कोमल अनुभूतियों की सूक्ष्म अभिव्यंजना के लिए सर्वोत्तम अलंकार माना गया है । माधुर्ययुक्त भावनाओं को दूसरे के हृदय तक सम्प्रेषित करने वाला उपमालंकार ही है । उपमा का सौन्दर्य उसकी व्यापक प्रेषणीयता में है । यह अनुभूति- प्रवण है । इसका सौन्दर्य क्षण-क्षण नवीन मालूम पड़ता है । इस अलंकार के कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं—

"बुड्डंत संसार महि हुइ तरंडु खिण मांहि तारइ ।। (153)

अर्थात् जैनधर्म संसार-सागर में डूबते हुए मनुष्यों के लिए नौका समान है ।

"ते तप बलि सहु निद्दलहु भव तरु कंद कुदालि ।। (153)

अर्थात् यह साधु की तपस्या भवरूपी वृक्ष की जड़ को काटने वाली कुदाल के समान है ।

रूपक—

प्रस्तुत काव्य एक रूपक-काव्य है । इसलिए इसमें रूपक का प्राचुर्य है । एक से एक अनूठे रूपकों की योजना कवि ने की है । कवि ने अपने धर्म चक्षुओं से देखे पदार्थों का अनुभव कर अपनी काल्पनिक सहृदयता में बाह्य जगत और अन्तर्जगत का सुन्दर समन्वय कर दिखाया है । रूपक में उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप होता है[1]। इसमें सादृश्य का चामत्कारिक प्रयोग परिलक्षित होता है । रूपक अलंकार सारोपालक्षणा पर आधारित रहता है । एक प्रसंग में कवि ने ज्ञान सरोवर का सुन्दर रूपक उपस्थित किया है । यथा—

"ज्ञानु सरवरु ध्यानु तिसु पालि ।
जलु वाणी विमल मइ सघण वृक्ष तहि वात बारह ।
थिरु पंखी जोग तहिं नलिनि प्रगट प्रतिमा इग्यारह ।
अडतालीसउं रिद्धि तहिं आनंद-कुंभ भरेहि ।।
एक जीह ते सुंदरी बहु श्रुति जैन करेहि ।। (17)

अर्थात् उस नगरी में ज्ञानरूपी एक सरोवर है, जिसकी ध्यानरूपी पार (तट) है । उसमें विमल-मतियों की वाणीरूपी जल है, वहाँ बारह व्रतरूपी सघन वृक्ष हैं । स्थिर योगरूपी पक्षी सुशोभित है । इस सरोवर हैं में ग्यारह प्रतिमारूपी कमलिनी प्रकट हुई है । अड़तालीस ऋद्धिरूपी महिलाएँ प्रकट हुई हैं, जो आनन्दरूपी कुम्भ में जल भरती हैं । वे सभी सुन्दरी महिलाएँ एक जिह्वा से जिनेन्द्रदेव की स्तुति करती हैं ।

अन्य स्थलों पर भी कवि ने रूपक अलंकार का प्रयोग किया है । जैसे—

"उड्डु उड्डु चन्दवयणी आरत्तउ वेगि उतारि ।। (59)

प्रस्तुत पंक्ति में रति के मुख पर चन्द्रमा का निषेध रहित आरोप द्रष्टव्य है । युद्ध-प्रसंग में कवि ने सभी गुणात्मक भावों को रूपक के माध्यम से सेना और अस्त्र के रूप में प्रस्तुत किया है, जो कवि की विचक्षण प्रतिभा और कल्पना को व्यंजित कर रहा है । (देखिए, पद्य सं० 102-110, 135-138)

कवि ने लोक व्यवहार से अलग हटकर रूपक अलंकार का एक अनूठा ही उदाहरण प्रस्तुत किया है । यद्यपि सदियों से कवि-गण मुख पर कमल या चन्द्र उपमानों का आरोप करते आ रहे हैं, वहीं पर कवि बूचराज ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा शक्ति का परिचय देते हुए "मुख" के लिए एकदम नवीन उपमान "आम्र" की कल्पना की है और "मुख" पर उसका आरोप किया है । यथा—

"ते अविरुउ भत्तिहि णिम्मल चित्तहि विकसित वदन रसालो ।

---

[1] तद्रूपकमभेदो य0 उपमानोपमेययो: काव्य-प्रकाश, 10/13.9

मोहह मय खंडणु ज्ञानह मंडणु चढिउ विवेक भुवालो (124)

जिसका चित्त निर्मल है और जो निरन्तर भक्ति करता है तथा जिसका गुणरूपी आम्र विकसित है ऐसा विवेक राजा, मोह का मद खंडन करने के लिए ज्ञान का भूषण स्वरूप चढ़कर चल दिया।

कवि ने जिनेन्द्र के रथ का वर्णन भी रूपक के माध्यम से किया है, जिसमें जैन दर्शन के समस्त तत्त्वों का उद्भावन हो जाता है (देखिए, पद्य० 132)

उत्प्रेक्षा—

उत्प्रेक्षा अलंकार वहाँ होता है जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है और सम्भावना एकरूपता से की जाती है। साम्यरूप विवक्षा का यह अलंकार कवियों को बड़ा प्रिय रहा है। इसमें कवि के समक्ष अपनी मधुर कल्पना के मुक्त प्रयोग का विस्तृत क्षेत्र रहता है और वह सौन्दर्यानुभूति की कोमल अभिव्यक्ति का प्रसार इसमें व्यापक रूप से करता है।

मयणजुद्ध में भी कवि ने इस अलंकार के माध्यम से नवीन कल्पनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। जैसे—

"जब तिनि नारि विछोइयउ तब तमकिउ तिसु जीउ।
जणु प्रजलंती अगिणि महि लेकर ढालिउ घीउ ।। (67)

अर्थात् जब मदन की पत्नी रति ने उसे विक्षोभ किया तब वह रोष से उबल पड़ा वह ऐसा प्रतीत होता था, मानों प्रज्ज्वलित अग्नि में घी डाल दिया गया हो।

एक अन्य उदाहरण देखिए—

"जिन्ह तिलक मृगमद तिक्ख भल्लिय चीर धज करकंतियं।
"जिन्ह कानि कुंडल कंद मनमथ मूढ बढि बज्झंतियं (39)

अर्थात् नारियों ने उत्तम वस्त्र धारण किए। वे (वस्त्र) ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों ध्वजाएँ फहराकर विजय की घोषणा कर रही हों। जिन नारियों ने अपने कान में कुण्डल पहने हैं, वे (कुण्डल) ऐसे प्रतीत हो रहे हैं कि मानों मन्मथ ने मूढ जनों को बाँध लिया हो।

युद्ध-वर्णन प्रसंग में कवि ने मौलिक उद्भावनाएँ की हैं यथा—

"वे अणिय जोड़ि जुट्टिय भुवाल।
तहँ पडहिं खग्ग जणु अगणिझाल ।। (130)

अर्थात् जब सेना एकत्रित कर राजा आपस में लड़ाई कर रहे थे और खड्ग चला रहे थे तब वे खड्ग ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों अग्नि की ज्वाला ही जल रही हो।

उदाहरण—

यह सादृश्यमूलक अलंकार है । वर्णन-प्रसंगों में समानता दिखलाने के लिए उक्त अलंकार में ज्यों, जैसे, इव आदि वाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है । साम्य प्रदर्शन के लिए शब्दगत साम्य की ओर कवि ने अधिक ध्यान दिया है । विषयों के अनुकूल वर्णन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए प्रस्तुत रचना में कवि ने सफल और सुन्दर अप्रस्तुतों की योजना की है । यथा—

"मोहि सुणी जब बात यह तब मंनि मच्छरु बाधु ।
डालि चडिउ जणु वांदरउ चूतडि बीछू खाधु (30)

अर्थात् जब मोह ने यह बात सुनी तो उसके मन में ईर्ष्या-द्वेष बढ़ गया । जैसे कि आम की डाली पर चढ़ा हुआ बंदर आम तोड़ कर खाता है और उसे आम्र-वृक्ष का स्वामी नहीं सुहाता । उसी प्रकार वह मोह भी विवेक की प्रशंसा नहीं सुन सकता ।

इसी प्रकार क्रोधाविष्ट मदन का चित्रण चार उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है—

रोम-रोम उद्धुसिय भृकुटि चाडिय गिल्लाडिय ।
गुरणायउ जिम सिंधु घालि बलु लिय अंगाडिय ।
विसहरु जिय फुंकरिउ लहरि ले कोपह चडियउ
न हु सहिय तमक तिसु तरुणि की मच्छु तुच्छ जलि जिम खलिउ । (68)

जिस प्रकार वर्षा ऋतु के मेघ वर्षा करके सज्जनों को प्रसन्न कर देते हैं और दुर्जनों के मस्तिष्क पर ताल (वज्र) जैसे पड़ते हैं, उसी प्रकार विवेक ने सज्जनों को प्रसन्न किया और दुर्जनों को दुखी बनाया । यथा—

"रंजिय सहि सज्जण जिम पावस घण दुज्जण मत्थई तालो (123)

रणांगण में योद्धा इस प्रकार यहाँ से वहाँ युद्ध करते, चक्कर लगाते दिखलाई पड़ रहे थे, जिस प्रकार कि घिरनी नाचती है । उदाहरण देखिए—

"रण अंगणु देखिवि शूरवीर ।
पेरणी जेम नच्चहिं गहीर ।। (102)

समुच्चय अलंकार—

युद्ध में मोह और मदन का क्रोध से जलना, बलना, रिसना, नेत्रों को रक्ताभ करना, दाँत पीसना, आदि के चित्रण में समुच्चय अलंकार का सुन्दर निरूपण हुआ है ।

"चडिउ कोपि कंदप्पु अप्पबलि अण्णु न मण्णइ ।
कुंदइ कुरलइ नसइ हसइ सुभटइं अवगण्णइ ।।" (136)

"जब बात सुणी यह मोहराइ ।
तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ ।। (118)

मयणजुद्ध का भाषा-सौन्दर्य

मयणजुद्ध की भाषा मूलतः उत्तर मध्यकालीन राजस्थानी है, जिस पर समकालीन अपभ्रंश और हिन्दी का प्रभाव है । वस्तुतः इसे सांध्यकालीन भाषा माना जा सकता है - जिस समय अपभ्रंश भाषा से हिन्दी का विकास हो रहा था, उस समय की सन्धि-बेला में मयणजुद्ध की रचना हुई । इसलिए इसमें अपभ्रंश की प्रवृत्तियों का होना स्वाभाविक है, साथ ही आदिकालीन हिन्दी का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । इन प्रवृत्तियों के मिलन के कारण इसकी भाषा में हिन्दी की उदारप्रवृत्ति भी कार्य कर रही है । अतः उक्त रचना में राजस्थानी, अपभ्रंश और हिन्दी शब्दों के साथ-साथ संस्कृतनिष्ठ, तत्सम, तद्भव तथा व्रज, देशज और उर्दू, अरबी आदि भाषाओं के शब्द भी अपनी स्वाभाविकता और सरलता के साथ प्रयुक्त हुए हैं, उनकी वर्गीकृत संक्षिप्त सूची यहाँ प्रस्तुत की जा रही है ।

अपभ्रंश—

विण्णि (93) सत्तु (10) पहुत्ति (10) थापिउ (11), रंजिज (11) विथारि (9) वियसिय (97) कण्ण (23) अगाहु (131) नाहु (131) राउ (28) मच्छरु (30) जीह (17), जीय (15) थिरु (17) जती (18) धम्म (125) परमत्थ (125) दव्व (126) अत्थि (126) अमिउ (4) कलमसु (4) सरवण्णु (3) आदि ।

संस्कृत तत्सम शब्द—

कमल (98), आवर्त (32), लवण (90) त्रिदंडी (48), कुंजर (34) द्रोह (13) भ्रकुटि (68) तरुणि (68) पावस (68) पटंबर (41), ज्योति (98) कटक (135) निपान (135) केहरि (34) अनुपम (98) चीर (39) समर (32) अनुप्रेक्षा (133), आज्ञा (138) सुरपति (138) आदि ।

राजस्थानी—

बीडउ (35) मज्झि (3) पुत (10) भरड़ाकुति (14), घण (94) काई (94) थइ (88) घालि (47) धुकंती (99), अंबि (37) जूणि (143), कइ (18) बांदरउ (30) पूछण (22) हणिउ (104) हरखु (53) जिवइ (33) चरड, (26) ढंढोल्लिवउ (65) घणां (49), पाथर्डी (84) सैन (31), बापुडे (34) जुडइ (31) आदि ।

तद्भव—

परपंचु (52) सहज (138) सेणिक (50) भुवंग (38) सुरही (98) इंद (47) अनंगु (56) गुवाल (93) दिन (25) पंखी ([illegible]) आदि ।

व्रज—

बइठउ (7) ठामि (19) भायउ (20) वेगि (31) दीठी (23) कवण (70) कवणु (71) जनु (30) जिम (31) बुज्झइ (125) दुंदुहि (135) आदि ।

देशी—

खिद्द (40) काधि (40) दुडे (62) बोछु (30) खिसहिं (10) निहाले (100) जुहारु (21) घिरनी (102) आदि ।

अरबी शब्द—

खोजत (14), नफीरी (134) फोज (95) खोइय (116) खोज (110) खबर (31) दरवेस (48) आदि ।

मयणजुद्ध की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव

1. अपभ्रंश भाषा की विशिष्ट प्रवृत्ति उसका "उकार" बहुल होना है । यह प्रवृत्ति मयणजुद्ध की भाषा में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । जैसे—कोपु=कोप (34) निस्साणु=निशान (36), मत्तु=मात्र (68) कंदप्पु=कंदर्प (35) आदि ।

2. उपधा स्वर की सुरक्षा—

मिरदंग=मृदंग (97) सम्मुह=सम्मुख (97) समुद्द=समुद्र (5) कुस्सीलु=कुशील (110) आदि ।

कहीं कहीं अन्त्याक्षर में व्यंजन ध्वनि के लोप हो जाने पर उपधा और अन्त स्वर का संकोच भी हो जाता है । यथा—

इत्ती—इतनी (86) उचारु=उच्चारण (97) आदि ।

डॉ० जी० वी० तगारे के अनुसार कुछ ऐसे स्वर-परिवर्तन के उदाहरण भी मिलते हैं, जिनमें सम्भवतः स्वराघात के अभाव अथवा समीकरण और विषमीकरण के कारण भी उपधा स्वर में गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है । जैसे :—

मज्झु=मध्य (60) सवण—सुवण=स्वप्न (100) आदि ।

3. आदि स्वर लोप—

ढिगन=सिंढिगन (127), भिंनर=आभ्यंतर (6) नन्त=अनन्त (103)

4. अपभ्रंश में ऋस्वर के स्थान पर अ, इ, उ, और रि का आदेश हो जाता है । जैसे :—

ऋ=अ भरडाकउ=भ्रष्टाकृति (14)

ऋ=इ तिणो=तृण (45), अमिउ=अमृत (4) मिरदंग=मृदंग (97)

ऋ=उ उसभ=ऋषभ, वृषभ (139)

ऋ=रि रिसहो=ऋषभ (1)

ऋ का ऋ भी पाया जाता है—

तृण=तृण (26)

5. पद के अन्त में स्थित उं, हुं, हिं और हं का ह्रस्व उच्चारण होता है । जैसे—

सिउं (21), कहं (23), तहिं (24) कहुं (18) ।

6. अपभ्रंश में एक स्वर के स्थान पर प्रायः दूसरा स्वर हो जाता है ।

यथा—

अ=इ	अंग=अंगि (50)
अ=उ	मात्र=मत्तु (68), अनंग=अनंगु (56)
आ=अ	सीता-सीय (47)
आ=इ	राजा=राइ (93)
आ=उ	राजा=राउ (7)
आ=ए	ला=लेइ (7) निनाद=निनेह (77)
इ=ई	दिया=दीयउ (64)
ई=इ	वेणी=वेणि (38), मोहनी=मोहनि (46)

7. दन्त व्यंजनों के स्थान पर मूर्धन्य का प्रयोग—

पत्तन=पट्टणि (14), सर्वार्थ=सव्वट्ठ (1) कोतवाल=कोटवाल (14)

8. वर्णागम में स्वर या व्यंजन का आदि, मध्य और अन्त स्थान में आगम । जैसे—

क्रूर=करुरि (108), तिमिर=तिमिरु (106) भ्रमण=भमियइ (105), विवेक=विव्वेक (128) ।

9. वर्णविपर्यय भी होता है । यथा—

हर्ष=रहसु (94) स्पर्श=परसु (42), हरसिउ=रहसिउ (58)

10. वर्णलोप भी पाया जाता है ।

अनन्त=नन्त (103), स्खलित=खलिय (79) ।

विश्वास=विसास (104), स्थिर=थिरु (11)

स्थापित=थपिउ (11)

प्रस्तुत ग्रन्थ में भाषा-व्याकरणिक प्रवृत्तियाँ

सर्वनाम-सर्वनामों में मई (71/2) मुझु (65/2) मज्झु (60/2) मुझ

(63/1) तुं (29/1), तुझु (66/2), तुम (74/1), तिन्ह (22/2), तिलु (97/2), वैं (129/3), तिसु (90/2),

निश्चयवाचक—

ए (90/4), यहु (33/2) यह (29/2)

अनिश्चयवाचक--

कोई (27/1) किसिउ (7/1)

निजवाचक—

आपु (47/3) आपण (51/4) अप्पु (35/1) ।

प्रश्नवाचक—

किम (2/2) कत्थ (70/1) कासु (61/3) कि-कि (48/4) को (85/4) काइं (94/2), कवण (21/4)

कारक—

कर्त्ता --मयणु (83/1), रिसहेसु (2/2), कोटवालि (14/4) ।

कर्म—मुक्तिपंथु (71/3), कलिकालिहि (72/2), चारित्तं (96/1), भुत्तुं (1/2) ।

करण —नगरहु (90/4), कज्जेण (60/1), परतापहि (64/3), मारगि (100/4), सूरों (125/1), पूरो (125/1) ।

अपादान—वज्जदंडु (114/1) वहु (117/1)

सम्बन्ध- -पुरुषहं (72/2), कुद्दालो (126/3)

अधिकरण—नेजि (74/1), गिल्लाडिय (64/1), हाथि (98/1) पवतिहि (98/4) मांहि (84/3), मन्हे (51/2), सरवरि (16/2)

सम्बन्ध सूचक तण और केर तथा अधिकरण सूचक मज्झि परसर्गों का प्रयोग भी किया गया है । यथा—

मज्झि (7/1), तणउ (63/1), केरउ (42/1)

क्रियाएँ-भूतकाल—

चडियउ (92/1) आइयउ (95/1) नियसियउ (97/1) भरियउ (75/2) झुल्लियउ (89/2) णिवारणु (3/2), जाणहु (13/4) ।

भूतकृदन्त—

चडिउ (136/1), दिट्ठ (101/1), आइय (72/1) घल्लिउ (104/1)

वर्त्तमानकाल—

चल्लिउ (87/1) निस्माणु (36/2) बोलइ (91/4), भरहि (17/4) करहि (17/5) दिज्जइ (4/2) पिज्जइ (4/3) ।

भविष्यतकाल—

कहेम (23/2) गँवावइ (64/5), उव्वरउँ (53/5), गंवागउँ (53/5)

क्रियाविशेषण—

कालवाचक—आजु (34/5), जव (32/2), तव (30/1), निन (51/31) दिवसि (12/2) ।

स्थानवाचक—कहुँ (61/2), नहिँ (8/4), जाहँ (76/2), ताहँ (76/2) कहाँ (22/2), तहँ (10/1), कत्थ (70/2) ।

रीतिवाचक—केम (87/4), एम (34/1), अइसी (32/5), जइसी (23/2), किम (2/2), जिम (21/2) जइसी (22/2), एहु (4/4), इमु (6/2) ।

परिमाणवाचक—इत्ती (86/2), घणु (68/4), अति (28/4), बेगि (31/1) बहुत (43/2), अतुल (45/2) बहुती (18/1) ।

ध्वन्यात्मकशब्द—ध्वन्यात्मक शब्दों में झडपडहि (76/4), गहगहिउ (96/1) झल्लरि (97/3), कलकलाइ (109/3), खडहडिउ (114/2), रडवडिउ (119/3), झिल्लणु (127/4), गहगहइ (140/5) आदि के प्रयोग किए हैं ।

कवि की अन्य विशेषता यह है कि उसने अनेक स्थलों पर क्रिया पद से वाक्य का प्रारम्भ किया है । यथा—

चल्लियउ रिसह जिणिंद स्वामी (97/1)

ध्याइयउ सुतीवउ ताइ सुद्ध (80/1)

हक्कारि भड्डु चरित्तं (96/1)

उट्ठियउ मोहराओ दिट्ठो नरु सूखीरो—(70/1)

चिड्डिउ गहिरु गज्जंतु (45/1)

ढंढोलियउ तित्रउ भुवण (65/1)

परणाईं संजमसिरि (55/2)

फिरिउ मनमथु जित्ति सुहु देस (57/1)

फेरिय जगत आणि मंडिवि रणो (45/6)

चलिउ विवेकु आनन्दकरि (55/1)

सुणहु स्वामी हउ सुकलिकालु (71/1)

भग्गहं पिट्ठि न धाइयइ पुरुषह, इहु इ पमाणु (56/2)

कवि ने "बोल धातु" का प्रयोग अपरिमित मात्रा में किया है—

बुलाइ (21/3), बुलायउ (22/1) बगि बुलाइ (31/1) बुल्लिय (37/2) बुल्लावइ (54/2), लिय बुलाइ (73/2) आदि ।

"द" धातु के कुछ आदेशात्मक क्रिया रूप भी उल्लेखनीय हैं—

देइ (35/2), दियो (138/5) देउ (146/2), दिया (50/2) दीनिय (51/2), दीयउ (128/2), दिय (89/1), दीनी (11/1) आदि ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में "ला" धातु अपने अनेक रूपों में प्रयुक्त है । यहाँ उसका अर्थ विस्तार दिखलाई पड़ता है । जैसे लेइ (79/1) लेहि (78/2) लायउ (139/2), लावहिं (79/4), ले (62/5) लेण (13/2), लेकर (67/2) लाए (50/3), लियउ (46/5), लावहिं (79/4) ल्यायउ (61/3) आदि ।

उक्त रचना में "लग्ग" धातु भी अपनी विशेषता के साथ दिखलाई पड़ रही है ।

जैसे—लग्गइ (120/4), लग्गउ (46/7) लग्गहि (39/3) लग्गि (58/1), लग्गिवि (122/2), लग्गु (115/4), लगु लेकर (15/2) इत्यादि ।

राजस्थानी भाषा में "घल्ल" धातु का प्रयोग अत्यधिक होता है । उक्त कृति में भी अनेक बार उसका प्रयोग द्रष्टव्य है । यथा—

घाल्या (135/1), घल्लिय (117/2), घल्लि (11/2), घालि (52/4), घालहिं (77/2), घल्लियउ (104/1) घालिउ (63/1), घाले (62/5) आदि ।

"देख" धातु का प्रयोग भी कभी अपभ्रंश कभी राजस्थानी और कभी हिन्दी में प्रयुक्त हुआ है । यथा—

अपभ्रंश—दिट्ठि (101/1),दिट्ठउ (27/2) दिट्ठी (27/2) दीठे (9/1), राजस्थानी—दीसई (24/5), देखिउ (20/2), देसिवि (102/3),

हिन्दी—देखत (19/2), देखि (15/1) देखी (19/4), देखिया (98/2), आदि।

सूक्तियाँ—सूक्तियाँ सूत्र शैली में आबद्ध ऐसी सुचिन्तित वाक्यावलि है जो अत्यन्त सरस–एवं रोचक होती है । वे सहजगम्य और मन पर उनका प्रभाव अमिट होता है । कवि अपने वर्णन-प्रसंगों को हृदय भेदी बनाने हेतु प्रसंगानुकुल सूक्ति वाक्यों की सर्जना करता है । उनके कारण वर्णन-सौन्दर्य उसी प्रकार अलंकृत होता है, जिस प्रकार नगीने जड़ी हुई अगूंठी एवं उसे धारण करने वाली अंगुली ।

प्रस्तुत ग्रन्थ ऐसी हृदयावर्जक सूक्तियों का भाण्डारगृह है । उदाहरणार्थ कुछ प्रमुख सूक्तियों को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है ।

1. डालि चडिउ जणु वांदरउ चूतडि बोछू खाधु ।। (30/2)

आम्र वृक्ष की डाली पर चढ़े हुए बन्दर को उस वृक्ष का स्वामी अच्छा नहीं लगता और वह उसे काट खाता है ।

2. "रहहिं कि कुंजर वापुडे जहिं वणि केहरि गंध ।। (34/4)

जिस वन में सिंह की गंध आती हो वहाँ विचारे हाथी कैसे रह सकते हैं ?

3. "भग्गहंपिट्ठि म धाइयइँ पुरुषहँ इहु इ पमाणु" ।। (56/2)

भगोड़ों की पीठ पर नहीं दौडना चाहिए ।

पुरुषों के लिए यही वचन प्रमाण है ।

4. वडह वडेरी परिथवी घरमहि गव्वहि कीसु "(66/1)

बड़ों की यह पृथिवी बहुत बड़ी है । इसमें और अपने ही घर में गर्व कैसा ?

5. "जै नीति मारग पुरुष चालहिं तिन्हरु सीझहिं काम । (100/4)

जो पुरुष न्याय और नीति के मार्ग पर चलते हैं, उनके सभी कार्य सिद्ध होते हैं ।

6. रणु देक्खिवि जे नर खिसहिं तिन्ह की जननी खोडि । (101/4)

जो मनुष्य युद्ध की भीषणता के कारण खिसकने (भागने) लगते हैं, उनकी माता खोडी (बन्ध्या) है ।

7. "वाणी णिम्मल अमियमय सुणि उपजई सुह झाणु ।।" (140/4)

प्रभु की निर्मल अमृतमयी वाणी को सुनकर सभी के हृदय में शुभ-ध्यान उत्पन्न हो गया ।

8. "मुहु मीठा मनि मलिण पंचमहि भला कहा विहिं ।

इण कम्मिहि नरु जाणि जूणि तिज्जंचरु पावहिं ।। (143)

जो मनुष्य मन में मलिन भाव रखकर मुख से मधुर शब्दों द्वारा पंचजनों में सज्जन कहलाते हैं, वे छद्मवेषी पुरुष अपने इन कर्मों के कारण तिर्यंच योनि को प्राप्त करते हैं ।

9. इम जे पालहिं भाव सिउं यहु उत्तमु जिणधम्मु ।

जगमहि हूवउ तिन्ह तणउ सकयत्थउ नरजम्मु ।। (151)

जो क्षायक भाव पूर्वक उत्तम जिनधर्म का पालन करते हैं, उनका इस लोक में मनुष्य जन्म कृतार्थ होता है ।

वर्णन प्रसंग

युद्ध-प्रसंग

प्रस्तुत कवि ने युद्ध-वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक रूप में किया है । कवि बूचराज

ने प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और कामदेव के मध्य भावात्मक युद्ध का वर्णन किया है, जो वीरोचित उत्साहपूर्ण एवं नीतिपूर्वक हुआ है। कवि ने सैन्य-संगठन (35-36) व्यूह रचना (44/1 86/2), सैन्य-संचालन (86/2), तुरंगिणी सेना (36/1) एवं अस्त्र-शस्त्र (130-) का जिस प्रकार वर्णन किया है, उससे प्रतीत होता है कि या तो कवि ने स्वयं युद्ध में भाग लिया था अथवा युद्धों का दिग्दर्शन किया था, या फिर उस युग में युद्धों का इतना जोर था कि कवि उस प्रभाव से अपने आपको मुक्त नहीं रख पाया। चूँकि 11वीं सदी से लेकर 16वीं-17वीं सदी तक छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े भी कंचन, कामिनी या फिर राज्य-विस्तार की लिप्सा के वशीभूत होकर आपसी वैमनस्य के कारण परस्पर में भीषण युद्ध करते रहते थे। दूसरी ओर उसी समय से भारत में विदेशी आक्रमण भी प्रारम्भ हो गये थे। इतिहास-प्रसिद्ध मुहम्मद गोरी, महमूद गजनवी और बाबर आदि ने जिस प्रकार के भीषण युद्ध किए थे, उससे लोगों का हृदय दहल गया था। उन युद्धों की स्मृति ही सदियों तक जन-मानस में सिहरन पैदा करने में समर्थ थी। प्रतीत होता है कि युद्धों की उसी भयावहता ने कवि को प्रेरित किया होगा। अतः उन्होंने भी भावात्मक युद्ध के रूप में प्रस्तुत युद्ध के सजीव चित्रण का अवसर निकाल लिया।

मध्यकालीन भारतीय रण-नीतियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट आभास होता है कि उक्त युद्ध वर्णन प्रारम्भ से अंत तक वैज्ञानिक और नीतियुक्त है। दोनों पक्ष युद्ध के पूर्व अपनी सभा एकत्रित कर मंत्रियों के साथ विचार विमर्श करते (31-32, 53/3, 54) है, तब युद्ध की घोषणा की जाती है। सेना प्रस्थान करने से पूर्व युद्ध के वाद्य बजाए जाते हैं, (36/2, 44/3), जिससे कि चारों ओर युद्ध का समाचार फैल जाता है।

कवि के वर्णनानुसार ध्वजा-पताकाओं को फहराती हुई (133/1) चतुरंगिणी सेना (36/1) चली। सर्वप्रथम पैदल सैनिकों का दल (44/1, 133/3) चला, उसके पीछे हाथियों की सेना (44/2, 88/1-2), उसके पीछे चंचल घोड़ों का दल चला (44/2), तत्पश्चात् रथ पर अन्य वीर सवार होकर चले (135/4)। कामदेव भी हाथी पर चढ़कर चला। उसके सिर पर छत्र लगा हुआ था और चँवर ढुल रहे थे।

उसने पहले आदीश्वर के आगम और अध्यात्म (92/2) नामक दूतों को बुलाकर प्रभु के पास अपने आने का अभिप्राय बतलाया और कहा कि—"अपने स्वामी से कहो कि तुमसे युद्ध करने के लिए मदन राजा अपनी सेना सहित आ पहुँचा है।" विपक्षी सेना भी अपने पूरे साज-बाज के साथ आ पहुँची। तत्पश्चात् दोनों पक्षों में तुमुल युद्ध होने लगा। बराबरी के वीर परस्पर में भिड़ गए। जैसे मदन-

मोह की ओर से यदि "अज्ञान" नामक वीर आया तो उससे लड़ने के लिए आदीश्वर प्रभु का "ज्ञान" नामक वीर आया। इसी प्रकार मिथ्यात्व के साथ सम्यक्त्व, विषय के साथ संयम, क्रोध के साथ उपशम आदि अन्यान्य वीर परस्पर में युद्ध करने लगे। शुभ भावों से अशुभ भाव एक-एक कर हारने लगे। (103-124)।

उसके बाद मोह के साथ युद्ध करने के लिए विवेक नामक शूरवीर मैदान में आया (124)। मोह और मदन अपनी अनीक (सेना) (130) एकत्रित कर उससे आ भिड़े और परस्पर में खड्ग तथा पीत लेश्या और शुभ लेश्या रूपी गोले छोड़ने लगे (130)। इस भीषण युद्ध को देखकर ऋषभदेव अपने संयमरूपी रथ पर आरुढ़ होकर युद्ध भूमि की ओर चले (131)। उनके रथ में तीन गुप्ति रूपी हाथी जुटे हुए थे। पाँच महाव्रत रूपी सुभट उनके साथ थे। उन्होंने ज्ञानरूपी तलवार हाथ में लेकर क्षमा को सामने रखा। सम्यक्त्व ने प्रभु के सिर पर त्रिरत्न रूपी छत्र तान दिया। आगम-स्वर रूपी बाण छूटने लगे, जिसे देखकर कुमति रूपी कायर मनुष्य का हृदय थर्राने लगा और वह जोर-जोर से गर्जना करने लगा—"हे मदन, तू यहाँ से भाग-भाग। ये आदिनाथ प्रभु तेरे सिर के ऊपर ऐसा प्रहार करेंगे, जिससे कि तू नष्ट ही हो जायेगा (132-136)।

अन्ततः आदिनाथ स्वामी ने ध्यान रूपी सर्प से मदन पर प्रहार किया, जिससे वह खण्ड-खण्ड हो गया (136/6) तत्पश्चात् उन्होंने प्रचण्ड मोह और कलिकाल को दुस्सह रूप से बाँधकर भूमि पर पटक दिया (137) और इस प्रकार आदि-जिनेन्द्र ने मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

युद्ध वर्णन प्रसंग में समानता—

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, कवि बूचराज का समय भारत पर विदेशी आक्रमणों का समय था। जनमानस उससे भयाक्रान्त और बेबश जैसा हो रहा था। अतः युग की पुकार पर अनेक संवेदनशील कवि निर्भीकतापूर्वक सामने आये और उन्होंने जन-नैराश्य को अपने कवि-कर्म द्वारा दूर करने का अथक प्रयास किया। इस दृष्टि से उत्तरकालीन अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी-काव्य प्रमुख हैं। परवर्ती हिन्दी कवियों पर भी उनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कवि बूचराज भी उसके अपवाद नहीं। देखिए कवि बूचराज चंदवरदाई कृत "पृथिवीराज रासो" से कितने प्रभावित हैं ? तुलनात्मक दृष्टि से कुछ पंक्तियाँ यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :—

1. गज घंटन हय खेय विविध पसुजन समाजइव।
घन निसान घुम्मरत प्रबलपरिजन समथ्थनव।। (पृथिवीराजरासो कनवज्जसमय 134)।

''रहहिं सि किम घण घट्टं जुड्डिया सब्ब सैन मिलिय गजथट्टु ।
सब मिलि चले सुभट्टं पयाणओ कियउ भड्डु मोहु ।। (मयण० ८८)

2. हक्कारयो हेजम्म कवि निकट बोलि नप ईस ।
मरसें बर संभारि करि कवि दींनी असीस ।। (वही० 140)
हक्कारि भड्डु चरित्तं सज्जिउ नप सैंनु सबलु संबूहो ।
गहगहिउ जैंन चित्तं जब चल्लिउ रिपइ जिणणाहो ।। वही० ९८ ।।

3. कितक सूर संभरि नरेस अंदेस कहत करि ।
कितक देस बल बंधि राव रावत्त छत्र धरि ।। वही० 154)
को पट्टणु वर नयरु कवणु सबल भूपति डिगायउ ।
किस छलुं विहंडियउ करिवि बंदि कहु कासु ल्यायउ ।। वही० 61 ।।

4. उठे हथ्थ हक्के कहं कूइकालं जुटे जोध जोद्धंतुहै ताल तालं ।
सुभट्टं सुथट्टं सुगीसं समेकं भई सेलमेलं अनी एक एकं ।
लुटेबान चहुआन आवद्धराजं लगे पेछ मनों वज्र बाजं
फुटे संगि संनाह के अंग अंग उठे श्रोन छिंदे जरै जानि ढंगं ।
(वही बड़ी लड़ाई समय 128)

वैं अणिय जोडि जुट्टिय भुवाल तहँ पडहिं खग्ग जुण अगणिझाल । (वही० 130)

''दोनउ ढुक्के सबल दल मिलिय सुभट मुख जोडि
रणु देक्खिवि जे नर खिसहिं तिन्हकी जननी खोडि (वही० 101)
रण अंगणु देखिवि शूरवीर पेरणी जेम नच्चहिं गहीर ।। (वही० 102)

5-6. चढ़ि चलन राज आवाज कीन नीसान नद्द बज्जै बजीन ।
चिहु ओर भरनि छुट्टे तुरंग सजि सिलह भाँति नाना अभंग ।।
फट्यौंति सीस भइ पंच फारि गजढ्रयौं जानि गिरिवर विसार । वही०
''गुडिमत्तु गयणु गज्जिउ सज्जिउ दल त्रिषभु चहु पयारेण ।
हरि नंभ ईसु भज्जिउ वज्जिउ जब गहिरुनिस्साणु । वही० 36
''जब बात सुणि यह मोहराइ तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ । वही० 8
मोहराज तब गज्जियउ दलबल सेन विथारि (9)

वाद्य एवं संगीत—

कवि के प्रायः सभी वर्णन-प्रसंग अत्यन्त सुन्दर और सुरुचि सम्पन्न हैं । फिर भी उनमें से वसन्तऋतु का आगमन (37-43) अतीव आकर्षक, प्रांजल, प्रभविष्णु और आलंकारिक भाषा-शैली में वर्णित हैं । इन्हीं प्रसंगो में विभिन्न वाद्यों के भी

उल्लेखित हुए हैं, जो एक ओर श्रुति-मधुर और रससग्र कर देते हैं, तो दूसरी ओर कर्णकटु और तीक्ष्ण भी। श्रुति-मधुर वाद्यों में से वीणा (37/3), शंख (97/3), मिरदंग (97/3) दुन्दुभि (135/5) झल्लरि (97/3) आदि तथा दूसरे प्रकार के वाद्यों में तूरी (97/3), भेरी (97/3), पटह (57/3), नफीरी (134/2) आदि का सुन्दर वर्णन गया किया है।

ऋतु-वर्णन—

ऋतु वर्णन में कवि ने वसन्त ऋतु का बड़ा ही मनोहारी एवं आह्लादकारी वर्णन किया है। भारतीय वाङ्मय में वसन्त ऋतु को षड् ऋतुओं का राजा माना गया है, क्योंकि इस ऋतु मे सम्पूर्ण प्रकृति और मानव उल्लास और उन्माद से भर उठते हैं। कवि ने उन्हीं भावों का उद्भावन उक्त प्रसंगों में किया है।

कवि के वर्णनानुसार वसन्त-ऋतु के आगमन से समस्त प्रकृति हरी-भरी हो गई। कुंद-पुष्प प्रफुल्लित हो उठे। सुवासित मलय-पवन प्रसारित होने लगी। आम्र वृक्षों पर कोयल मधुर स्वर में कुंजन करने लगी। केतकी पुष्पों पर भ्रमर एक स्वर एवं लय में रुण-झुण-रुण-झुण की ध्वनि करने लगे। पुरुष और नारियाँ भी वसन्त के आगमन उल्लास से उल्लसित हो गए। नारियों ने विविध रीतियों से अपना-अपना शृंगार किया और आनन्द से प्रपूरित होकर वे मधुर गीत गाने लगीं और वीणा बजाने लगीं (37-44)।

अस्त्र-शस्त्र—

कवि बूचराज ने अपने युद्ध वर्णन प्रसगों में प्रायः उन्हीं शस्त्र-अस्त्रों का प्रयोग किया है जो पृथिवीराजरासो आदि वीर-काव्यों में उपलब्ध होते हैं। जैसे—

वज्रदण्ड (114/1), गोला (130/1) कुदाल (126/3), खड्ग (130/2) करवाल (76/3) धनुषवाण (45/3) भाला (81/3), कुंत, कृपाण (45/5), कुहाड (79/1) कोवंड (45/3), पणच (45/3)।

जैनेतर-सन्दर्भ—

कवि बूचराज के वर्णन-प्रसंगों का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि वह जैनधर्म के अध्येता ही नहीं थे अपितु जैनेतर धर्म, दर्शन, पुराण और आख्यानों के भी मर्मज्ञ ज्ञाता थे। उन्होंने "मदन" के वर्णन प्रसंग में जमदग्नि ऋषि, विश्वामित्र ऋषि, ऋषि गौतम, अहल्या, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिवपार्वती, कृष्ण-गोपी एवं रावण आदि के कथानक सूत्र रूप में व्यक्त किए हैं। साथ ही उन्होंने अन्य-मतों के संन्यासी, काली-उपासक, भस्म लगाने वाले जोगी, जटाधारी यति, भगवाँ वस्त्रधारी, त्रिदण्डी-साधु, दरवेस, पुण्डरीक ऋषि (46, 47, 48, 49) आदि की भी चर्चा की है।

साथ ही ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, राजा श्रेणिक (49-50) एवं भरत पुत्र मारीच का भी उल्लेख किया है, जिसने जैन तपस्या से भयभीत होकर अन्य दर्शन मठ (मत) की स्थापना की थी और जो सदियों तक जन्म-मरण का चक्कर लगाता रहा (51)।

कामी-नारियाँ—

अपने वर्णन क्रम में कवि ने कामी नारियों का वर्णन भी किया है। कामी नारियाँ अपनी कामुक चेष्टाओं और हाव-भाव से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पुरुषों के मन को विचलित कर देती हैं। वे प्रमदानारियाँ विविध प्रकार के अपने बनाव-शृंगार से कायर पुरुषों को तो मोहित करती ही हैं साथ ही बुद्धिमान, विवेकी और शक्तिशाली वीर भी उनके वशीभूत हो जाते हैं। ऐसी कामिनी महिलाओं के सौन्दर्य-दर्शन मात्र से वीरों का रस सूख जाता है, स्पर्श करने से तेज नष्ट हो जाता है और उनके मैथुन से आयु क्षीण हो जाती है। वे नारियाँ पुरुष के पास द्रव्य को देखकर चित्त में अत्यधिक प्रसन्न होती हैं। वे कामी (वेश्या) नारियाँ अपने मन में अन्य पुरुष का विचार करती हैं, अन्य पुरुष से वार्ता करती हैं तथा अन्य पुरुष का विश्वास करती हैं (38-43)।

इस प्रकार कवि ने वसन्त ऋतु के माध्यम से कामी नारियों का स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन आलंकारिक भाषा-शैली में किया है।

कामी पुरुष—

कामी पुरुष प्रमदा नारियों के सौन्दर्य जाल में फँसकर अपने उत्कृष्ट जीवन को व्यर्थ ही खो देते हैं तथा अपने पुरुषत्व का अभिमान नष्ट कर डालते हैं बड़े-बड़े शील और सत्य के धनी भी उनके मायाचारी गुणों से अपने सत्य और शील को गँवा बैठते हैं।

इस क्रम में कवि ने जैन और जैनेतर चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि आदि का उल्लेख किया है कि मनुष्य काम-भोगों में फँसकर कर्मबन्ध करके जन्म मरण के चक्कर काटता रहता है और नरकयोनि का बन्ध रहता है (40-52)।

सौन्दर्य-प्रसाधन—

कवि बूचराज ने वसन्त आगमन के प्रसंग में महिलाओं के शृंगार का जो वर्णन किया है। वह चित्ताकर्षक, सुरुचिसम्पन्न एवं आह्लादकारी है।

महिलाएँ अपने केशों को अत्यन्त सुन्दरता के साथ सुसज्जित करती थीं पहले केशों को संवारती थी, फिर उनकी वेणियाँ बनाकर विविध प्रकार के पुष्पों की मालाओं से सजाती थी। माँग में मोती की माला धारण करती थीं। माथे पर कस्तूरी का तिलक लगाती थीं और दाँतों को बिजली के सदृश धवल रखती थी।

आभूषण एवं वस्त्र—

आभूषण एवं वस्त्र मानव-समाज की सौन्दर्य-प्रियता, सुरुचि-सम्पन्नता समाज

एवं राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि, राजनैतिक स्थिरता, कला एवं शिल्प की विकसनशीलता तथा देश के खनिज एवं उत्पादन द्रव्यों के प्रतीक होते हैं । कवि ने प्रसंगानुकूल सोने, मोती एवं रत्नजटित आभूषणों तथा वस्त्रों के उल्लेख किए हैं जो क्रमशः निम्न प्रकार हैं—

आभूषण—

महिलाएं रत्नजटित हार, मोती की माला, स्वर्णकुण्डल एवं नूपुर धारण करती थीं (39/2, 40/2) ।

वस्त्र वर्णन में कवि ने असाधारण वस्त्रों के लिए पटंबर (41/1) का उल्लेख किया है । अन्यत्र उन्होंने महिलाओं के पहनने के चीर (39/1) और कंचुकी (41/1) शब्द का उल्लेख किया है, जो कि राजस्थानी पोशाक का प्रभाव है ।

छाता—

आभिजात्य वर्ग के पुरुष छाते का प्रयोग भी करते थे । कवि के अनुसार जब मदन अपनी सेना के साथ विवेक पर आक्रमण करने के लिए चला, तो उसने अपने सिर पर अर्धमादु (छाता) धारण कर लिया (44/4) ।

लोक-व्यवहार—

मयणजुद्ध काव्य का अध्ययन करने से विदित होता है कि कवि बूचराज का ज्ञान अत्यन्त व्यापक था । वे आध्यात्मिक ज्ञान के साथ-साथ लोक व्यवहार से भी सुपरिचित थे । उसका उन्होंने यथा-स्थान उचित प्रयोग किया है ।

पान का बीड़ा देना—

भारतीय संस्कृति में प्राचीन परम्परा रही है कि राजा की प्रतिज्ञा को पूर्ण कर देने की घोषणा करने वाले पुरुष को सभा के मध्य पान का बीड़ा दिया जाता था । प्रस्तुत कृति में भी राजामोह ने अपने प्रबल शत्रु विवेक को नष्ट करने के लिए राजसभा बुलाई । तब मन्मथ ने उठकर घोषणा की कि मैं आज ही उसे बन्दी बनाकर आपके समक्ष उपस्थित करूंगा । इस बात से प्रसन्न होकर राजा मोह ने उसे अपने हाथों से पान का बीड़ा दिया (35) ।

प्रणाम एवं चरण-स्पर्श—

मयणजुद्ध काव्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ व्यक्तियों के प्रति आदर और सम्मान की भावना दर्शनीय है ।

राजामोह का कपट नामक दूत जब उससे मिलने आता है तब उसे सिर झुकाकर जुहारु (प्रणाम) करता है (21/1) ।

इसी प्रकार राजामोह का पुत्र, मदन जब तीनों लोकों को अपने वशीभूत करके

लौटता है, तो सर्वप्रथम अपने माता-पिता के चरणों का स्पर्श करता है। माता-पिता भी सिर-चूमकर उसे आशीर्वाद देते हैं (58)।

आरती उतारना—

यह भी आर्य-संस्कृति है कि पतिव्रता नारियाँ अपने वीर पति को तिलक लगाकर और माला पहना कर युद्ध-क्षेत्र के लिए विदा करती हैं और विजयश्री प्राप्त कर वापिस लौटने पर आरती उतारती हैं। मदन के युद्ध-भूमि से वापिस आने पर आरती उतारने का प्रसंग द्रष्टव्य है (59/2)।

बधावणा (विजय की बधाई)—

मदन को विजयश्री प्राप्त होने के उपलक्ष में नट-भाट जय-जयकार करते हैं एवं उसकी माता अपने पुत्र के यशस्वी होने पर बधावणा (विजय की बधाइयाँ) करती हैं (58)।

शकुन-अपशकुन—

कवि ने किसी कार्य को करने से पूर्व उसकी सफलता या असफलता को शकुन एवं अपशकुन के माध्यम से घोषित किया है।

शकुन—

ऋषभदेव ने जब युद्ध के लिए प्रयाण किया तो शुभ चिह्नों को प्रकट करने वाले शुभ शकुनों का वर्णन कवि ने निम्न प्रकार किया है—

प्रथम शकुन में प्रभु के सम्मुख नाथा हुआ उज्ज्वल वृषभ आ गया। आदिनाथ का चिह्न भी वृषभ है। नाथा हुआ वृषभ से अभिप्राय है वश में रहने वाले। दूसरा शकुन, प्रमुख वाद्यों की मधुर झंकार होना और तीसरा, दाहिनी ओर तरुणी नारियों द्वारा मधुर स्वर में गीत गाना। इन शुभ शकुनों के माध्यम से आदिश्वर प्रभु को अपनी प्रथम मंजिल में ही विजय की सूचना प्राप्त हो गई। चौथा शकुन, पूर्ण जल से भरा हुआ कलश हाथों में लिए हुए सौभाग्यवती नारी का सामने मिलना। यह शकुन कार्य की पूर्ण सफलता को व्यक्त करता है। पाँचवाँ शकुन, दीपक की ज्योति को अपने सामने जलते हुए देखना। यह जगमगाते हुए यश को प्रकट करता है। छठवाँ शकुन, अनुपम सुरभी (गायों) से दूध निकालते हुए ग्वालों को देखा। इस प्रकार की गायों को देखना समृद्धि का सूचक है।

सातवाँ शकुन, किसी राजा को तलवार लिए हुए प्रतोली (गली) में प्रवेश करते हुए देखा। यह शकुन प्रभुत्व को दर्शाता है। आठवें शकुन में, आम्र वृक्ष पर बैठकर कोकिल को बोलते हुए सुना। नौवाँ, नेवला युगल को सर्प के ऊपर चढ़ा देखा। दसवाँ, दही से भरे हुए पात्र को लिए हुए ग्वालिनों का सम्मुख आना। ग्यारहवाँ शकुन, अपनी पूँछ रूपी चँवर सिर पर रखे हुए केहरी (सिंह) को गरजते

हुए सुना और देखा । बारहवें शकुन में, अत्यन्त धवल दो हाथियों को चिंघाड़ते हुए देखा । तेरहवें में, सुन्दर आम्र, नारंगी और पुष्पहार को देखा । इस प्रकार ये सभी शकुन आदिनाथ प्रभु की विजय को घोषित कर रहे हैं । (97-100) ।

अपशकुन—

शकुन वर्णन के साथ ही कवि ने अपशकुनों का उल्लेख भी किया है । जब कोई भी व्यक्ति कार्य की सिद्धि हेतु घर से प्रस्थान करता है तब अपशकुन उसके कार्य की असिद्धि की सूचना प्रारम्भ में ही दे देते हैं । राजा मोह जब आदिनाथ प्रभु पर चढ़ाई करने हेतु प्रस्थान करता है तब कुछ अपशकुन हुए । कवि की दृष्टि में यह उसकी पराजय की घोषणा थी । राजा-मोह ने युद्ध भूमि में प्रयाण करते समय ग्यारह अपशकुनों को देखा । पहले अपशकुन में पत्ते और धूलभरी वायु उसके सामने गोल-गोल चक्कर लगाने लगीं । दूसरे में, जल का भरा हुआ घड़ा फूट गया । तीसरा, तरुणी स्त्रियाँ रोने चिल्लाने लगीं । चौथा, विधवा स्त्री धौंकती हुई ज्वाला वाली अग्नि वहाँ ले आई । पाँचवाँ, मूंड, मुड़ाए हुए नकटे मनुष्य को देखा । छठवें में, स्वयं उसे छींक हो गई । सातवें में उसने तृण, तुष, चर्म, कपास एवं कोदों सहित गुड़ को देखा । आठवें में, शृगाली को फुक्कारते हुए देखा । नौवें में, माला के द्वारा बँधे हुए नायक और स्त्री को घिसटते हुए देखा । दसवें में, बाँबी के ऊपर काले विषधर को मरते हुए अपने फण को पटकते देखा । ग्यारहवें में, सूखे वृक्ष पर चढ़कर दाहिनी तरफ बिल्ली को बोलते हुए सुना । किन्तु उस अभिमानी राजा मोह ने इन अपशकुनों को कोई महत्त्व नहीं दिया (89-92) ।

इस प्रकार महाकवि बूचराज द्वारा प्रणीत मयणजुद्ध काव्य अपभ्रंश साहित्य और हिन्दी-साहित्य की सन्धि बेला में रचित एक अद्वितीय रचना है, जो दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं भाषा की दृष्टि से एक उपयोगी काव्य रचना है ।

महाजन टोली नं 2
आरा (बिहार) 802301

श्रद्धावनत
विद्यावती जैन

विषयानुक्रम

विषय	छन्द संख्या
मंगलाचरण	१
जिनवाणी को नमस्कार	२
ग्रन्थ-विषय	३
ग्रन्थ के अध्ययन का फल	४
नवम रस सम्बन्धी प्रस्तुत ग्रन्थ के अनभिकारी श्रोता	५
ग्रन्थ-कथा प्रारम्भ	६
राजा चेतन एवं उनका परिवार	७
राजा चेतन की पटरानियाँ	८
मोह राजा द्वारा युद्ध की तैयारी	९
पट्टरानी निवृत्ति का पुण्यपुरी गमन	१०
उसके पुत्र विवेक का सुमति के साथ विवाह	११
मोह राजा चार दूतों को बुलाकर उन्हें विवेक का पता लगाने के लिए भेजता है	१२-१६
कपट नामक दूत का पुण्यपुरी में भ्रमण	१७-२०
मोह राजा का कपट से रानी निवृत्ति एवं विवेक का वृत्तान्त पूछना	२१-२२
कपट नामक दूत के द्वारा पुण्यपुरी की प्रशंसा	२३-३१
मोह राजा द्वारा सभा का बुलाया जाना	३२-३३
वीर मन्मथ की घोषणा	३४-३६
ऋतुराज वसन्त का आगमन	३७-४४
दुस्सह मदनराज का पराक्रम	४५-४६
मदन का अपने नगर में वापिस लौटना	५७
मदन द्वारा माता-पिता के चरण-स्पर्श करना	५८-५९
मदन का रति के पास पहुँचना	६०
रति-मदन संवाद	६१-६७
मदन का क्रोधित होकर धर्मपुरी की ओर प्रयाण	६८-७०
कलिकाल-मोह संवाद	७१-८२

विषय	छन्द संख्या
मदन की धर्मपुरी पर चढ़ाई	८३-८४
विवेक का आदीश्वर से मिलना	८५
भटराज मोह मदन की सहायता हेतु जाता है	८६-८८
ग्यारह प्रकार के अपशकुन	८९-९२
आदीश्वर पर मदन की चढ़ाई	९३-९६
आदीश्वर के गुण शत्रुओं का वर्णन	९७-१००
दोनों सेनाओं का तुमुल युद्ध	१०१-१२०
विवेक का पराक्रम	१२१-१३१
आदीश्वर प्रभु का हाथी जुते रथ पर सवार होकर युद्ध-भूमि में प्रवेश	१३२-१३५
आदीश्वर प्रभु द्वारा मदन पर विजय	१३६
आदीश्वर प्रभु द्वारा मोह और कलिकाल पर विजय	१३७
आदीश्वर प्रभु द्वारा धर्मोपदेश	१३८-१३९
चतुर्विध संघ का एकत्रित होना	१४०
लोक-अलोक-वर्णन	१४१
नरकगति-वर्णन	१४२
तिर्यञ्चगति-वर्णन	१४३
मनुष्यगति-वर्णन	१४४
देव गति-वर्णन	१४५
श्रावक व्रत-वर्णन	१४६-१५२
साधुधर्म-वर्णन	१५३-१५६
आदीश्वर प्रभु की मोक्षप्राप्ति	१५७
सिद्धक्षेत्र की महिमा	१५८
मयणजुद्ध की समाप्ति एवं कवि बूचराज की कल्याण-कामना	१५९

महाकवि बूचराज कृत

मदनजुद्ध काव्य

मंगलाचरण

तार्टंक—(शार्दूलविक्रीडित) छन्द :

जो सव्वट्ठ-विमाण मुंहि चविओ तिण्णाण-चित्तंतरे,
उब्बण्णो मरुदेवि-कुक्खि-रयणो इक्खाक-कुलमंडणो ।
भोत्तुं भोय-सुरज्ज-देसु विमलो पावीअ विज्जापुणो,
संपत्तो णिरवाणि देह रिसहो काओ स मे मंगल ।।१।।

अर्थ—तार्टंक (कर्णभूषण)-शार्दूलविक्रीडित छन्द—

वे ऋषभदेव मेरा मंगल करें, जो सर्वार्थसिद्धि विमानमें उत्पन्न हुए। पुनः वहाँसे चयकर आत्माके भीतर तीन ज्ञानके पूर्ण धारी होकर माता मरुदेवीकी कुक्षि (उदर) के रत्न रूपमें उत्पन्न हुए, जो इक्ष्वाकु कुल के मंडन-भूषण थे, वे भोगों को भोगकर तथा सुराज्यका उपदेश देकर पुनः वीतराग भगवान् वैराग्यको प्राप्त हुए । तत्पश्चात् निर्वाणको प्राप्त हुए ।

जिनवाणी को नमस्कार

गाथा छन्द :

जिणवरह वागवाणी पणवउँ सुह-भत्ति देहि जग-जगणी ।
वण्णउं सुमयणजुद्धं किम जित्तिउ देव-रिसहेसु ।।२।।

अर्थ—भगवान् ऋषभदेव की दिव्यध्वनि (वचनरूप वाणी) को मैं प्रणाम करता हूँ । वह वाणी जगत्‌की माता है । अर्थात् माताकी तरह सब जीवोंकी अहिंसा-धर्मसे रक्षा करती है । ऐसी है जिनवाणी माता ! सुख और भक्ति (आपके गुणोंमें अनुराग) दीजिए । श्री ऋषभदेव भगवान् ने मदनको कैसे जीता? उसी श्रेष्ठ मदन-युद्धका मैं वर्णन करता हूँ।

व्याख्या—ऋषभदेवने केवलज्ञान प्राप्त करके अनक्षर बीजोंमें उपदेश दिया । वही वाणी १८ महाभाषा, ७०० लघुभाषा रूप सभी जीवों को यथायोग्य प्राप्त हुई । एक लाख पूर्व कुमार कालमे व्यतीत हुए। तत्पश्चात् पिता नाभिरायसे राज्य-पद प्राप्त किया । उस समय असि, मसि आदि षट्कर्मोंका उपदेश दिया और देशको सुराज्य बनाया । सुराज्य उसीको कहते हैं, जहाँ इति-भीति न हो और प्रजा शान्ति पूर्वक जीवन-यापन करें । फिर भागोंमें लिप्त देखकर इन्द्रने नीलांजनाके वियोगसे वैराग्य उत्पन्न

कराया । तब उन्होंने दीक्षा धारण की और १००० वर्ष तक मुनि-अवस्थामें तपश्चरण किया । तब केवल ज्ञानकी प्राप्ति हुई । उन्होंने जो उपदेश दिया वही जिनवाणी माता हम सबकी रक्षा करें, सुख देवें ।

ग्रन्थ-विषय

वस्तु छन्द :

रिसह-जिणवरु पढ़म-तित्थयरु ।
जिणधम्महं उद्धरणु जुवल[1] धम्मु सव्वइ णिवारणु ।
नाभिराय कुल-कमलु सरवण्णु संसार-तारणु ।
जो सुरिंदहिं वंदियउ तासु चलणि सिरु धारि ।
सो किम रतिपति जित्तियउ से गुण कहउँ विचारि ।।३।।

अर्थ—श्री ऋषभदेव जिनवर प्रथम तीर्थंकर हो गए हैं । वे जिनधर्मके उद्धारकर्त्ता थे । जुगलियाधर्मका निवारण करने वाले थे । पिता नाभिरायके कुलमें उत्पन्न कमल के समान थे, सर्वज्ञ थे तथा संसारसे तारने वाले थे, जो सुरेन्द्रों द्वारा वंदित थे । ऐसे उन ऋषभदेवके चरणोंमें सिर धरता हूँ—नमस्कार करता हूँ । उन्होंने रतिपतिको कैसे जीता? मैं उनके गुणोंको विचारकर कहता हूँ । रतिपति अर्थात् कामदेवको जीतनेकी कथा कहता हूँ ।

व्याख्या—इस अवसर्पिणी काल के सुषमा-दुषमा काल नाम के तीसरे काल के अन्त मे ८४ लाख पूर्व ३ वर्ष $\frac{१}{२}$ महीना शेष थे, तब ही ऋषभदेव ने जन्म लिया था । अंतिम कुलकर श्री नाभिराय पिता तथा मरुदेवी माता के कुलरूप सरोवर में कमल के समान उत्पन्न हुए । उस समय भोग-भूमि का अन्तिम समय था । उन्हीं के जन्म से युगलिया धर्म का निवारण हुआ । ऋषभदेव की आयु ८४ लाख पूर्व की थी । ८३ लाख पूर्व की आयु बीत जाने पर उन्होंने दीक्षा धारण की और मोक्ष प्राप्त किया । कवि के मन में यह प्रश्न उठा कि उन्होंने दीक्षा-समय में अपने शत्रु कामदेव को बिना क्रोध के कैसे जीत लिया? इसी के समाधान की वह प्रतिज्ञा करता है ।

ग्रन्थ के अध्ययन का फल

सुणहु भवियण एहु परमत्थु ।
तजि चिंता परकथा इक्कध्यानि होइ कण्णु दिज्जइ ।

१.क. जुअल.

मनु खिल्लइ कमलु जिम होइ समाधि यहु अमिउ पिज्जइ ।
परिचिउ चिन्ह चिति एहु रसु घालइ कलमसु खोइ ।
पुनरपि तिन्ह संसार-महिं जम्मणु मरणु न होइ ।।४।।

अर्थ—हे भव्यजन, यह परमार्थ (वचन) सुनो । सभी प्रकारकी चिन्ता एवं परकथाको छोड़ कर तथा एकाग्र ध्यानपूर्वक अपने कानोंमें सुनो । इस कथाको सुननेसे मन कमलके समान प्रफुल्लित हो जाता है । ऐसा अमृत पीजिए, जिससे समाधि प्राप्त जाए, जिन्होंने अपने चित्त (मन) में इस परमार्थ का परिचय किया, उसके सभी कल्मष यह रस धो सकता है । उनका पुनः संसारमें जन्म और मरण नहीं होता । इसके अध्ययन का यही फल है ।

व्याख्या—कामदेवको जीतना एवं स्पर्शनेन्द्रियको वशमें करना संसारमें सबसे कठिन कार्य है । उन्हें जीतनेके उपाय रूप वचनोंको ही परमार्थ कहा गया है । कविने प्रस्तुत पद्यमें उन्हें परमार्थ वचनों को सुनने की प्रेरणाकी है । कामको जीतनेके लिए पहले सभी चिन्ताओं को छोड़ना होगा, तभी संसारसे संवेग उत्पन्न होगा और तब वह जीव संसार से छूटने का उपाय भी करेगा, जैसा कि ऋषभने किया । यदि संवेग हो गया तो इन्द्रियों और मनका वशीकरण भी हो जायगा । उस स्थितिमें कामकी कथा रुचिकर नहीं लगेगी । वैराग्य की कथा ही अच्छी लगेगी । श्री आदिनाथ प्रभुकी कथा ही इस युगमें सर्वप्रथम हमारे सम्मुख है । अतः सावधान होकर उसे कान लगाकर सुनो। कान लगानेसे कवि का अभिप्राय यह है कि पराई कथाके श्रवणमें कानों को मत लगाओ । श्री आदिप्रभु की कथा सुनकर कामदेवके विजिगीषु बनो, जिसने इस प्रकार काम-विजय की है, उसने आत्मरसका स्वाद लिया है एवं संसारसे पार होनेका प्रयत्न किया है । यही इस ग्रन्थके अध्ययनका फल है ।

नवम रस सम्बन्धी प्रस्तुत ग्रन्थ के अनधिकारी श्रोता

सुणहि नाहि जुवइ जे रत्त ।
जो रत्तिय काम-रसि बहु उपाधि धंधइ जि रत्तिय ।
परनिंदा पर कथा अवर जि किवि उनमाद मत्तिय ।
पडिय जि घोर समुद्द महि नहि आवहि शुभध्यानि ।
नवमा रसु यहु अमियरसु तेइ न सुणहि कानि ।।५।।

अर्थ—जो (मनुष्य) युवतियोंमें अनुरक्त हैं, वे इस (परमार्थ) को सुनते नहीं । जो पुरुष कामरसमें आसक्त हैं और अनेक उपाधियों (परिग्रहों)

एवं व्यापारों (उद्यमों) में लीन हैं, जो रात-दिन पर-निंदा और पर-कथा (दूसरों की) में ही लगे रहते हैं तथा और भी काम-उन्मादमें मतवाले हो रहे हैं, वे इस संसार रूपी भयानक समुद्रमें गिरते हैं। शुभध्यानकी ओर नहीं आते। नौवाँ रस (काम पर विजय प्राप्त करने वाला) यह अमृत (शान्त) रस ही है। उसको (कामीजन) कान से नहीं सुनते।

व्याख्या—नौवाँ रस शान्त रस है। वह अमृत रस है। ससार रूपी समुद्र (८४ लाख योनियों) में पड़नेसे रोकने वाला है, जिन पुरुषोंने इस रसको प्राप्त नहीं किया, वे इस ग्रन्थके सुननके अधिकारी नहीं। उनकी पहचान यही है कि उन्हें पर-विषयोंकी कथा ही अच्छी लगती हैं। वे रात-दिन विषयोंके धंधोंमें लीन रहते हैं। निरन्तर शुभ ध्यानसे रहित आर्त, रौद्र ध्यानमें मग्न रहते हैं। उनके चित्तमें इस नवम रसका प्रवेश नहीं हो पाता। कामी की परिणति सबसे खोटी परिणति है। वह विष के समान है।

ग्रन्थ कथा-प्रारम्भ

दोहा :

पुव्व करम गहि बंधियउ सहइ सु दुख-संताउ।
इसु काया-गढ़ भितरइ वसइ सु चेयणराउ ॥६॥

अर्थ—इस काया (शरीर) रूपी गढ़ (किले) के भीतर चेतन रूपी (आत्मा) राजा निवास करता है। वह पूर्व कर्मोंको ग्रहण करता हुआ, उनके बन्धनमें ऐसा बँधा है कि दुःखोंके संतापको सहता रहता है।

व्याख्या—अनादिकालसे जीव (चेतन) और शरीर (जड़) का सम्बन्ध ऐसा बना हुआ है कि वह कभी अलग नहीं हुआ। चेतन राजा उस शरीरको गढ़ बनाकर अपने को सुरक्षित समझता है, किन्तु वहाँ भी पूर्वके कर्मरूपी शत्रु अनेक संताप देते हैं। यह चेतन-राजा समझदार होते हुए भी इस शरीरके भीतर ही दुःख सहता रहता है। यह चेतनकी ही भूल है। जब तक वह अपनी इस भूलको नहीं छोड़ेगा, तब तक चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करता हुआ, वह अपने शरीररूपी कारागारमें पड़ा रहेगा।

राजा चेतन एवं उनका परिवार

वस्तु छन्द :

राउ चेयणु काय गढ़ मज्झि।
नहु जाणइ सार बिहु मनु मंत्रीय परबलु वरणाणहु।

परवर्त्ति निवर्त्ति दुइ तासु तीयए प्रकट जाणहु ।
जणिउ निवर्त्ति विवेकु सुतु परवर्त्तिहि भडु मोहु ।
सो बलि बइठउ राजु लेहु करइ[1] कपटु नितु द्रोहु ।।७।।

अर्थ—राजा चेतन शरीर रूपी गढ़के मध्य रहता हुआ भी सार (विशेषता) को नहीं जानता । इसको मन नामका प्रबल मंत्री कहा गया है । उस राजाकी प्रवृत्ति और निवृत्ति नामकी दो स्त्रियाँ थीं । निवृत्तिने विवेक नामके पुत्रको जन्म दिया और प्रवृत्तिने भट (वीर) मोहको जन्म दिया । वह मोह नामक पुत्र बलपूर्वक राजा (अपने पिता) से राज्य लेकर बैठ गया और नित्य कपट एवं द्रोह करने लगा ।

व्याख्या—अनादिकालसे शरीरके साथ रहते-रहते राजा चेतन अपने स्वरूपकी विशेषताको भूल गया और उस अचेतन कायाके साथ अपना एकत्व मानने लगा । चेतन का लक्षण-ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य स्वरूप है और शरीरका लक्षण-जड़, अनित्य, मलसे भरा हुआ है । यह लक्ष्य-भेद वह नहीं जान सका । शरीरमें आसक्त हो जानेके कारण उसकेदो विवाह हुए । एक रानीका नाम प्रवृत्ति और दूसरीका निवृत्ति था । दोनों ही रानियोंने एक-एक पुत्रको जन्म दिया । प्रवृत्तिके पुत्रका नाम मोह था, जिसका आचरण पिताके प्रतिकूल था । दूसरा पुत्र विवेक था जो पिता के अनुकूल था ।

राजा चेतन की पटरानियाँ

मडिल्ल छन्द :

मोह-घरिहिं माया पटराणी,
करइ न संक अधिक सबलाणी ।
करि परपंचु जगतु फुसलावइ,
तहिं निवर्ति किम आदरु पावइ ।।८।।

अर्थ—राजा मोहके घरमें माया पटरानी थी। वह माया रानी (अपनी) अत्यधिक शक्तिके कारण किसीकी शंका नहीं करती और अपने प्रपंचों से संसारके जीवोंको फुसलाती रहती है । वहाँ राजा चेतनकी निवृत्ति नामक रानी कैसे आदर पा सकती थी?

व्याख्या—मोहका नाम ही संसारी जीव है और माया उसकी परिणतिका नाम है । रात-दिन चेतन इस अपनी ही संतान और परिणतिके

---

१. कर ख. कर कपट नित दोहु

चक्र में पड़ा हुआ जरा भी शंका नहीं करता कि मेरा भविष्य कैसा होगा? इस कपटी द्रोहीके साथ मुझे भी बँधना पड़ेगा । माया पटरानी विश्वको अपने अनुकूल बना रही थी । वह कहती थी कि हे संसारके जीव, तुम्हारा तो मात्र एक मोह ही राजा है । मायाने प्रवृत्ति को आदर दिया और निवृत्तिकी उपेक्षा की ।

मोहराज द्वारा युद्ध की तैयारी

दोहा :

चली निवर्ति विवेकु ले दीठे इसिय[1] अचार ।
मोह राउ तव गज्जियउ दल-बल सैन विचारि ।।९।।

अर्थ—राजा चेतनकी निवृत्ति रानी अपने पुत्र विवेकको लेकर चली (जाने लगी) ऐसे आचरणको देखकर मोह राजा गरजने लगा एवं उसने दल बल सहित अपनी सेना का विस्तार किया ।

व्याख्या—रानी निवृत्तिका आदर न होनेसे वह विवेकको लेकर चली गई । यही नीति है कि जहाँ आदर नहीं है वहाँ मनस्वी स्त्री, पुरुष थोड़ी देर भी नहीं ठहरते हैं । निवृत्ति का यह आचरण राजा मोहको अच्छा नहीं लगा । मोहका निवृत्तिसे सदा ही विरोध रहा है । शत्रुको देखकर विरोध शीघ्र ही प्रकट हो जाता है और युद्धकी तैयारी हो जाती है। कविने इस वर्णन को रूपकके रूपमें उपस्थित किया है । वास्तवमें अंतरंग भावोंकी कथा है । मोह ने सोचा कि यदि निवृत्ति मेरे अधिकारमें नहीं रही तो राजा चेतन मुझे नष्ट कर देगा । फिर मेरा ठिकाना नहीं रहेगा । अतः निवृत्तिको रोकना चाहिए । यदि मैंने निवृत्तिको पकड़ लिया तो मेरी विजय सभी जीवों पर सार्थक होगी । मैं त्रैलोक्य विजयी कहलाऊँगा । अन्यथा मुझे चेतन राजा का दास बनना पड़ेगा ।

पट्टरानी निर्वृत्ति का पुण्यपुरी-गमन, उसके पुत्र-विवेक का सुमतिके साथ विवाह

गाथा छन्द :

गउ पुण्णपुरी[2] नामो राजा तहं सत्तु करइ थिरु रज्जो ।
तहिं लेइ पुत्तु पहुत्ती बहु आदरु पाइउ[3] तेणि ।।१०।।

१. ख. इस इसिय
२. ख. कनकपुरीय
३. ग. पाइओ

अर्थ—गढ़के समान एक पुण्यपुरी नामकी नगरी थी। वहाँ सत्य नामका राजा राज्य करता था। उसका राज्य स्थिर था। वहाँ रानी निवृत्ति अपने पुत्र (विवेक) को लेकर पहुँची। वहाँके राजा (सत्य) ने उसका बड़ा आदर-सम्मान किया।

व्याख्या—निवृत्ति सत्य नामके राजा के पास इसलिए चली गई कि वह मोहराजाको अपना शत्रु मानती थी। मोह अर्थात् मिथ्यात्वको निवृत्ति नहीं रुचती है। वह पर-पदार्थोंकी निवृत्ति नहीं करने देता है। जहाँ निवृत्ति है, वहाँ मोह भाव दूर हो जाता है। मोह दो प्रकारका होता है। दर्शन-मोह और चारित्र-मोह। उनमेंसे पहले दर्शन-मोहका अभाव होता है। पुनः क्रम-क्रम से चारित्र-मोह भी नष्ट हो जाता है। तब चेतन राजा शुद्ध होकर निर्वाणपुरी मे सदा के लिए स्थिर राज्य करता है।

दोहा :

दीनी कन्या सत्ति तिसु सुमति-सरिस सुविशाल।
थापिउ रज्जि विवेकु थिरु घल्लि गहइ गुणमाल।।११।।

अर्थ—राजा सत्य ने उस विवेकसे अपनी सुमति नामकी कन्याका विवाह कर दिया, जो सरस (शान्त रसवाली) तथा सुविशाल (उच्चविचार वाली) थी। राजाने विवेकके गले में गुणमाल (गुण रूपी माल धन दहेज) घालकर (डालकर) उसे अपने राज्यमें स्थिर रूप से स्थापित कर दिया।

व्याख्या—पहले ऐसी परम्परा थी कि राजा योग्य वर देखकर अपनी कन्याके साथ उसका विवाह कर देते थे और आधा राज्य भी दे देते थे, जिससे कि वह स्थिर होकर रहे, अन्यत्र न जाए। ऐसी माला डाली जाती थी कि वह उससे रुक जाता था। अब अंतरंग-भावोंकी ओर देखिए कि सदासे ही यह चेतन कुमतिपुत्र वाली प्रवृत्तिके साथ रहता है और विषयोंमें फँसा रहता है। निवृत्ति रानी को जब विवेक पुत्र होता है, अर्थात् समय पाकर जब भेद विज्ञान प्रकट होता है तब वह मोहको कुमति सम्बन्धके कारण छोड़ देता है। विवेकके साथ सुमति आ जाती है। साथमें अनेक गुण रत्नत्रय आ जाते हैं। जो गुण पहले क्रोधादि दोष रूप थे वह धर्मादि गुण रूप निर्दोष निर्विकार हो जाते हैं। तब वह सुमति पत्नी अपने विवेक पतिको अन्यके वश में नहीं रहने देती। विवेकको यह ज्ञान हो जाता है कि मैं एक शुद्ध अविनाशी, सुख का पिंड, तथा ज्ञान स्वभाव वाला हूँ। यही सुमति विषयोंकी प्रवृत्तिसे संग छुड़ाती है।

मोहराज चार दूतों को बुलाकर उन्हें विवेक का पता लगाने हेतु भेजता है

सालु विवेकह मोह-मनि सोवइ पय न पसारि ।
एक दिवसि इस सोचकरि दूत बुलाए चारि ।।१२।।

अर्थ—मोह राजा का मन विवेकके शल्य (चिन्ता) से चिन्तित था। इस कारण वह पैर पसारकर सो नहीं पाता था । एक दिन ऐसा विचार कर कि मैं किस प्रकार निश्चिन्त होकर सो सकूँ? उसने अपने चार दूतों को बुलाया ।

व्याख्या—यहाँ चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान की बात कही गई है । जहाँ पर चेतनकी प्रवृत्ति और निवृत्ति दो रानियाँ होती हैं । विवेक पुत्र होता है । प्रथम संवेग आदि गुण होते हैं और चेतन निवृत्ति के साथ ही रह जाता है । ऐसी सुमति आती है कि वह विषय-कषायों की प्रवृत्तिसे बचनेके लिए सत्यके आचरणमें आ जाता है । उसे व्यसन पाप, तथा अशुद्धभाव परिणति आकर्षित नहीं करती । जब वह मोह की पराधीन दशासे अपनी स्वाधीन दशाकी ओर बढ़ता है, तब भयसे घबड़ाकर मोह अपने चार दूतोंको बुलाता है ।

मडिल्ल छन्द :

मोह चारि तब दूत बुलाए,
सार लेण कहुँ वेगि पठाए ।
कपटु कुसत्थु पापु वक्खाणहु,
अवरु[१] त द्रोहु चउत्थउ जाणहु ।।१३।।

अर्थ—राजा मोहने चारों दूतोंको बुलाया और निवृत्ति रानीके पुत्र विवेकका पता लगानेके लिए उन्हें शीघ्र ही कहीं-कहीं भेजा । उसका प्रथम दूत कपट, दूसरा दूत कुशास्त्र, तीसरा दूत पाप कहा गया है और चौथा दूत द्रोह जानना चाहिए ।

व्याख्या—अभिधा-वृत्तिसे यही तात्पर्य है कि राजा स्वयं तो सर्वत्र नहीं जाता । दूत ही राजाके नेत्र होते हैं । राजा उन दूतोंके द्वारा ही सब देशों को देखता है । कौन मित्र है, और कौन शत्रु है, निर्बल है, सबल है । उसे साम, दाम, दण्ड, भेद आदि में से किसके द्वारा जीता जा सकता है । दूत ही राजाको सभी प्रकारकी बातों से अवगत कराते हैं । व्यंजना वृत्तिसे इसका अर्थ है कि आत्माके ऊपर अनादिकाल से मोहका

१. रक. अवरु

एक छत्र शासन है। वह मोह आत्मा को कोल्हूके बैल की तरह भार लिए हुए घुमा रहा है। उससे विषयोंकी अभिलाषा रूप तृष्णा जागृत होती है, जो शान्त नहीं रहने देती है। उसका यह व्यापार हर क्षण चलता रहता है। मोहके ये चारों दूत भी विकारी प्रवृत्तिके हैं जो सदैव उसके साथ रहते हैं।

खोजत खोजत देस सवाए
पुन्न रंगपट्टणि[1] तब आए।
करि भरड़ाकउ वेसु पइट्ठे,
धीरज कोटवालि तब दिट्ठे ।।१४।।

अर्थ—सभी देशोंमें खोजते और देखते हुए वे दूत भी जब पुण्यरंग पट्टनमें पहुँचे, तब उन्होंने अपनी भ्रष्टाकृति (गुप्तवेश) धारण किया और नगरमें प्रवेश किया। वहाँके धीरज नामक कोतवालने उनकी भ्रष्टाकृति देखकर उनके दुष्ट होने का अनुमान लगा लिया।

व्याख्या—इसी आत्मामें पुण्यपुरी है जहाँ सत्य नामका राजा राज्य करता है। उसका ज्ञान नामक मन्त्री हैं और धीरज नामक कोतवाल है। उनके कारण गुण रूपी प्रजा निर्भय रहती है। उस नगरीमें इन दुष्ट दूतों का प्रवेश होना मुश्किल था। फिर भी कपट वेश बनाकर उन दूतोंने पुण्यभावोंमें घुसने की चेष्टा की। तब धीरज कोतवालने उन्हें देखा। प्रथम दूत कपट था जिसे मनमें अन्य, वचन में अन्य एवं कार्यमें अन्य रूप परिणति करने वाला कहते हैं। द्वितीय कुशास्त्र अज्ञानको कहते है, जो अपना यथार्थ रूप नहीं जानने देता है। तृतीय पाप है जो पुण्यकी तरफ परिणति नहीं होने देता। इसी पापके द्वारा आत्मा फँसती है और बन्ध रूप दण्ड पाती है। चतुर्थ द्रोह है जो शुभ गुणोंसे विरोध रखता है और प्रीति नहीं होने देता। सब पर अविश्वास ही प्रगट करता है तथा आत्माको एक स्थान पर नहीं रहने देता।

दोहा :

धीरजु देखि कुदरसनी बहु ताडण तिन्ह दीय।
पइसण मिले न नयरमहिं लेकरि भागे जीय ।।१५।।

अर्थ—धीरज कोतवालने देखा कि ये देखनेमें खोटे हैं, अर्थात् कुभेषी, खोटे विचार वाले, भ्रष्टमति हैं, तब उन्हें ताड़ना (डॉट) दी और कहा कि तुम सभीको इस नगरमें प्रवेश नहीं मिलेगा, तब वे अपने प्राण लेकर भागे।

---

१. रक. रंगपट्टन

व्याख्या—धैर्य नामक कोतवाल बहुत समझदार और बलवान था। अक्षोभ (नहीं घबड़ाना) रूप धैर्य गुण सम्यग्दृष्टियोंके होता है । उसके कारण ही उस नगर की रक्षा होती थी । उस पुण्यनगरके सभी निवासी सम्यग्दृष्टि थे । उनका वेश अच्छा था । वे सुबुद्धि सम्पन्न थे । उत्तम विचार वाले थे । उनका आचरण श्रेष्ठ था । अर्थात् उस नगरके सभी निवासी मोक्षमार्गी थे । परन्तु ये चारों दूत संसारमार्गी थे । इन चारों का वेष, रूप, बुद्धि, विचार, आचरण प्रभृति सभी अशुभ अर्थात् खोटे थे इन चिह्नों से एकान्त दृष्टि जानकर कोतवाल (धैर्य) ने इनको डाँटा और दामनीतिसे काम लेकर पुण्यपुरीमें प्रवेश नहीं करने दिया ।

दोहा :

तीनि गए तिहु वाट होइ कपटु कियउ मनु धिटदु ।
जिस सरवरि तिय भरहिं जलु तित सरि जाइ वइट्ठु ।।१६।।

अर्थ—उनमेंसे तीन दूत (कुशास्त्र, पाप और द्रोह) तो तीन मार्गोंकी ओर चले गए, किन्तु कपट ने अपने मनको ढीठ बनाया और जहाँ सरोवर पर स्त्रियाँ जल भर रही थीं, उस तालाबके किनारे जा बैठा (अर्थात् छिप गया) ।

व्याख्या—उनमें से "कुशास्त्र" मनुष्यगति रूपी मार्ग की ओर चला गया क्योंकि उसका उपदेश सुनने वाले अन्य मनुष्य थे । "पाप" नरक गतिके मार्ग में चला गया क्योंकि पापकर्मसे वही गति प्राप्त होती है । "द्रोह" तिर्यंचगतिकी ओर चला गया । क्योंकि तिर्यंचों में आहारादि विषयमें परस्परमे कलह बैर भाव रूपी द्रोह बना रहता है । परन्तु पुण्यपुर के निवासियों की गति तो मात्र देवगति है अतः इन तीनों दूतोंके लिए यहां कोई संस्थान नहीं था । "कपट" नामका दूत यथा नाम तथा गुण निकला वह डाँट सुनकर भी कहीं नहीं गया । अपने मालिक (मोह) की आज्ञा का पालन करनेके लिए वह विवेक का पता लगानेके लिए उस ज्ञान रूपी सरोवर पर जा बैठा जहाँ इन्द्रियाँ रूपी पनिहारिनें जल भरती थीं। स्त्रियों का स्वभाव होता है कि वे परस्परमें नगर की चर्चा करती हैं । इसलिए कपट वहीं छिपकर बैठ गया ।

कपट नामक दूत का पुण्यपुर में भ्रमण

वस्तु छन्द :

ज्ञानु सरवरु ध्यानु तिसु पालि

जलु वाणी विमल मइ सघण वृक्ष तहिं वात बारह।
थिरु पंखी, जोग तहिं नलिनि प्रगट प्रतिमा इग्यारह।
अड़तालीसउं रिद्धि तहिं आनद-कुंभ भरेहि।
एक जीह ते सुंदरी बहु थुति जैन करेहि।।१७।।

अर्थ—उस पुण्यनगरी में ज्ञान नामक सरोवर है, जिसका ध्यान रूपी पार (तट) है, उसमें विमल-मतियोंका वाणी रूपी जल है। वहाँ बारह व्रत रूप सघन वृक्ष हैं। स्थिर योग रूपी पक्षी (सुशोभित) हैं। उस सरोवरमें ग्यारह प्रतिमा रूप कमलिनी एवं ४८ ऋद्धि रूपी महिलाएँ प्रकट हुई हैं, जो आनन्दरूपी कुम्भमें जल भरती हैं। वे सभी सुन्दरी महिलाएँ एक जिह्वा से जैन (जिनेन्द्र गुणमयी) स्तुति करती हैं (वह ऐसा विशिष्ट सरोवर है)।

व्याख्या—यहाँ आत्माके लिए सरोवरका रूपक प्रस्तुत किया गया है। ज्ञान आत्मासे भिन्न नहीं है। अतः आत्मा ही महान् सरोवर है। ज्ञानकी निर्मल विशुद्धि को सम्यग्यज्ञान कहते हैं। वही सुज्ञान जलाशय है। वही सुध्यान रूपी तटों से बँधा है। एकाग्र शुभ तथा शुद्ध परिणामोंको ध्यान कहते हैं। उसके धर्म और शुक्ल दो भेद हैं। उत्तमक्षमादि धर्मोंसे युक्त होनेसे धर्म ध्यान होता है। कषाय रहित होनेसे उसे शुक्ल ध्यान कहते हैं। ये ध्यान ज्ञानको रागादि विकारों में नहीं जाने देते। इसलिए उसमें तृष्णारूपी तरंगें एवं मोहरूपी मगरमच्छ नहीं हैं। ऐसा निर्मल (कीचड़ रहित) निस्तरंग निरंग शुद्ध जल है। उस पुण्य नगरके निवासी निर्मल (वीतराग) पुरुषोंकी वाणी प्रमाणनय रूप जलका पान करते हैं। वहाँ विकथा, एकान्त रचित मिथ्याज्ञानियोंकी वाणी नहीं है। वहाँ १२ व्रत (अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत) रूप सघन (पत्र, पुष्प, फलोंसे परिपूर्ण) वृक्ष हैं, जिससे चित्त वहीं रम जाता है। अन्यत्र विषयोंमें नहीं जाना चाहता है।

दोहा छन्द :

बहुदी जैन प्रशंसना करत सुणी वै नारि।
कपटु चलिउ तब नयर कहु रूपु जतीकउ धारि।।१८।।

अर्थ—बहुत सी नारियाँ वहाँ जिनेन्द्रकी प्रशंसाके गीत गा रही थी। उन गीतोंको कपट ने सुना। तब कपट कृत्रिम यती (साधु) का रूप धारण कर नगर की ओर चला।

व्याख्या—उस पुण्यपुर नगरके सभी नर-नारी रात-दिन जिनेन्द्र का गुण गान किया करते थे। वहाँ कोई मोहराजाको नहीं जानता था। सभी

लोग राजा चेतन और सत्यके द्वारा बताए हुए मार्गको जानते थे । वहाँ मिथ्यात्वकी प्रवृत्ति नहीं थी । जिनके हृदयमें जो भाव होते थे, वही बाहर निकलते थे । कपटने उन बातोंको सुना और विचार किया कि असली वेशसे नगरमें प्रवेश करना दुर्लभ है, अतः उसने यतिव्रतीका नकली वेश बनाया और नगरमें प्रविष्ट हुआ ।

मडिल्ल छन्द :

नयरी मांहि कपटु संचरियउ
ठामि ठामि सो देखत फिरियउ ।
देखि विवेक सभा सुविचक्षण
देखी प्रजा सबइ सुभलक्षण ।।१९।।

अर्थ—उस कपटने यती वेशमें नगरमें संचार किया । वह स्थान-स्थानको अच्छी तरहसे देखता हुआ फिर रहा था (भ्रमण कर रहा था)। वहाँ उसने राजा विवेककी सुविचक्षण सभा देखी तथा समस्त प्रजाको शुभ लक्षणोंसे युक्त देखा ।

व्याख्या—जहाँ विवेकका राज्य होता है वहाँ अन्यायकी प्रवृत्ति नहीं होती । जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है । उस कपटने वहाँ शुभलक्षणों वाली प्रजाको देखा । उसने विवेक राजाकी सभा भी देखी तथा प्रजा को भी देखा जहाँ विवेकपूर्ण उपदेश हो रहा था । जहाँ सभी पुरुष सुविचक्षण धर्म में निपुण बैठे थे । "न सा सभा यत्र न संति वृद्धाः । न ते च वृद्धाः ये न वदंति धर्मम् । इस प्रकार सभामें सभी वृद्धपुरुष थे। वे न्यायमार्ग का अनुसरण करने वाले थे । विवेक सम्यक्तत्व का नाम है।अतः सभी सच्चे देव, शास्त्र, गुरुके श्रद्धानी थे । वहाँ कोई भी हिंसक चोर, चुगलखोर, असत्यवादी, बदमाश, कंजूस नहीं था । सभी परस्पर में प्रेमपूर्वक रहते थे । सभी मोक्षमार्ग के पथिक थे । संसार मार्ग पर किसी की रुचि नहीं थी । किसी की दृष्टिमें मूढ़ता का प्रवेश नहीं था। वे काम, क्रोधमद आदि विकार भावोंसे डिगनेवाले को फिर से स्थापन कर सँभालने वाले थे । वहाँ किन्हीं भी पुरुषोंमें दोष नहीं थे अतः दोषोंको छिपाने की बात भी नहीं थी । उत्तम भावोंकी जागृति सबकी आत्मा में थी । वहाँ बहिरंग प्रभावना होती ही रहती थी । ऐसी शुभ लक्षण वाली प्रजा को उस कपट दूतने देखा ।

देखिउ न्याय-नीति मारगु बहु
देखिउ तहिं ठइ लोक सुखी सहु ।

छेदु भेदु सबही तिणि पायउ
तब सु कपटु उठि पंथहि धायउ ।।२०।।

अर्थ—उस कपटने वहाँ न्यायनीतिरूप बहुतसे मार्ग देखे तथा नगरीमें प्रत्येक स्थान पर सभी लोगोंको सुखी देखा। इसप्रकार सबका छेद-भेद (रहस्य) उसने प्राप्त कर लिया। तब वह कपट नामका दूत सबका समाचार लेकर अपनी नगरीके मार्गकी ओर शीघ्रतासे दौड पड़ा।

व्याख्या—उस कपट दूत ने पुण्यपुरीके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी मार्ग देखे, जो साफ सुथरे थे। आत्माके अंतरंग पथ भी चतुर्थ, पंचम गुणस्थानके थे। जिनके प्रशम संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य भक्ति, निर्वेग, वात्सल्य आदि विशिष्ट नाम थे। वहाँकी प्रजाकी आत्मा इन्ही निजी मार्गों पर विचरण करती थी। सभी स्वयं ही अनुशासन पालते थे, कोई भी स्वच्छन्दता प्रिय नहीं थे। स्वच्छन्दता ही सबसे बड़ा अपराध है। स्वच्छन्दतामें ही सर्व पाप सन्निहित हैं। ऐसे पुरुष यहाँ नहीं थे। यह सब राजा विवेक का ही माहात्म्य है, जो सभी सदैव सुखी रहते थे।

आइ अधम्मपुरी सु पहुत्तउ
जाइ जुहारु मोह-सिउं किमउ।
मोहु बुलाइ बात तिसु पुच्छइ ।।२१।।

अर्थ—वह दौड़ता हुआ आकर अधर्मपुरी पहुँचा। वहाँ उसने राजा मोहको जुहारु (नमस्कार) किया। तब मोहराजाने उसे बुलाकर सब बातें पूछीं "कहो कपट, राजा विवेक किस स्थान पर ठहरा है, उसका हालचाल कैसा है?"

व्याख्या—सज्जनोंके मनमें शंका नहीं होती है क्योंकि उनका आचरण सदा पवित्र रहता है। किन्तु दुर्जनोंके मनमें बराबर शंका बनी रहती है। राजा मोहके विवेकके विषयमें हमेशा शंका बनी रहती थी। वह उसका हालचाल जाननेके लिए उत्सुक बैठा था तभी कपट दूत वहाँ वापिस आ गया। राजा मोह की राजधानी अधर्मपुरीके सिवाय दूसरी क्या हो सकती है? राजा मोहने अधीरता पूर्वक कपट से पूछा "कहो वह विवेक किस स्थान पर रहता है? वह स्थान कहाँ है?"

दोहा :

पासि बुलायउ कपटु तब पूछण लागउ बात।
कहाँ निवत्ति विवेकु कहं कहु तिन्ह की कुसलात ।।२२।।

अर्थ—राजा मोह कपटको पासमें बुलाकर सब बातें पूछने लगा-निवृत्ति नामकी रानी कहाँ है, उसका पुत्र विवेक कहाँ है, उनकी कुशलता का समाचार कहो?

व्याख्या—राजा मोह बहुत ही व्याकुल था कि कैसे विवेक और निवृत्तिको वशमें किया जाए। इसके लिए पहिले उनका निवास स्थान जानना जरूरी था। इसलिए वह दोनों का निवास पूछता है। निवास का पता चल जाने पर उन्हें वशमें करना सुगम हो जायगा। मोहको बड़ा मद हो रहा था। क्योंकि संसार का अर्थ मोह ही है। कोई पुरुष इसे मिथ्यात्वके नाम से तो कोई, रागद्वेषके नाम से और कोई अधर्मके नाम से जानते हैं। यह मोह अनादि से सभी आत्म तत्वों में घुल मिल कर बैठा है और किसीको निर्मोह नहीं होने देता।

कपट नामक दूतके द्वारा मोह से पुण्यपुर की प्रशंसा

दोहा :

मोह ! सुणहु तुम कण्ण धरि[1] कपटु पयासइ एम।
जइसी दीठी नयणि मइं तइसी बात कहेम ।।२३।।

अर्थ—तब कपटने इस प्रकार कहा—हे मोह राजन्, तुम कान लगाकर सुनो। जैसी रीति नेत्रोंमें दिखाई दी है, वैसी बात ही कहूँगा।

व्याख्या—लोकमें यह कहावत प्रसिद्ध है कि आँखों देखी बात ही सच होती है। इसीके अनुसार वह कपटदूत राजा मोहको अपनी आँखों द्वारा देखी पुण्यपुर नगरीकी प्रशंसा करने लगा। दूतों का यह कार्य होता है कि वे वेशको बदलकर स्वयं यथार्थताका पता लगाकर, समझकर तब अपना अभिप्राय अपने स्वामीसे प्रकट करते हैं। उसका कार्य होता है स्वामी के अनुकूल प्रवृत्ति करना। स्वामीको सब देशोंके समाचार देते रहना जिससे शत्रुका संहार होता रहे। राजाओंके नेत्र दूत ही हुआ करते हैं।

वस्तु छन्द :

वसइ पट्टणु पुन्नपुरु पयडु।
तहिं राजा सत्तु थिरु तिप्पि विवेकु गहि सुथिरु थप्पिउ।
परणाई धीय तिसु रज्जु देसु सव्वइ समप्पिउ।
दया-धम्मु जहि पालियइ कीजइ पर उपगारु।
तहं ठइ सुपनि न दीसई चोर अन्यायी जारु ।।२४।।

---

१. क ख. धरिदे

अर्थ—सभी पट्टनोंमें पुण्यपुर पट्टन प्रकट है। वहाँ सत्य नामका राजा स्थिर है। उसने विवेकको अपने तृप्ति रूपी गढ़में स्थिर रूप (अच्छी तरह) से स्थापित कर लिया है। उसने (राजा सत्य) अपनी पुत्री का विवाह भी उसके साथ कर दिया है तथा सम्पूर्ण राज्य, और देश भी उसे समर्पित कर दिया है। वह विवेक दया-धर्म का पालन करता हुआ पर-उपकारमें लगा रहता है। उसके राज्यमें स्वप्नमें भी अन्यायी चोर और जार पुरुष दिखलाई नहीं पड़ते।

व्याख्या—यह आत्मा ही एक प्रकट नगर है। जब आत्मामें मोह राजा निवास करता है सब आत्मा ही अधर्मपुरी बन जाती है। वहाँ चोर, व्यभिचारी, अन्यायी जन रहते हैं। किन्तु आत्मा में जब सत्य राजा रहता है तब वह आत्मा धर्मपुरी कहलाती है। अतः यह आत्मा दोनों रूपोंमें प्रसिद्ध है। उस पुण्यपुर नगरके चारों ओर तृप्ति (सन्तोष) नामका गढ़ है। जहाँ सत्य राजा स्थिर रहता है। वहीं उसने विवेकको भी स्थापित कर लिया है। उसे क्रोध, मान, माया और लोभ भी नहीं हटा सकते। राजा सत्य ने अपनी कन्या (अनुभूति) का विवाह विवेकके साथ कर दिया है साथ ही अपना राज्य भी अर्पित कर दिया है। समस्त आत्मप्रदेश में उसीका अधिकार है। उसका राज्य निष्कंटक है। उसकी विशेषताका वर्णन करना सम्भव नहीं है।

दोहा :

पवण छत्तीसउं सुखि वसइ करइ न कौ परतांति।
काँचे कंचन गलियमहि पड़े रहहिं दिन-राति॥२५॥

अर्थ—वहाँ छत्तीसों जातियाँ सुखसे निवास करती हैं।

व्याख्या—पवणका अर्थ समर्थ, चतुर अथवा वायु होता है। आत्मा की अपेक्षा ३६ वायु लेना। सम्यग्दर्शन के प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य, भक्ति, निर्वेग, निःशंकितादि आठ अंग तथा सम्यग्ज्ञान के आठ अंग, सम्यग्चारित्रके निःशल्य आदि एवं पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति अथवा रत्नत्रय उनके २९ अंग तथा प्रशम, संवेग आदि ४ मिलाकर ३६ समझ लेना चाहिए। लोकमें ३६ जातिके मनुष्य नगरों में रहते हैं। वे सह परस्पर में अपनी-अपनी परिणति करते हुए मेल से रहते हैं। उनके परिणामों काँच-कंचन दोनों समान हैं। वहीं समता भाव का रूप पथ है। उसी में वे पड़े रहते हैं। अर्थात् कोई भी आत्मा से दूर नहीं हटते।

तेरे गढमहि फोडि घरु चोर चरड ले आहिं ।
पर तृण कोइ न छीपइ तिसुकी आज्ञा मांहि ।।२६।।

अर्थ—हे राजा मोह ! तुम्हारे गढ़में तो चोर (इंद्रिय) घरको फोड़कर (सेंध लगाकर) वस्तुओंको चुराकर ले जाते हैं लेकिन इस (विवेक) के राज्यमें उसकी आज्ञाके बिना कोई भी पर-वस्तुको तृण समझकर नहीं छूता।

व्याख्या—यहाँ पर सम्यकत्वके चुरानेवाले अनन्तानुबन्धी कषायचोर, मुनिधर्मको चुराने वाले प्रत्याख्यानावरण कषाय चोर तथा रागद्वेष, काम विकारादिके कारण तीव्र वेदनोदय नहीं थे । सब निजपरिणतिके चोर हैं। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें श्री अमृतचन्द्र स्वामीने कहा है कि "सम्यग्दर्शन चौरा: प्रथमकषायाश्चत्वार: ।" चैतन्य रूपी धनको चुरानेवाले विषयरूपी चोरोंका वहाँ अभाव था । कहा भी गया है—"संजम रतन सम्हाल विषय चोर बहु फिरत हैं ।" अत: वहाँ अगुप्ति भय नहीं था ।

तहिं परपंचु न दीसई जहडइ किसिउं न कोइ ।
सवइ संतोसी मेदिनी दिट्ठी मइं अवलोइ ।।२७।।

अर्थ—वहाँ कहीं भी प्रपंच दिखलाई नहीं पड़ता और न ही कोई किसीसे ईर्ष्या (डाह) ही करता है । वहाँ की समस्त भूमि सन्तोषी है, यह मैंने अपने नेत्रों से देखा है ।

व्याख्या—उस धर्मपुरी में तृष्णा-आशा किसीको नहीं थी । पर पदार्थोंकी अभिलाषा ही प्रपंच कहलाती है । उसमें किसीकी बुद्धि नहीं जाती थी । वहाँ आत्मा की भूमिमें सन्तोष ही उत्पन्न होता था । वहाँ कोई असन्तोषी नहीं था । वहाँ जीवन का, आरोग्य का और इहलोक, परलोक का मोह भी नहीं था । वहाँ नि:शंकित आदि आठ सम्यक्त्व गुणोंके विपरीत शंकादिक आठ दोष भी नहीं थे । सब ही अपने स्थानमें रहते थे । इसीसे द्रोह, विरोध का कार्य नहीं था । विवेकने सबकी सुरक्षा कर रखी थी । अत: पृथ्वी पूर्ण रूपसे सन्तोषमयी थी । यह सब कपट दूत ने आँखों देखा हाल ही सुनाया था ।

मडिल्ल छन्द :

दिट्ठउ नयरु फिरिवि चारिउँ पखि
सुभवाणी सुणियइ सव्वहँ मुखि
राउ नयरु विषमउ दल बल अत्ति
इंद नरिंद बरहिं जिस बहु थुत्ति ।।२८।।

अर्थ—चारों तरफ घूमकर मैंने पूरी नगरीको देखा है और सभीके

मुखसे शुभवाणीको सुना है। हे राजा, वह नगर, दल और बलके प्रति विषम है। इन्द्र और अनेक राजा भी, जिसकी बहुत प्रकारसे स्तुति करते रहते हैं।

व्याख्या—कपट नामका दूत कहता है, मैंने चारों पक्षों—चारों दिशाओंसे घूम-घूम कर नगरको अच्छी तरह देखा। मुझे देखकर किसीने किसी प्रकारके अपशब्द नहीं कहे। सबके मुखसे परस्परमे शुभवाणी का उच्चारण ही सुना। इस प्रकार वह नगर सेना और बल (शक्ति) दोनोंसे अति विषम है। विषयका अर्थ यहाँ अनुपम है। इस गाथाका यह अर्थ लौकिक-दृष्टिसे किया गया है। आत्मिक-दृष्टिसे वह कपट कहता है—"मैंने उस आत्मा रूपी नगरीको चारों पक्षों अर्थात् चारों नयो निश्चयनय, व्यवहारनय, द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिकनय से विचार कर देखा है। वह इस प्रकार है—निश्चय नयसे आत्मा अखण्ड है, वहाँ अन्य किसी का प्रवेश नही है। व्यवहारनयसे उस आत्मा-नगरको खण्ड-खण्ड रूपमें देखा लेकिन किसीभी गुणमें विकार नहीं पाया। यह नय शब्द रूप है। ज्ञातुर्वचनं नयः। सब गुण रूपी प्रजा परस्परमें संघटित है। वे सब गुण तुम्हारी परतन्त्रताको नहीं चाहते हैं।"

सुणि सुणि हो तूं मोह-भुवप्पति
दिट्ठी नयरतणी मइं यह गति
स्वामि विवेकु चडिउ अति चाडइ
तुम्ह उप्परि गज्जइ दियहाडइ ।।२१।।

अर्थ—हे मोह राजन्, तुम भुवनपति हो फिर भी सुनो-सुनो। मैंने उस नगरकी यह अवस्था देखी है कि उस पुण्यनगरका स्वामी विवेक है, वह खूब बढ़ रहा है और अधिक बढ़ (शक्तिशाली है) रहा है, वह तुम्हारे ऊपर दहाड़ रहा है, गरज रहा है, जैसे कि सिंह गरजता और दहाड़ता है।

व्याख्या—यहाँ कपट ने कहा—"हे मोह राजन्, तुम समस्त जीवोंके पति हो! तुम्हारा एक छत्र सार्वभौम राज्य है—किन्तु आत्मानगरमें तुम्हारा राज्य नहीं है। वहाँ कोई भी गुण तुम्हारा नाम नहीं लेता। वहाँ ऐसी निर्मोह रूपी गति मैंने स्वयं देखी है। वहाँका स्वामी विवेक है। उसका दल (परिवार) और बल (सेना) अजेय है। वहाँ सभी स्वतन्त्रताकी ओर बढ़ रहे हैं और निर्भय होकर रहते हैं। राजा विवेक तुम्हारे ऊपर गरजता और दहाड़ता है कि मैं ही सदाके लिए यहाँ रहूँगा। अब यहाँ मोहका प्रवेश नही हो सकता है।"

दोहा :

मोहि सुणी जब बात यह तब मनि मच्छरु आधु ।
डालि चडिउ जणु बांदरउ चूतडि बोधू खाधु ।।३०।।

अर्थ—जब मोह राजाने यह बात सुनी, तब उसके मन में ईर्ष्या-द्वेष इस प्रकार बढ़ गया जैसे कि आमकी डाल पर चढ़े हुए बंदरको आम्र वृक्षका स्वामी (माली) अच्छा नहीं लगता और वह उसे दाँत दिखाता तथा काट खाता है ।

व्याख्या—अपने कपट दूतके मुख से इन शब्दोंको सुनकर मोह राजा मनमें ही गरजने लगा । उसका मत्सर भाव बढ़ गया । वह सोचने लगा—विवेक मेरा क्या कर सकता है । वह तो केवल एक पुण्यपुरीका स्वामी है, मैं तो अनादिकालसे तीन लोकका स्वामी रहा हूँ । वह मेरी बराबरी क्या कर सकता है? मैं उसे अपने वशमें करके ही रहूँगा । उस समय मोहकी स्थिति आम्रकी शाखा पर चढ़े हुए उस बन्दर जैसी थी, जो मालीके स्थान पर स्वयंको ही आम्र वृक्ष का स्वामी मान कर मालीको आम्र वृक्षके पासमें नहीं आने देता ।

अहंकारु अति कियउ तिणि लीए बेगि बुलाइ ।
खबरि करहु सब सैन कहुँ सभा जुडइ जिम आइ ।।३१।।

अर्थ—राजा मोह ने अत्यधिक अहंकार किया और शीघ्रता पूर्वक सेवकोंको बुलाकर कहा कि सब सेनाको खबर कर दो, जिससे कि बड़ी भारी सभा आकर इकट्ठी हो जाय ।

व्याख्या—जब किसीको शत्रु पर क्रोध आता है तब वह बढ़-चढ़ कर बोलने लगता है । वह मत्सर भाव् से भर जाता है, तथा क्रोध के कारण उसे कुछ नहीं सूझता कि मैं क्या कहूँ और क्या न कहूँ? समयको देखे बिना मुखसे अपशब्द बोलने लगता है । उसकी रुचि सभी ओर से हट जाती है । निद्रा नहीं आती, है, खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता । केवल कलह ही कलह रुचिकर प्रतीत होती है । यही स्थिति राजा मोह की भी हुई । वह भी ऐसा ही करने लगा । उसने क्रोध और ईर्ष्यामें भरकर अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि शीघ्र ही सेना तैयार करो ।

वस्तु छन्द :

रोसु आयउ साथि तिसु शुद्दु।
अरु सोकु संतापु तहिं सकलप्पु विकलप्पु आयउ ।
आवर्तु चिंता सहितु दुक्खु कलेसु कुध्यानु धयउ ।

कलहु अदेसा छदमु तह समरु सबलु गरजाइ ।
अइसी राजा मोह की सभा जुड़ी सब आइ ।।३२।।

अर्थ—खबर करने से सबसे पहले क्रोध (रोष) आया । उसका साथी झूठ भी आया और शोक, संताप, संकल्प, विकल्प भी आए । चिन्ता सहित आवर्त (आर्त्त) दुःख-कलेश, कुध्यान (रौद्र) भी दौड़ा । कलह, अदेस्वा (ईर्ष्या) छदम (छल) तथा स्मर (काम) भी आए । सबल (बलसहित) गरजने लगे । सब लोगोंके जुट (इकट्ठा) जानेसे राजा मोहकी ऐसी सभा जुड़ गई ।

व्याख्या—राजा मोहकी सभामें अनेक वीर एकत्रित होकर गर्जना करने लगें । रोष जहाँ होता है, वहाँ मुखसे झूठे वचन ही निकलते हैं। अत: रोषके साथ झूठ भी आया । (शोक) इष्ट के वियोग में होने वाले परिणाम संताप (पश्चाताप) संकल्प (मिथ्यात्व सहित अभिमान-अहंकार) और विकल्प (ममत्वभाव) आवर्त्त, (आर्त्त ध्यान) चिन्ता सहित, दुःख, क्लेश, कुध्यान (रौद्र) नामके वीर अपने साथियों सहित उपस्थित हो गए । साथ ही कलह, अदेस्वा (असूया), छद्म (दल-कपट् अज्ञान) तथा स्मर (पुरुषवेद स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, राग) प्रभृति वीर भी अपने परिवार सहित राजा मोहकी सभा में एकत्रित हो गए ।

दोहा :

करिवि सभा तब मोह भडु इम चिंतिइ मनमाहिं ।
जल लगु जिवइ विवेकु यहु[१] तब लगु हम सुख नाहिं ।।३३।।

अर्थ—तब मोहने अपने सभी वीर भटोंकी सभाकी । वह अपने मनमें इसप्रकार विचार करने लगा कि जब तक विवेक जीवित है, तब तक हमको सुख नहीं हो सकता ।

व्याख्या—राजा मोहने सभाको सम्बोधित करते हुए कहा कि—हमारा प्रबल शत्रु विवेक है । हमें उसके साथ युद्ध करना है और उसे मार भगाना है । जब तक वह जिंदा रहेगा हम सुखसे नहीं रह सकते हैं । मोहकी बातोंको सुनकर सभी वीर एक साथ कहने लगे कि महाराज, हमें आज्ञा दीजिए, जिससे कि अभी हम उसको नष्ट-भ्रष्ट कर दें । वह श्वास लेते-लेते नष्ट हो जायगा । वीरोंके वचनोंको सुनकर राजा मोह मन ही मन विचार करने लगा कि कौन सा उपाय किया जाय, जिससे विवेक जीवित न रह सके ।

वीर मन्मथ (मदन) की उद्घोषणा

मोह नासह वयण सुणि एम

१. ग. दहु

सुनु मनमथु उट्ठियउ सिरु नवाइ कर जोडि जंपइ ।
दावानलु जिम जलइ थरहराइ करि कोपु कंपइ ।
रहहिं कि कुंजर वापुडे जहिं वणि केहरि गंध ।
आजु निवर्ति विवेकसिउं गहि ले आवउं बंदि ।।३४।।

अर्थ—राजा मोहके ऐसे वचन सुनकर, उसका पुत्र मन्मथ (कामदेव) सिर झुकाकर उठा और हाथ जोड़कर बोला । वह मन्मथ क्रोधाग्नि से अत्यधिक जलने और काँपने लगा । वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों अग्नि ने प्रज्ज्वलित होकर दावानल का रूप धारण कर लिया हो। जिस वनमें सिंह की गन्ध आती है, वहाँ विचारे हाथी कैसे रह सकते हैं? आज ही रानी निवृत्ति और विवेकको पकड़कर बंदी बनाकर ले आवेंगे। वह सिंहके समान गर्जना करने लगा ।

व्याख्या—संसारमें मन्मथ बहुत बड़ा वीर है । इसकी उत्पत्ति का स्थान अन्तः करण (मन) है । वहाँ उत्पन्न होकर, वह सब गुणोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है । इसे जीतना बड़ा ही कठिन कार्य है । इसके रहते हुए समय और श्रद्धाकी बात समझमें नहीं आती । उस सभामें वह मन्मथ अपने पिता (मोह) की बात सुनकर क्रोधाग्निसे जलने लगा और शक्तिसे काँपने लगा ।

यह बात विश्व प्रसिद्ध है कि जिस आत्मामें क्रोध उत्पन्न हो जाता है, वह अत्यधिक काँपने लगती है । हाथ-पैर स्थिर नहीं रहते, वह उछलने लगता है । संसारी आत्माकी यही रीति है । मन्मथने अपनेको सिंहके समान मानकर विवेक और निवृत्तिको हाथीके समान मानकर सभामें शीघ्र ही उसके बन्दी बना लेने की घोषणा कर दी ।

दोहा :

मोह राउ तब हत्थिकरि बीडउ अप्पइ अप्पु ।
कुमति कुसीख कुबुद्धि देइ चल्लाइउ कंदप्पु ।।३५।।

अर्थ—मोह राजाने तब अपने हाथके द्वारा उस कंदर्प (कामदेव) को बीड़ा (पानका) अर्पित किया और साथ में कुमति, कुशिक्षा और कुबुद्धि देकर उसे (विवेक के पास) भेजा ।

व्याख्या—राजा मोह ने कंदर्प (कामदेव) की बात सुनकर, अपने हाथसे उसे पान का बीड़ा दिया । उसने सोचा अब मेरा प्रयोजन अवश्य ही सिद्ध हो जायगा । भारतीय-संस्कृति में यह अत्यन्त प्राचीन परम्परा रही है कि राजा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर देनेकी घोषणा करने वाले पुरुषको

सभाके मध्य पानका बीड़ा लेता है । राजा मोह ने कन्दर्प की सफलताके लिए अन्य अनेक वीरों की भी साथमें भेज दिया ।

मनमें जब काम उत्पन्न हो जाता है तब कुमति आ जाती है । उसके कारण खोटी शिक्षा ही अच्छी लगती है । सभी अभिप्राय खोटे हो जाते हैं । इन नारी वीरोंको मोह ने इसलिए साथ भेज दिया कि अकेला कन्दर्प, राजा विवेक और रानी निवृत्तिको एक साथ नहीं पकड़ सकता । इनके साथ रहनेसे दोनोंको सुगमतासे वश में कर लिया जाएगा ।

गाथा छन्द :

गुडि मत्त मयणु गज्जिउ सज्जिउ दलु विषमु चहु पकारेण ।
हरि बंभु ईसु भज्जिउ वज्जिउ जब गहिरु निस्साणु ।।३६।।

अर्थ—मतवाला मदन अपने साथियों सहित गर्जना करने लगा । राजा मोहने चारों प्रकारकी अपनी विषय सेना तैयार की । वह हरि, ब्रह्मा एवं शिव इन सभी इष्ट देवोंको भजने लगा और फिर निशान (बाजे) गम्भीर ध्वनि करने लगे ।

व्याख्या—मन्मथके जानेके बाद बाद राजा मोहने अपनी चतुरंगिणी सेना तैयारकी । यह सेना हाथी, घोड़ा रथ और पैदल, इन चार प्रकारोंकी होती है । राजा वही कहलाता है, जिसके पास शत्रु से बढ़कर भयंकर सेना हो । राजा मोहने तत्काल ही बड़े-बड़े वीरों की सेना तैयारकी । इसीके बल पर तो अनादिकालसे सभी संसारी जीव उसके वशमें हैं तथा चारों गति रूप जेलखानेमें बन्दी बन कर पड़े हुए है । युद्ध में विजयकी प्रार्थना हेतु राजा मोह ब्रह्मा, विष्णु, और महेशका ध्यान करने लगा । उसने सभीको उनका स्मरण करनेका आदेश दिया । ब्रह्मा, विष्णु और महेश का ध्यान इसलिए किया कि ये तीनों देव स्वयंभी मोह और कामसे परिपूर्ण हैं । इन्हींकी भक्ति से मोहको युद्धमें विजयश्री प्राप्त हो सकती थी ।

युद्ध में गम्भीर वाद्यों का बजना भी अपने आपमें बड़ा महत्व रखता है । जब तक बाजे गम्भीर ध्वनिसे नहीं बजते तब तक सेनामें लड़ने का उत्साह जागृत नहीं होता, उनमें तेजस्विता नहीं आती । जैसे-जैसे वाद्य गम्भीर ध्वनि करते हैं, वैसे-वैसे ही योद्धा के हाथ-पैर स्वयं ही चलायमान हो उठते हैं । मोहने युद्धकी सभी नीतियों का पालन किया । पहलेतो उसने कामदेवको भेजकर सामनीतिको अपनाया और पुन: सेनाको तैयार करके दाम, दण्ड, भेदकी नीतिको अपनाया ।

ऋतुराज बसन्त का आगमन

गीता छन्द :

बज्जिउ निसाणु वसंतु आय उछल्लि कुंद सुखिल्लियं ।
सुभ गंध मलया पवण झुल्लिय अंखि कोइल बुल्लियं ।
रुणझुणिय केयइ कलिय महुयर सुतरु पत्तिहि छाइयं
गावंति गीय बजंति बीणा तरुणि पाइक आइयं ।।३७।।

अर्थ—जब निशान (वाद्य) बजने लगे, तो उसे सुनकर बसंत (ऋतुराज) उछलकर आ गया । उसके आगमनसे कुंद पुष्प प्रफुल्लित हो गए । शुभ गंध युक्त मलयानिल (पवन) चलने लगी तथा आम्र-वृक्षों पर कोकिल कूकने लगी । केतकी पुष्पकी कलियों पर भ्रमर रुण-झुण ध्वनिसे गुंजन करने लगे । आम्र-वृक्ष पत्तियोंसे ढँक गए । तरुणी महिलाओं पर पाइक (बसन्त का उन्माद) छा गया । वे गीत गाने लगीं और वीणा बजाने लगीं ।

व्याख्या—युद्ध की वाद्य-ध्वनिको सुनकर राजा मोहका मित्र वसंत-राजा भी उसका साथ देनेके लिए उछलकर आ गया । साहित्यमें बसंत ऋतुको सभी ऋतुओंकी राजा माना गया है क्योंकि उस ऋतु में सभी नरनारी उल्लास और उन्माद से भर जाते हैं ।

वह ऋतुओंमें सर्वप्रथम शिशिरऋतुमें शीत अधिक पड़नेसे सभी नर-नारी गर्भगृहोंमें छिप जाते हैं । पुष्प तुषारसे गलने लगते हैं, वृक्षोंके पत्ते झड़ने लगते हैं । अत: उन्माद कार्य नहीं हो पाता । आगे ग्रीष्म ऋतुमें गर्मी अधिक पड़ने से भी उल्लास नहीं आता है । वर्षा ऋतु में भी वर्षा अधिक होने से सब अपने-अपने घरों में आश्रय ले लेते हैं । उस समय कोई उत्सव नहीं होता केवल धार्मिक कार्य होते हैं । वर्षा ऋतु में विदेश गमनादि जो कार्य बन्द हो गए थे वे शरद ऋतु में होने लगते हैं अर्थात् व्यापारकी चिन्ता होने लगती है । हेमन्तमे गीत का प्रवेश हो जाने के कारण सब अपना-अपना स्थान चुनने लगते हैं । अत: एक बसन्त ऋतु ही ऐसी है, जिसमें नर-नारी उन्माद को प्राप्त हो जाते हैं और स्वच्छन्द होकर घर से निकल पड़ते हैं ।

इस अवसर पर राजा भी जल क्रीड़ा और वनक्रीड़ा की योजनाएँ करते हैं । शीतल, मन्द, सुगन्धित मलयानिल चलने लगती है । उस वायु के प्रवाह से स्वयमेव ही राग की वृद्धि होने लगती है । अमर-मंजरी खाने से कोकिलों के कण्ठ खुल जाते हैं और वे मधुर स्वरसे

कूकने लगती हैं। जिन भ्रमरोंको शीत ऋतु में पुष्प प्राप्त नहीं होते थे वे ही भ्रमर वसन्त ऋतुमें केतकी पुष्पों पर मधुर रुणझुण ध्वनिसे गुंजार करने लगते हैं। इसीलिए वसन्त ऋतु सब ऋतुओं का राजा है।

जिन्ह कुटिल केस कलाप कुंतल मंगि मोत्तिय धारियं।
जिन्ह वेणि भुवग रुलंति पंकज गुंथि कुसुम संधारियं।
जिन्ह भमुह धनुहर धरिय सम्मुह नयण बाण चढाइयं
गावंति गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥३८॥

अर्थ—उस (वसंत के आगमन पर) समय तरुणी नारियों ने अपने कुटिल केशोंको सँवारा और इन कुंतलों की माँग को मोतियों (मोत्तिय पुष्प) से सज्जित किया। जिन महिलाओं ने उनकी (केशों की) चोटियाँ गूँथीं, वे (चोटियाँ) सर्पके समान प्रतीत हो रही थीं। उन चोटियों को अपने कमल-पुरुष के द्वारा सुसज्जित किया। जिन स्त्रियों ने अपनी भौंहोंको संवार कर तीक्ष्ण किया, वे इस प्रकार लग रही थीं, जैसे—उन्होंने धनवीरोंके सम्मुख नेत्र रूपी बाण धनुषों पर चढ़ाए हों। वे तरुणी नारियाँ (सौन्दर्ययुक्त होकर) गीत गाने लगीं और वीणा बजाने लगीं। इस प्रकार ऋतुराज वसन्त का आगमन हो गया।

व्याख्या—शीत ऋतु में नारियाँ केश सँभालना भूल गई थीं किन्तु वसन्त ऋतके आने से उनके शरीर में विशेष अनुराग प्रकट होने लगा इसलिए उन प्रमदा नारियोंने अपने टेढ़े बिखरे केशों को सम्हालने का कार्य किया। उन्होंने अपने केशोंमें मोती अर्थात् मालती और बेला पुष्पोंकी मालाएँ धारण की। वे पुष्प ही मोतीके समान थे। उनकी चोटियाँ नागिनके समान लहराने लगीं। वे नागिन इसलिए थी, कि जिस प्रकार कोई नागिनी के पास जाय तो वह डँस लेती है, उसी प्रकार वीर पुरुष भी उन केशोंकी वेणी के दर्शन मात्र से ही राग से घायल हो जाते हैं। नाग-नागिनीको सुगन्धित पुष्पों पर निवास करना अच्छा लगता है इसलिए युवतियोंने केशों की वेणीको पुष्पसे गूँथकर बगीचा बना दिया। उसी राग रूप पंचेन्द्रिय विषयों में प्रवृत्तिरूप सर्पिणीका निवास हो गया।

उन नारियोंकी काली वक्र रोमवाली भौंहें ही धनुष थीं, जिन पर नेत्र रूपी बाण चढ़े रहते हैं। उन बाणों के द्वारा वीर पुरुष भी कायर हो जाते हैं। उस समय वीतरागी साधु भी विचलित हो जाते हैं। उस वसन्त ऋतु में युवतियाँ राग के ही गीत गातीं तथा मधुर ध्वनिवाले रागवर्धक

वाद्य बजाती हैं। उनको सुनकर श्रवणेन्द्रिय से भी वीर पुरुष उन्मत्त हो जाते हैं। विरहीजन भी अपनी-अपनी सहचरीको याद करने लगते हैं। वैराग्यका तो स्मरण ही नहीं रहता। ऐसा विचलित कर देने वाला ऋतुराज वसन्त आकर खड़ा हो गया।

जिन्ह तिलक मृगमद तिक्ख मल्लिय चीर धजकरकंतियं।
जिन्ह कानि कुंडल कंद मनमथ गूढ पडि बज्झंतियं।
जिन्ह दंत बिज्जुल चमकि लग्गहि कु को को न दहाइयं।
गावंति गीय बजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं।।३१।।

अर्थ—उन तरुणी नारियों ने अपने तीक्ष्ण (तीखें) भाल (मस्तक) पर कस्तूरी का तिलक और वस्त्र धारण किया। उनका वह वस्त्र ध्वजाके समान फहराने लगा। जिन्होंने अपने कानोंमें कुण्डल धारण किए वे ऐसी प्रतीत हो रही थीं, मानो मन्मथ ने (युवतिजनों के माध्मय से) मूढ़ जनो को ही प्रतिबन्धित कर लिया हो। उन तरुणियोंके दाँत बिजली के सदृश चमकने लगे। उस बिजलीके प्रकाशमें कौन-कौन नहीं डूबे? इसप्रकार पाइक (वसन्त-ऋतु) के आगमन पर तरुणियाँ गीत गातीं और वीणा बजाती हैं।

व्याख्या—कविने यहाँ वसन्त ऋतुराज के वर्णन में स्त्रियोंको प्रथम स्थान दिया है। क्योंकि नारियोंके रागरसके भ्रम में सभी भूले हुए हैं। पुरुषोंको जीतने का उपाय नारियाँ हैं। स्त्रियों के प्रत्येक अंग मोहित करने वाले होते हैं, जिसके कारण बड़े-बड़े वीर भी अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जाते हैं। कवि ने उसका निम्न प्रकार वर्णन किया है—कस्तूरी भी राग-वर्द्धक होती है। कस्तूरी खाई भी जाती है और लगाई भी जाती है। यहाँ नारियों ने कस्तूरी के टेढ़े-मेढ़े तिलक अपने मस्तिष्क पर लगाए हैं, जिन्हें देखकर वीर भी चलायमान हो जाते हैं। नारियों ने उत्तम वस्त्र धारण किए हैं। वे वस्त्र ही ध्वजा का कार्य कर रहे हैं। बिना ध्वजा के कोई भी कार्य नहीं होता। युद्ध के कार्य में तो ध्वजा प्रधान है। इसलिए जब ध्वजा फहराती है, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो लड़ाई में विजय हो रही हो।

उन नारियोंने कानोंमें विशेष रूप से कुण्डल बाँधे, मानों कामदेव ने मूढ़ जनों को बाँधा हो। मूढ़ जन मोहित होकर स्वयं भी वहाँ बँध जाते हैं और फिर उस स्थान से नहीं हटते। उन कुण्डलों का ऐसा अपूर्व तेज था। उनके दाँत बिजली के समान चमकते थे। उस बिजली

के प्रकाश में कौन-कौन से वीर नहीं डूब गए? कायर तो डूबते ही हैं, शक्तिशाली पुरुष भी चकाचौंधमें आ जाते हैं। ऋतुराज वसन्त नारियों के शरीर पर कामका ऐसा विशेष प्रभाव प्रकट कर देता है, जिससे वीर पुरुष भी निस्तेज हो जाते हैं।

जिन्ह सिहिण गिरिवर रोम वण धण नख सु असिवर करि ठए
इनु मग्गि चल्लत समर तसकर कइहु नर कित्तिय हए।
वज्जंत घणरव खिन्ह नूपुर काछि कुसुम वणाइयं।
गावंति गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं।।४०।।

अर्थ—उन तरुणी नारियोंके स्तनही श्रेष्ठ-पर्वत हैं तथा उनकी रोमावलि सघन वन के समान है एवं नख ही उत्तम तलवार के रूप में स्थित है : ऐसे विषय-मार्गमें स्मर (कामदेव-मन्मथ) नामके चोर भी घूमते रहते हैं। उन्होंने मार्ग मे चलने वाले न जाने कितने लोगोंको मार डाला है। उन (नारियों) के नुपूरों के शब्द ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे यम के घन शब्द ही ध्वनित हो रहे हों। उन तरुणियों ने चुन-चुन कर सुन्दर पुष्पमालाएँ बनाई हैं। वे तरुणियाँ गीत गातीं और वीणा बजाती हैं, इस प्रकार वसंत ऋतुराज (उछलकर) आ गया।

व्याख्या—कवियोंने राग विषयक जिन काव्योंकी रचनाकी है, उनमें नारियोंके अंगों का वर्णन इसी प्रकार किया गया है। उनके सभी शारीरिक अंग कामोद्दीपक हैं। यह भागों का मार्ग अतिविषम मार्ग है। उस मार्ग में स्तनरूपी उच्च पर्वत हैं, पर्वतों के तल भाग में महान् भयंकर वन हैं। इस मार्ग में जो भी प्रवेश करते हैं, वे भोगासक्त हो जाते हैं। वहाँ पर घूमने वाले चोर उन कामी पुरुषोंका बुद्धि रूपी धन छीनकर मार डालते हैं अथवा वे कामीपुरुष भोगासक्ति से घायल हो जाते हैं या कामदेव द्वारा फँसा दिए जाते हैं। वे शरीर रूप विषय-मार्ग के जघन छिद्रों में पड़े रहते हैं, जहाँ से पार हो पाना अत्यन्त कठिन है। वहाँ इतने जोर से बाजे बजते हैं कि वे "नर" बुद्धिमान होते हुए भी उपदेशको नहीं सुन सकते। कविने "नर" शब्द का उल्लेख चतुर, विवेकी पुरुषोंके लिए किया है कि वे भी हीन, नीच कामी पुरुष बनकर अपने उत्कृष्ट जीवन को व्यर्थ ही खो देते हैं। यह मैथुन ही संसार मे छोटे से लेकर बड़े जीवों (तिर्यंच, मनुष्य) सबके हृदय में प्रविष्ट है। उसी राग भाव का स्थायी भाव वसन्त ऋतुराज है।

जिन्ह राग कटि बद्धिय पटंवर जिरह उरि कंचुय कसे

हाकंति हसंतिक कुकंति कुरलति मुछति भडलहरी विसे ।
जे विकट बुद्धिहि हरहिं परचिंतु चरित-भेद न पाइयं ।
गावंति गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।।४१।।

अर्थ—उन तरुणी महिलाओंने रागके स्थल (आनन्दके स्थान) कटिभागको रेशमी वस्त्रोंसे बाँधा अर्थात् वे प्रेमयुद्धके लिए कटिबद्ध हो गई हैं । उन्होंने अपने हृदयको जिरह (कवच) रूप कंचुकी (चोली) से कसा (जिससे वे किसीके प्रेम बाणसे घायल न हो सकें) है । वे नारियाँ उस समय युद्धकी तरंगोंके मध्य भटों (वीरों) को युद्ध के लिए बुलाती हैं । वीरों पर हँसती (तू कायर) हैं, जोर से कूकती हैं, कुरलती हैं, दौड़ती हैं, जिससे भट (वीर) मूर्च्छित हो जाते हैं । वे अपनी कपट बुद्धिके द्वारा दूसरों के चित्त का हरण कर लेती हैं । कोई भी उनके चरित्र-भेदको नहीं जान पाता । इस प्रकार वसन्त के आगमन पर ये युवतियाँ विजयके गीत गाती और वीणा बजाती हैं ।

व्याख्या—यहाँ पर कविने नारियोंकी शरीर-व्यवस्था से युद्ध की कुशलताका वर्णन किया है । उन्होंने युद्धका सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है । नारियाँ वसन्त ऋतु की सेना हैं । वीर सैनिक पहले अपने शरीरकी रक्षा का उपाय करते हैं, जिससे युद्ध करते समय उनके शरीरको कोई आघात न पहुँचे । वे अपने बलका ऐसा प्रसार करते हैं कि शत्रुसेना उनके सम्मुख न ठहर सके । ऐसी व्यवस्था प्रकृति द्वारा प्रदत्त है । यहाँ नारी रूपी सेना ने अपने शरीर की सुरक्षा के लिए पूरी तैयारी कर ली है । उनके कटाक्ष ही तीक्ष्ण बाण हैं । केशपाश बन्धन हैं । चोली का पहनना, जिरह कवच है । कटिबन्धन बड़ा बन्धन है, जो भी पुरुष उन पर दृष्टि डालता है, बन्धन में बँध जाता है । उनके नूपुरों की ध्वनि युद्धके नगाड़े हैं । उनके बजते ही कोई भी पुरुष खड़ा नहीं रह पाता। उन नारियोंकी शक्तिके सामने सभी वीर पराजित हो जाते हैं ।

कविने शरीरकी स्वाभाविक रचना द्वारा राग-युद्ध का चित्रण किया है तथा शृंगार-रस की अपूर्व महिमाका मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है।

देखंत दरसणु जिन्ह केरउ रूपु पहिले नासए
तिन्ह साथि परसु करतं खिणमहि तेउ तणहु पणासए ।
मेहुणु करंतहं आउ छीजइ कहहु किनि सुखु पाइयं ।
गावंति गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं ।।४२।।

अर्थ—जिन कामिनी तरुणी महिलाओंके सौन्दर्य के दर्शन मात्र से

वीरों का रस पहले ही सुख जाता है, जिनका स्पर्श करने मात्र से पुरुषोंके शरीरका तेज नष्ट हो जाता है तथा उनके साथ मैथुन से आयु भी क्षीण हो जाती है, पुनः कहो कि इन नारियों से किन लोगों को सुख की प्राप्ति हुई है? ऐसी (विशिष्ट) महिलाएँ गीत गातीं और वीणा बजाती है। ऐसी तरुणियोंके साथ वसन्त ऋतुराज आकर उपस्थित हो गया है।

व्याख्या—कविने कामिनी और कामी पुरुषोंकी स्वाभाविक दशाका सुन्दर वर्णन किया है। कामके पाँच बाण होते हैं—दर्शन, मोहन, चिन्तन, स्पर्शन और मैथुन। ये नारियोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। जब वसंत ऋतु आती है तब सभी नर-नारियोंके शरीरमें ऐसी कान्ति आ जाती है, जिन्हें देखकर वे परस्पर में मुग्ध हो जाते हैं।

दर्शन नामक वाण अर्थात् वक्र अपांगवीक्षणोंसे नारियाँ पुरुष की अभिलाषिणी हो जाती हैं और पुरुष नारियों के। फिर दर्शनसे घायल अर्थात् आहत होकर सभी अपना रूप (कर्त्तव्य) भूल जाते हैं। उनके चित्तका ऐसा मोहन और वशीकरण होता है कि बड़े-बड़े शक्तिशाली राजा तक नष्ट हो जाते हैं। शरीरमें काम-ज्वर फैल जाता है। हृदय का ऐसा वशीकरण हो जाता है कि वही सुन्दरी उनके मन में चिन्तन में आती है। दूसरी बात अच्छी ही नहीं लगती। उससे संयोग न होने पर श्वासोच्छ्वास लेते हैं। खाने-पीने एवं निद्राका कार्य भी छूट जाता है। अन्तमें मरण कर बैठते हैं और यदि कहीं संयोग मिल गया तो उससे उसका पुरुषत्व रूप आत्मवीर्य तेज नष्ट हो जाता है। तेजके नष्ट हो जाने पर फिर वह मैथुनों में प्रयुक्त हो जाता है। उन भोगों में अनुरक्त होकर वह अपनी अमूल्य आयु को क्षय कर देता है। प्राण देकर मरण को प्राप्त हो जाता है। नारियोंके इन पंचबाणों से संसारमें और पुरुष पराजित हो जाते हैं। यहाँ मोह राजा के युद्ध वर्णन में कवि ने सर्वप्रथम इन्हीं वीरांगनाओं को प्रस्तुत किया है। यथा—

मत्तेभकुम्भदलने भुवि संति शूराः केचित्प्रचण्डमृगराज वधेऽपिऽदक्षाः।
नूनं ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य कंदर्पदर्पदलने विरला : मनुष्या :।।

जे दव्वु देखत चित्तु रंजहिं सीलु सत्तु गंवावहिं।
जे चहुंगति महिं अनंत जम लगु बहुत दुःख सहावहिं।
चिंति अवरु चिंतहिं अवरु जंपहिं अवरु जगु पतियाइयं
गावंत गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं।।४३।।

अर्थ—जो नारियाँ कामी होती हैं, वे पुरुष के पास द्रव्यको देखकर चित्त में अत्यधिक प्रसन्न होती हैं, पुरुष भी उनपर आसक्त होकर अपने शील और सत्यको गँवा बैठते हैं। अपने जन्म-मरण धारण करते हुए अन्तकाल तक अनेक दुःखों को सहते हैं। वे अपने (वेश्या रूपी तरुणी नारियाँ) मन मे अन्य पुरुष का विचार करती हैं, अन्य पुरुषसे वार्त्ता करती हैं तथा संसार मे अन्य पुरुष का विश्वास करती हैं। वे नारियाँ वसन्त के आगमन पर (प्रसन्न होकर) गीत गाती और वीणा बजाती हैं।

व्याख्या—इस छंदमें कविने नारियोंके मायाचारी गुण का वर्णन किया है। प्रायः वेश्या नारियाँ अपने हाव-भाव दिखाकर पुरुषोंको अपने जाल में फँसा लेती हैं। वे रागकी वंशी धनी पुरुषोंके मन में उत्पन्न कर देती हैं। बड़े-बड़े शील और सत्यके धनी भी उनके कटाक्ष-बाणों से घायल हो जाते हैं और उनके दास बनकर निर्धन बन जाते हैं। उस शील को गँवाने का यह परिणाम होता है कि वे अनन्तकालतक कुयोनियोंमे जन्म-मरण धारण करके दुख सहते-रहते हैं।

उन नारियोमें मायाचारकी प्रवृत्ति स्वभावतः होती है। वे मनमे कुछ, वचनमें कुछ तथा ऊपर से शरीरकी और ही चेष्टाएँ प्रदर्शित करती हैं। इनकी इस मायामें बड़े-बड़े साधुजन भी मोहित हो जाते हैं। जैसे कि माघनंदी मुनिकी कथा मिलती है। वे कुम्हारकी षोडशी कन्या पर आसक्त होकर साधु पद छोड़कर उसके साथ गृहस्थ बन गए थे। गोम्मटसार जीवकांडमें ऐसी गाथा आई है, जिसमें स्त्रीका स्वरूप निर्दिष्ट है—

"छादयदि संग दोसे परंप्पिदोसेणछादयदि। जीवकाण्ड:
यशस्तिलकचम्पू, आत्मानुशासन, भगवती आराधना, पद्मनंदीपंच विंशतिका, सुभाषितरत्नसंदोह आदि अनेक ग्रन्थोंमें इसका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

वस्तु[1] छन्द :

तरुणि पाइकु दंभु मंतीसु
मिथ्यात गय गुडिउ विसन सत्त हय तेउ सज्जिउ।
सण्णाहु कुसीलु तनि पापु कुसत्थु नीसाणु सज्जिउ।
छलु धरिउ अर्धमादु सिरि चंवर कसाय वुलंतु।
इम रतिपति संबूहिकरि चलिउ गहिरु गज्जंतु ।।४४।।

अर्थ—तरुणी नारियाँ उस मोह राजकी पैदल सेना थीं तथा दम्भ

१. ख. इस छंद का नाम 'रड' दिया है।

(घमण्ड) उसका समर्थ मन्त्री था । वह मिथ्यात्व रूपी हाथी पर आरूढ़ हुआ । उसके सप्तव्यसन रूपी तेज घोड़े थे । मोह राजाने (अपने वक्ष पर) कुशील नामक सण्णाह (कवच) धारण किया कुशास्त्र पाप रूपी बाजे बजने लगे । कुलको अभिमानु (छत्र) के रूपमें सिर पर धारण किया । कषाय रूपी चंवर ढुराए जाने लगे । इस प्रकार रतिका पति कामदेव व्यूह बनाकर गम्भीर (दिशाओंको बधिर करने वाली) गर्जना करता हुआ पुण्यपुरीकी ओर चढ़ा ।

व्याख्या—कविने यहाँ युद्धका रूपक प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार कोई भी राजा युद्ध करते समय अनेक प्रकारके शस्त्रोंको धारण करता है, कवच धारण करता है तथा साम, दाम, दण्ड और भेदनीतिसे काम लेता है, कभी-कभी वह छल-बल से भी काम लेता है । उसी प्रकार यहाँ भी मोहराजाके छल नामक मंत्री का उल्लेख किया गया है ।

मोहराजाने अपने मिथ्यात्व प्रमाद, कषाय और योग अस्त्रोंके द्वारा सभी चेतन आत्माओ को अनादिकाल से अपने वशमें कर रखा है । अपने आत्मा के ज्ञानरूपी धन को लूट लिया है और मोहरूपी मदिरा पिलाकर विषयोंके शरीर को मोहित कर लिया है, जिसके कारण उनमें ऐसी शक्ति नहीं रह गई है कि वे होशमें आकर अपने स्वरूप को जानकर, लड़ सकें । जब यह आत्मा काललब्धि पाकर, विवेकके द्वारा सावधान होकर मिथ्यात्वादि बंधके कारणों पर प्रहार करके, संवर-निर्जराको प्राप्त करता है तभी अपनी स्वतंत्रताको प्राप्त कर पाता है । यह युद्ध बसन्त ऋतुमें प्रारम्भ हुआ। संसार में यही समय लड़ाई के लिए उपयुक्त माना गया है ।

दुस्सह मदनराज का पराक्रम

चड्डिउ गहिरु गज्जंतु घोरि मानइ न संक ओरि
सुभटु आपणु जोरि अतुल बले ।
तिणि कुसुम कोवंड लिय भमर पणच किय
देखत तरुणि तिय कि किं न छले ।
सजि अणीय कुंत कृपाण संधिय पंचउ बाण
फेरिय जगति आण मंडिवि रणो ।
आयो आयो रे मदन राइ दुसहु लग्गउ धाइ
चलिय सुर पलाइ गहिवि तिणो ।।४५।।

अर्थ—वह मदन राजा घोर गम्भीर गर्जना करता हुआ (अपने लिए) किसी ओरसे शंका न मानता हुआ आगे बढ़ा । उसने अपने अतुलबली

सभी सुभटोंको इकट्ठा किया । उन योद्धाओंने पुष्परूपी धनुष (हाथों में) लिए और उनपर भ्रमर रूपी पणच (डोरी) चढ़ाई । उनपर तरुणी स्त्रियों के दृष्टिबाण चढ़ाए। उनको देखने मात्र से कौन-कौन नहीं छले गए? इसप्रकार उसकी अणीक (सेना) ने कुंत, कृपाण और पांच बाण (दर्शन, मोहनीय, वशीकरण, चिन्तन, भोजन, विस्मरण) अपने धनुष पर संधान किए । उस (मोहराजा) ने जगत (तीनो लोकों) में अपनी आज्ञा फेरी (भेजी) सबको युद्ध में आनेके लिए संदेश दिया कि मैंने रण मांड (युद्ध प्रारम्भ) दिया है । सब देवों में खलबली मच गई कि दुस्सहमदन राजा आया है। वह आया, दौड़कर कहने लगा-लगो-लगो (शामिल होओ) । तब सब देव भी अपना-अपना तृण (सामान) लेकर दौड़ पड़े ।

व्याख्या—जब युद्धकी घोषणा होती है और बाजे बजने लगते हैं सभी वीरोंके हृदय में लड़ाईका आवेश जागृत होता है। नारियों की विशेष सेनासे सुसज्जित होकर युद्ध करना ही राजा मोह की विशेषता है। इस सेना के दृष्टिबाण से बड़े-बड़े विवेकी वीर आहत हो जाते हैं । चेतनके विवेक रूपी राजा को फँसाने में यह नारी सेना पूरी तरह समर्थ है । इस नारी सेनाके साथ यदि दूसरे कारण भी मिल जाए तो सभी वीर पराजित होकर मोहराजाके कैदी बन जाते हैं । संसारमें युद्धकी ऐसी दशा प्रतिसमय हो रही है । कोई विरले विवेकी वीर सम्यक्त्व रूपीगज पर सवार होकर, पंचव्रत रूपी बाण धारण कर शान्ति से बैठे अपनी स्वतंत्रताको प्राप्त करना चाहते हैं । यह मोहराजाको रास नहीं आया और उसने युद्धकी भेरी बजवादी। कविने इसी युद्धका वर्णन वीररस के परिवेश में किया है ।

जिनि मलिउ[1] संकर मानु छोडिउ अंतरध्यानु
गौरी संगि हित प्राणु इय नडियं ।
जिनि तपहु विरंचि टालि घालियउ माया जालि
मोहिनि रूपु निहालि फंदि पडियं ।
हरिलिधउ मदनि कसि सोलह सहास वसि
रहिउ गूजरि रसि रयणि दिणो ।
आयौ आयौ रे मदनराइ दुसहु लग्गउ धराइ
चलिय सुर पलाइ गहिवि तिणो ।।४६।।

अर्थ—उस मदन ने शिवजी का ऐसा मान-मर्दन किया कि उनको भी अन्तरंगमें ध्यानसे वंचित कर दिया (वे भी अपने स्वरूपमें नहीं ठहर

१. ग. मल्यउ

सके) वे भी गौरीके साथ रमने लगे । हित भूल गए, प्राण (सुध बुध) भूल गए । उस मदन ने ब्रह्माजी को भी तपसे टालकर इन भोगों के मायाजालमें डालकर, मोहिनी (अप्सराओं) के रूप को दिखाकर, रागके फंदेमें पटक दिया। हरि (कृष्ण) को भी मदनने इसप्रकार वशमें किया कि वे भी सोलह हजार वर्षतक रात दिन गूजरी (गोपियों) के रसमें रत रहें। ऐसे दुस्सह मदनराजाके साथ आया रे आया कहकर सभी देवताभी अपना तृण (सम्मान) लेकर दूरसे चले आए ।

व्याख्या—यहाँ पर मदनका वर्णन छत्र चमरधारी चक्रवर्ती के सदृश किया गया है। उसने संसारमें अपना ऐसा सार्वभौम राज्य बनाया है कि आजतक उसके विरुद्ध को अंगली नहीं उठा सका, जिसने भी अँगुली उठाई उन सबको उसने भ्रष्ट कर दिया । साधु-सन्यासी भी अपनी तपस्यामे स्थिर नहीं रह सके । वीर सुभट अपनी वीरता को त्यागकर रागी बन गए, जो देव तपस्वी बनें उन्हे भी मदन ने पतित बना दिया । सारांश यह है कि सभी पंचेन्द्रिय जीव भोगों के अधीन होकर अपने कर्तव्य को भूल गए । संसारमें नारियोंका निर्माण इसीलिए किया गया है कि वे स्वयं राग में लीन रहें और अन्य सभी जीवों को लीन किए रहें । मदन राजा इन्हीं के बल पर चक्रवर्ती बना हुआ है ।

तात्पर्य यह है कि सभी जीवों को आत्मा में मैथुन संज्ञा उत्पन्न हो रही है, जिससे वे कार्य-अकार्य को भूलकर जन्म-मरण के दुःख उठा रहे हैं ।

जमदगनि जु विश्वामित्तु टालिउ तिन्हन्ह चित्तु
छोडि तपु गेहु कितु अपु खोइयं ।
इंद विषय अधिक व्यापु अहल्या टालिउ आपु
गोतमि दियो सरापु भग उइयं ।
जिनि लंकपतिहि डिगाइ आणिय सीय चुराइ
घालिय रावणु धाइ कहइ जिणो ।
आयौ आयौ रे मदनराइ दुसहु लग्गउ धाइ
चलिय सुर पलाइ गहिवि तिणो ।।४७।।

अर्थ—जामदग्नि तथा विश्वामित्र ऋषिके चित्त को भी (मदन ने) चलायमान कर दिया । तपस्या को छोड़कर उन महान् ऋषियों ने गृहस्थावस्था को धारण किया और अपने को भोगों में खो दिया । इसी प्रकार जब इंद्रके मनमें भी अधिक विषयों की अभिलाषा व्याप्त हुई तब वह

अहिल्या (गुरु पत्नी के पास अपना कर्त्तव्य भूलकर) चला गया। अहिल्या भी (रागके वास) अपने को भूल गई। तब गौतम ऋषिने (दोनों) को शाप दे दिया। (शाप देने से) इंद्र के शरीरमें भगों का उदय हो गया।

उस मदनने लंकापति रावण को भी डिगा दिया, जिससे उसे सीता (पराई नारी) को चुराकर लाना पड़ा (सीता पर रावण मोहित हो गया) रावण दौड़कर छलकर, सीताको बुलाकर ले आया और उसे अपने घरमें रख लिया। ऐसे मदनके वशमें देवता भी अपना-अपना सामान लेकर, भागकर चले आए।

व्याख्या—मदन का अचिन्त्य प्रभाव मनुष्यों, देवों एवं तिर्यंचों पर पूर्णरूप से व्याप्त है। जब काम (मदन) का वेग किसी के मनपर चढ़ जाता है तब वह अपने को भूल जाता है और तप छोड़ देता है। वह राज्यशासन की उपेक्षा करके अपनी विषयाभिलाषाकी पूर्तिमें लग जाता है और परस्त्रियो का भोग करने वाला व्यभिचारी बन जाता है। छलकर परनारियों को चुरा लाता है और चोर बन जाता है।

"विषयासक्तचित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं न कुलं नाभिजात्य वाक्।।"

इसी प्रकार नारियाँ भी इस काम के वशमें होकर अपने धर्म कर्म एवं पति को भूल जाती हैं और परपुरुष में आसक्त हो जाती हैं। सभी पुरुष-नारी मदनराजा के वशीभूत हो रहे हैं। कामदेवकी महिमा अपूर्व है।

जिनि संन्यासी जतीय सार जंगम सु जटाधार
जोगीय मंडित छार घालिय रसे।
जिनि भरड भगवै वेस त्रिदंडी लुंचित केस
काली पोस दरवेस किं किं न छले।
जक्ख रक्खस गंधव्व गुरु सुभट सबल सुर
पसुव पंखिय थर कित्तिय थुणो।
आयौ आयौ रे मदन राइ दुसहु लग्गउ धाइ
चलिय सुर पलाइ गहिवि तिणो।।४८।।

अर्थ—उस मदनराजा ने बड़े-बड़े संन्यासी, उत्तम यति (तपस्वी साधु) जंग जटाधारी (घूमने-फिरने वाले) योगी महात्मा तथा क्षार (भस्म) से शरीर को मंडित करने वाले वैरागी ऋषियों को तप से छुड़ाकर अपने रस (विषय-सेवन) में डाल दिया उसने भगवाँ (गेरुआ वस्त्र) वेशके धारक

त्रिदंडी साधु तथा केशों का लोच करने वाले मुनि, काली (देवी) के उपासक एवं सर पर खड़े रहने वाले भक्तों को भी छला । उससे कौन-कौन नहीं छला गया?

उसने यक्ष, राक्षस, गंधर्व, गुरु, सबल योद्धा, देवगण तथा पशु-पक्षी आदि को धर (पकड़) कर अपनी स्तुति करने वाला दास बना दिया। (इन सबको अपने वशमें कर लिया) इस प्रकार का (सर्व विजयी) दुस्सह मदनराज यहाँ आया । देवगण उसे आया जानकर, अपना आसन तृण ग्रहणकर दौड़ चले ।

व्याख्या—संसार में मोह को जीतनेवाले अनेक तपस्वी, महात्मा थे, किन्तु मदनराजा ने रम्भा, मेनका आदि अप्सराओं द्वारा उनके अन्तःकरण में राग उत्पन्न कर दिया । तब वे भी मोह के आधीन होकर उसके दास बन गए । इससे सभी हारे हैं । इसके उदय होने पर सभी पुरुष अपना धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ भूल जाते हैं । युद्ध में अपने प्राणों को भी नष्ट कर देते हैं । आत्मानुशासन में कहा गया है—

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः ।
चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित् ।।

मदनका अपर नाम अनंग भी है, इसीकारण यह आत्माके सभी प्रदेशोंमें इस प्रकार प्रवेश कर जाता है, कि यह विषयों से रात-दिन व्याकुल चित्त होकर भटकता रहता है । यही तामसी वृत्ति है । तुलसीदास जी ने भी कहा है—

"**हाले फूले हम फिरत होत हमारो ब्याव ।**
तुलसी गायन जायकें देत काठ में पाँव ।।"

यह राग ही महान बन्धन है । वे तपस्वी भी मोह राजाके बुलाने पर दौड़े चले आए ।

के के जैन के सेवणहार ते तो किये भ्रष्टाचार
भोगिय सुख अपार संसार तणो ।
वड़ देखत जु भए अंध पडिय करम फंद
किए जु कुगति बंध जनम घणो ।
जैसे बंभदत्त चक्कपति कामभोग इरि थिति
गयउ नरकगति सातमें सुणौ ।
आयौ आयौ रे मदनराइ दुसहु लरगउ धाइ
चलिय सुर पलाइ गहिवि तिणो ।।४९।।

अर्थ—(इस मदनराजा ने) जितने-जितने जैन-धर्मके सेवन करने वाले

व्रती साधु थे, उन-उनको भी भ्रष्टाचरणवाला कर दिया । वे भी संसार सम्बन्धी अपार सुख भोगने वाले बन गए । वई (कामिनी नारियों) को देखकर ऐसे अंधे (मुग्ध) हो गए कि कर्मोंके फंदे में पड़ गए । उस कर्मके निमित्त से उन्होंने कुगति का बन्ध किया और घने (अनेक) जन्म धारण किए । जैसे कि ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती था, उसने कामभोगों के द्वारा नरक स्थिति का बन्ध कर, दुख भोगा और सातवें नरकमें जा पहुँचा (वहाँ अभी भी दुःख भोग रहा है)

ऐसा (महाप्रमादी) दुस्सह मदनराजा आया है, आया है, कहकर, देवगण भी अपने तृण (सामान) सहित उसके पीछे दौड़ पड़े ।

व्याख्या—यहाँ कवि ने ब्रह्मदत्त नामक चक्रवर्त्तीका दृष्टान्त दिया है। ब्रह्मदत्तका नाम आगम ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है । अन्य दृष्टान्त चारुदत्त सेठ का है । उसने भी वसन्तसेना वेश्याके वश में होकर अनेक संकटोंको प्राप्त किया । यतिजन भी मोहराजाके वश में होकर संसारके अनेक कष्टोंको सहन करते हैं एवं जन्ममरण के अपार दुःखोंको भोगते हैं । स्पर्शनेन्द्रियों के प्रभाव से स्वतन्त्रताका पात्र हस्ती थी, हस्तिनीके द्वारा गर्त्त में गिराकर परतन्त्र बना दिया जाता है । सभी इन्द्रियों के

"कुरङ्गमातङ्गभृङ्गमीनाः हता पंचभिरेव पंच ।
एकः प्रमादीस कथं न माहन्यते यः सेव्यते पंचभिरेव पंच ।"

यह मोहका चक्र बड़ा जबरदस्त है । इससे कोई नहीं बच सकता ।

जिन कुंडरीक रिसि ताडि लीयउ सुभट पाडि
सिखरहु दियौ राडि तपु तजियं ।
लाए सबल सुसर अंगि रहिरा[१] सियह रगि
विषय विषय संगि सुख भजियं ।
वीर चरण सेवकु नितु इंद्रिय लोलुप चितु
सेणिकु नरय पत्तु सुख न खिणो ।
आयौ आयो रे मदनराइ दुसहु लगाइ धाइ
चलिय सुर पलाइ गहिवि तिणो ।।५०।।

अर्थ—उसने (मदन राजा ने) पुण्डरीक ऋषि जैसे अच्छे वीरको भी अपने कटाक्ष शस्त्रोंसे प्रताड़न देकर पटक दिया । उनके सिरके ऊपर ऐसी राड (विषयों की लड़ाई) लगा दी कि वे तपको छोड़कर भोगी बन गए (सब वीरता गँवा बैठे) । सबल रागके स्वर उन ऋषिके अंगमें आ

१. क. रहिउ

गए । फिर नारी के शरीर में राग के ही रंग से मनको रंगकर रहने लगे और विषय-विषयों में ही सुख को भोगने लगे (अपने आत्मिक सुख को त्याग दिया)

वीर प्रभुके चरणोंका नित्य सेवक राजा श्रेणिक (मगध सम्राट) इंद्रिय-विषयोंका लोलुपी चित्रवाला नरक में जा पहुँचा, जहाँ ए., क्षण का भी सुख नहीं है । इस प्रकार दुस्सह मदन राजा युद्ध-स्थान में आ गया, आ गया कहते हुए देवगण भी सामान सहित दौड़कर चल पड़े ।

व्याख्या—मनोविज्ञान कहता है कि जब मनमें कोई प्रकार की इच्छा प्रविष्ट हो जाती है, तो वह जब तक पूर्ण नहीं हो जाती, तब तक काँटे की तरह कष्ट पहुँचाती रहती है, उस दुःखको दूर करनेके लिए मनुष्य उसी प्रकारके उद्योगमें लगा रहता है, जिससे उसका प्रयोजन सिद्ध हो जाय । यह आत्मा अनादिकाल से विकारोंका स्थान बना हुआ है । विकारोंसे विकार ही विशेष रूप से बढ़ते हैं । इन आशा रूपी विकारोंकी कोई सीमा नहीं है । निवृत्तिमार्गके द्वारा ही इन आशा समूहोंकी जड़ नष्ट की जा सकती है । बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियों ने वस्तु-स्वरूपको जानकर निवृत्तिमार्ग को ग्रहण किया, फिर भी विकारों की जड़ ऐसी छिपी बैठी रही कि उसने पुनः उन्हें विषय-कषायोंके प्रवृत्ति मार्गमें लाकर पटक दिया। यह अभिलाषा ही विवेक बुद्धिको बिगाड़ती है । यह मदन का मद (नशा) बड़ा ही तीव्र है ।

एकि अबुहु संजम रूपि छलिय मदनभूपि
दीनिय संसारकूपि दंसण मठे ।
नित करहिं तित परपंचु अनेक जियह वंचु
तजि मणि लेहि कंचु आपण हठे ।
ते तो रहिय पंच आरंभि सकहिं न व्रत थंभि
उदरु भरहिं दंभि रंजिवि जणो
आयौ आयो रे मदनराइ दुसहु लग्गइ धाइ
थलिय सुरपलाइ गहिवि सिणो ।।५१।।

अर्थ—मदन राजाने एक अबुद्ध (अज्ञानी) संयमरूपी साधुको छलकर संसार रूपी कूप के दर्शन मठ में भेज दिया । वहाँ वह साधु नित्य प्रपंच करने लगा । उसके प्रभावमें अनेक जीव ठगे गए । उसने अपने हठ से उन सभीके कच्चे मनको अपने मठ में खींच लिया । वे सब पंचइंद्रियों के आरम्भ (गृहस्थीपने) में ऐसे फँसे कि फिर व्रतों को स्थिर नहीं रख सके । मनुष्यों का मनोरंजन कर असाधु बनकर (छल से) पेट भरने लगे।

ऐसा प्रबल दुस्सह मदन राजा आया है, आया है कहकर देवगणभी तृण ग्रहणकर मदन राजाके साथ दौड़ चले ।

व्याख्या—उपर्युक्त पंक्तियोंमें कविने एक रूपक उपस्थित किया है। पाँच इन्द्रियके भावोंको मदनराजा माना है । मुग्धावस्थाको [illegible] बतलाया है । संसारको कूप की उपमा दी है । जहाँ से निकलनेका मार्ग नहीं है । भगवान् ऋषभदेव के पौत्र मरीचि चार हजार राजाओंके साथ दीक्षित हो गए थे परन्तु साधुचर्या का ज्ञान नहीं था, इस अज्ञानता के कारण उन्होंने अपना दर्शन मठ बनाया अर्थात् एक नवीन मत चलाया। सांख्यादि मतोंको षड्दर्शन कहते हैं तथा दर्शन का अर्थ श्रद्धान भी है। अत: ऊपर से देवशास्त्रगुरु का श्रद्धान अर्थ बतलाया साथ ही हिंसादि पापकर्मों से उदरपोषण करनेको प्रेरित किया, गृहस्थ रहकर भी साधु जीवन व्यतीत करनेका उपदेश दिया । मरीचि के प्रपंचमय उपदेश से अनेक भोली बुद्धिवाले जीव ठगे गए । सभी उसके दर्शन रूपी मठ में आ गए। वहाँ वे सभी इन्द्रियविषयों में फँसकर अपने व्रतको नहीं सम्हाल सके । मदनराजाने सभीको इस प्रकारके संसार-कूप में पहुँचा दिया, जहाँ से वे अपना उद्धार नहीं कर सके । इस संसार में चतुर्दिक विषयों की चकाचौंध ही फैल रही है ।

षट्पद छन्द :

जित्त सुभट बलवंड जिनिहि गज सिंह नवाइय
जित्त दइत्त परचंड लोय जिनि कुमगहि लाइय
जित्त देव बलिभद्द धारि बहु रूप दिखालिय
जित्त दुट्ठ तिकंच घालि लहु वणखंड जालिय
अस्सपति गजप्पति नरप्पति भूपतिय भूरहिय भरिय
ते छलिय अछल टालिय अटल मयण नृपति परपंचु करि ।।५२।।

अर्थ—मनुष्यगतिमें जितने सुभट (वीर योद्धा) बलवंड (प्रचण्ड शक्ति) वाले थे, जिन्होंने अपने बल से वन के महान् राजा गज, और सिंहों को झुका दिया था । अपने अधीन कर लिया था, (मदन राजाने) उन वीरोंको भी मोहिनी रूप से निर्बल बना दिया ।

लोकमें जितने प्रचण्ड दैत्य दानव थे, वे भी (मदन के द्वारा) पथ-भ्रष्ट हो गए । (देवियों के मोहित रूप से मोहित कर) उन्हें भी व्यसन-कुमार्ग में लगा दिया ।

मनुष्यगति में बलभद्र थे (उनमें उत्कृष्ट भ्रातृप्रेम था) उसी मोह के

कारण वे देवपर्याय में उत्पन्न हुए । वहाँ से बहुरूप (विक्रिया रूप) बनाकर वे मनुष्यलोक में आए और रामलीला दिखाकर लोगोंको भोग में आसक्त कर दिया । तिर्यंचगति में जितने दुष्ट तिर्यंच जीव थे उन्हें शीघ्र वनखंडमें डालकर जला (कामग्नि से जला) दिया । इस प्रकार अश्वपति (राजा) गजपति (राजा) नरपति महाराज भूपति (जमींदार) तथा भूरहित (भूमिहीन जो भी वीर थे) वे सब राजा मदन के मोह-रस से ऐसे छले गए कि अपना अछल (साधु स्वभाव) भूल गए । अटल प्रणवीरों को मदनने प्रपंच करके न्यामार्ग से टाल (पतित) दिया ।

व्याख्या— **"जा रस रावण के घर छोना रह्यों न भोना ।**
नाही रस लोगन खिलौना कर राख्यो है ।।"

इस उक्तिके अनुसार जो लोग शृंगार रस के रसिक बन जाते हैं । वे सब मानवीय कर्तव्य भूलकर इस रस की अग्नि में अपने प्राणों की आहुति दे डालते है । चारों गतियों में कहीं भी सुख नहीं है, जो सुख दिखलाई पड़ता है, वह भी दुख ही है, ऐसा आचार्यों ने कहा है—

"सपरं बाधा सहिदं विच्छिण्णं बंध कारणं विसमं ।
जं इंदियेहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमो सहा ।।
प्रवचनसार पुरुषाः पुरुषेष्वेव यदनिष्ट प्रयोजनः ।
अत्यारुढस्य तत्सर्वं रागस्येव विचेष्टितम् ।।"(तत्वार्थवार्तिक)

वही विवेकी साधु है, जिसने राग पर विजय प्राप्त करली है । वसन्त ऋतुराजके आने पर मोहराजाकी घोषणासे सभी युद्ध के लिये उद्यत हो गए । विवेक राजाको निवृत्तिमार्ग से प्रवृत्तिमार्ग में लाने हेतु सभी चल पड़े, जिससे कि आगे मोक्षमार्ग का कोई नाम ही न सुने और न वैराग्य की परिणति करें ।

वस्तु[1] छन्द :

जिसिए सहु कियउ मनि हरखु
पुन्नपुर[2] दिसि चलिउ तब विवेकि आवंत सुणियउ ।
चित्तंतरि चिंतविउ करिवि मंतु एरिसउ मुणियउ ।
धम्मपुरि श्री आदि जिनु सुणियइ परगट नाउं
तत्थ गए हउं उव्वरउं मदन गंवावउं ठाउं ।।५३।।

अर्थ—मदन राजा के जितने सेवक गण थे, सभी मनमें हर्षित हुए ।

---

१. ख. रउ छन्द
२. ग. पुष्पपुरि

सभी सैनिक पुण्यपुरकी दिशा में चले । तब विवेक राजाने (मदनको) आते हुए सुना । उस राजाने अपने चित्त के मध्य ऐसा विचार किया एवं मंत्रियोंसे पूछकर मंत्रणा की कि धर्मपुरी में श्री आदि जिनेश्वर प्रसिद्ध नाम वाले सुने जाते हैं, उन्हींके पास जाने पर मैं उबरूँगा (बचूँगा) और मदन के स्थान (पापपुर) को मिटा दूँगा ।

व्याख्या—जैनधर्ममें भाव तीन प्रकारके होते हैं—शुद्ध, शुभ और अशुभ । मदनराजाके रहने का स्थान पापपुरी है । क्योंकि यह एक कुशील पाप है । इस पाप में सभी पापों का निवास है । लोक में इसे व्यभिचार, मैथुन, रमण, भोग आदि नामों से पुकारते इसके तीव्राभिनिवेश में मनुष्य ऐसा अन्धा हो जाता है कि अगम्यागमन करता है । तिर्यंचिनी, तपस्विनी कन्या आदि का भी भोग करता है । हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह आदि पाप होने से यही आत्मा पापपुरी बन जाती है । पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में योनि को तिल नाली की उपमा दी है । व्यक्ति विशेष इन सभी पापोंका एकदेश अथवा सर्वदेश त्याग करते हैं, उनकी आत्मा पुण्यपुरी कहलाती है । अणुव्रत, महाव्रत निर्वृत्ति-मार्ग में प्रधान होते हुए भी प्रवृत्ति में ही निष्ठ है । इनसे साक्षात् पुण्य का आश्रव होने से आत्मा पुण्यपुरी है । इससे भी ऊपर श्रेणी में आरूढ़ शुक्लध्यान विभूषित आत्मा शुद्धोपयोगी होने से मोह का नाश कर देने से धर्मपुरी कहलाती है । उस धर्मपुरी आत्मा में मोह तथा मदनराजा के लिये स्थान ही नहीं है । सभी प्रकार के विकारों से रहित शुभ, अशुभ से ऊपर शुद्ध उपयोग साक्षात् मोक्ष-स्वरूप है । वहाँ संवर निर्जरा की प्रधानता है । अनन्त चतुष्टय गुण प्रकट हो चुके हैं या प्रकट होने वाले हैं । ऐसे अनन्तगुणों का अखण्ड पिण्ड आत्मा सदा के लिए धर्मपुरी बन जाता है, जो आत्मा इनकी शरण में जाता है, वह परमात्मा धर्मपुरी बन जाता है । इसलिए राजा विवेक ने पुण्यपुरी से आदि जिनेश्वर की शरण में जाने का विचार किया ।

गाथा छन्द :

इम करन गुज्झमंतो आयउ रिसहेस दूतु सुभध्यानु ।
बिब्बेक वेगि चल्लहु बुल्लायइ देव सरवण्णु ।।५४।।

अर्थ—इसीकारण भगवान् ऋषभेश का शुभध्यान नामक दूत राजा विवेक के पास आया और बोला कि भगवान् सर्वज्ञदेव ने गुप्त मंत्रणा के लिए तुम्हें शीघ्र बुलाया है ।

व्याख्या—"भग" का अर्थ अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मी यश आदि गुण हैं। वे गुण जिनकी आत्मा में प्रकट हो गए हैं, उन्हें भगवान् कहते हैं। ऋषभदेव अर्थात् ऋषभनाथ भगवान प्रथम तीर्थंकर हैं। महाभारत में इनका असाधारण निरूपण किया गया है। जब वे ज्ञानवरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय कर्म से रहित हो गए तब उनकी आत्मा परमात्मा, सर्वज्ञ, अरहन्त परमेष्ठी बन गई।

तीर्थ का अर्थ है घाट। अरहन्त प्रभु सकल अर्थात् शरीर सहित होने से साक्षात् मूर्तधर्मको धारण करते हैं। वह धर्म मुमुक्षु जीवोंको संसार से पार उतारने के लिए तीर्थ का कार्य करता है। अतः प्रभु तीर्थंकर कहे जाते हैं। उस समय पूर्ण ज्ञान प्रकट होने से वही आत्मा सर्वज्ञ कही जाती है।

सर्वज्ञ का लक्षण है—

"यः सर्वाणि चराचराणि विविधं द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूत भावि भवतः सर्वान् सदा सर्वथा॥
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः॥"

शुभध्यान—ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव अपने मंदकषाय से होने वाले उत्तम क्षमादि धर्म सहित शुभभाव रूप होता है। उन शुभ भावों से जो एकाग्रता आती है उसे शुभध्यान कहते हैं। उसके चार भेद हैं—१. आज्ञाविचय २. अपायविचय ३. विपाकविचय एवं ४. संस्थान विचय।

दूत—जो स्वामीके संदेशको स्वामीके शब्दों में अथवा अपने शब्दों में पहुँचाता है, स्वामी के कार्यों को तत्परतासे करता है और कार्य-अकार्य तथा काल-अकालको अच्छीतरह जानता है, साथ ही बुद्धिमान भी होता है, उसे दूत कहते हैं।

विवेक—विवेक का अर्थ है भेद विज्ञान। जब स्वपर का रहस्य समझ में आ जाता है, तो व्यक्ति आत्म-कल्याण में प्रवृत्त हो जाता है।

दोहा छन्द :

चलिउ विवेकु आनंदकरि धम्मपुरि सु पहुत्तु।
परणाई संजम-सिरी सुक्खु भोगवइ बहुत्तु॥५५॥

अर्थ—विवेक ने आनन्दपूर्वक प्रस्थान किया और धर्मपुरी (प्रभु ऋषभेश) के पास जा पहुँचा। विवेक का विवाह (प्रभुने) संजमश्री नामक कन्या से करा दिया। विवेक अपनी पत्नी के साथ बहुत सुख भोगने

(संसार से विरक्त हो आत्मिक सुख भोगने) लगा।

व्याख्या—भगवान् का विवेकको बुलाने का अर्थ है कि सभी जीव स्वयं कल्याण के मार्ग में लगें। कोई भी मोक्ष-पक्ष से विचलित न हो।

पहले विवेक शुभभावना रूपी अपनी अन्तरात्मा में रहता था। उसे जब वहाँ मदनराजा की हवा का धक्का लगा, कि वह अविवेकी बहिरात्मा बन जाए, तब उस भेदविज्ञानी सम्यग्दृष्टि ने शीघ्र ही अपनी अन्तरात्मा में शुभध्यान से मन्त्रणा की शुभध्यान ने उसे बताया—

अशरणमशुभनित्यं दुःखमनात्मानभावसामिभवं।
मोक्षस्य क्षिपरात्मेति ध्यायंतु सामायिके॥

धर्मपुरी पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर उसने तत्काल ही संयम रूपी लक्ष्मी का वरण कर लिया। संयमी बनकर आत्मिक सुखों में रस मग्न हो गया तथा मोह राजाके साथ होने वाले युद्ध में युद्ध का नायक बन गया।

दोहा छन्द :

जब विवेकु नट्ठिउ सुणिउ चितवइ अनंगु अयाणु।
भग्गहं पिट्ठि न धाइयइ पुरुषहं इहु इ पमाणु॥५६॥

अर्थ—जब विवेकके नष्ट (अदृश्य) हो जाने की बात अज्ञानी मदन राजाने सुनी, तब वह विचारने लगा कि भगोड़ों की पीठ पर नहीं दौड़ना चाहिए (पीछा नहीं करना चाहिए) हम जैसे पुरुषोंके लिए यही (महापुरुषोंके) वचन प्रमाण हैं।

व्याख्या—वसन्त ऋतु के समय सभी संसारी जीवों की आत्मा में मोह से उत्पन्न मदनके राग भाव रूपी अंकुरों ने ऐसा स्थान बना लिया कि जो जीव पत्नी सहित थे, वे तो मोही हुए ही और जो मोहरहित थे वे भी कुमति से सम्बन्ध बनाकर मोही बन गए। निर्मोही, संयमहीनों पर तो मदन का शासन चल जाता है परन्तु निर्मोही संयमी अन्तरात्माओं पर मोहका शासन नहीं चल सकता है। इसलिए विवेक संयमी बन गया। कवि ने इसी तथ्य को स्पष्ट किया। है। अतः मदन राजा विवेक के पीछे नहीं पड़ा। उसने यही विचार किया कि जो पीठ दिखलाता है उसका पीछा नहीं करना चाहिए—

यः शास्त्रवृत्तिः समरेरिपुर स्यात् यो कण्टकोकनिजमण्डलस्य।
तत्रैव शस्त्राणि नृपाः क्षिपन्ति नदीनकानीन शुभाशयेसु॥

वस्तु छन्द :

फिरिउ मनमथु जित्ति सुहु देस

नट भाट जय जय करहिं पैसाच गंधव्व गावहिं ।
बहु खिल्लिय दुट्ठ मनि कुजस पटहु गढमहि बजावहि
माया करिउ बधावणउ मोहह रंजिउ चित्तु
सव्वहं इच्छा पुन्निया धरि आयउ जिणि पुत्तु ।।५७।।

अर्थ—(विवेक के अदृश्य हो जाने पर) जितने भी शुभदेश थे, मदनराजा ने वहाँ सर्वत्र भ्रमण किया । उसके सम्मुख नट नृत्य करने लगे, भाटगण जयजयकार करने लगे और पिशाच तथा गंधर्व (विजय के) गीत गाने लगे। दुष्टजन मन में बहुत खिलखिलाने लगे (प्रफुल्लित हुए) अपने गढ़ में कुयश रूपी नगाड़ा बजाने लगे । मायारानीने बधावना (विजय की बधाइयाँ) किया और मोहराजा का चित्त रंजयमान हुआ । जब पुत्र मदन विजय प्राप्तकर घर आ पहुँचा, तो सभी जीवों की इच्छा पूर्ण हुई ।

व्याख्या—यहाँ पर कविने अपना अनुभव प्रकट किया है कि जब पंचेन्द्रिय भोग सम्बन्धी अभिलाष जीवके मन में प्रकट होने लगे उस समय विवेक पूर्वक एवं धैर्यपूर्वक काम लेना चाहिए । उस समय "शरणं सएकः परमात्मा "मानकर अपनी अमोध अन्तरात्मा में संवर का किला बनाना चाहिए जो पतन से उबारने वाला है । यह उपदेश प्रत्येक विवेकी जीवों के लिए हैं ।. इसीलिए भगवान ने विवेक को निकट बुलाकर संयमश्री से उसका सम्बन्ध करा दिया और कहा कि यदि तुमको भोग ही चाहिए है, तो विरति रूपी योगों का आलिंगन करो, जो सुख अविनाशी हैं, उन्हें प्राप्त करो । कवि ने शुद्ध भावनाको भगवान बतलाया है । उन्होंने आगमन के इस अभिप्रायको भी प्रकट किया है कि रिंसा अर्थात् भोगाभिलाषा का प्रतीक रिंशा नहीं है किन्तु वैराग्य भावना है । अतः संसारको जीतने का उपाय अध्यात्म भावना ही है । इस प्रकार अन्तरात्मा में विचरण करने वाला विवेक सच्चा विजेता बन गया । उससे मदन इतना भयभीत हुआ कि उसने अपना आगे प्रयाण किया ही नहीं और कहने लगा कि भगोड़ों के पीछे लगना श्रेष्ठ वीरोंका धर्म नहीं है । बिना युद्ध किए ही मदन वापिस लौट आया । माता माया और पिता ने बड़ा ही काल्पनिक हर्ष मनाया कि मदन ने शत्रु विवेक को भगा दिया । विवेक कुछ भी नहीं कर सका । जैसा कि भक्तामर में कहा गया है—"को विस्मयोत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश दोषैरूपात्तविविधाश्रय जात गर्वैः स्वप्नान्तरेपि न कदाचिद्पीक्षितोसि।।" यही संसार का रागादि स्वरूप है ।

दोहा छन्द :

माइ पिता पांग लग्गिकारि तब मनमथु घरि आइ।
रहसिउ अंगि न माइयइ जीते राणे राइ ।।५८।।

अर्थ—माता पिता के चरणों का स्पर्श कर, तब मन्मथ (मदन) घर गया और रहसिउ (हर्ष) उसके अंगों में नही समाया । और कहा कि "मैंने तो रण में सभी राजा जीत लिए (ऐसा गर्व किया) ।"

व्याख्या—यहाँ कविने माता-पिता के प्रति पुत्र के कर्त्तव्य को प्रकट किया है । यह आर्योंकी प्राचीन संस्कृति रही है कि जब पुत्र परदेश से आता, जाता है अथवा किसी कार्य में सफलता प्राप्त करता है, उस समय माता-पिता के चरणों में नमस्कार करता है । तत्पश्चात् वह अन्य कार्यों को करता है । मदन ने भी अपने माता-पिता के चरणों में नमस्कार किया । तदनन्तर वह अपनी पत्नी रति के पास गया । उस समय वह इतना प्रसन्न था कि उसका आनन्द और हर्ष, हास्य के रूप में बाहर फैल रहा था । यह हर्ष राजा गणों को जीतने के कारण प्रगट हुआ था । माता-पिता ने सिर चूमकर उसे आशीर्वाद दिया ।

यह एक रूपक काव्य है । कवि ने मोह को पिता बतलाया है और कहा है कि सब परिवार इसी का है । इसकी तीन संतानें हैं—१.मदन, २. राग एवं ३. द्वेष । पर को आप मानना मोह कहलाता है । पर में इष्ट कल्पना को राग कहते हैं और पर में अनिष्ट कल्पना द्वेष कहलाती है । माया इनकी माता है । लोक व्यवहार जैसा ही अध्यात्म व्यवहार भी है ।

गाथा छन्द :

ए जिति चित्ति खिल्लिउ आयउ आनंदि घरह जब द्वारे ।
उट्ठु उट्ठु चंदवयणी आरत्तउ वेगि उत्तारि ।।५९।।

अर्थ—(और अपनी पत्नी से कहा) ओ रति चित्तमें प्रफुल्लित हो देख, घर के द्वार पर तेरा पति आनन्द से आ गया है । हे चन्द्रवदनी, उठ, उठ ! वेग से आरती उतार ।

व्याख्या—यह भी आर्य-संस्कृति और कवि परम्परा है कि पतिव्रता नारियाँ अपने वीर पतिको तिलक लगाकर तथा माला पहनाकर युद्ध क्षेत्रके लिए बिदा करती थीं तथा विजय प्राप्त कर वापिस लौटने पर आरती उतारती एवं माला पहिनाती थीं । मदनकी पत्नी रति घरके अन्दर चुप बैठी थी । उसे पता नहीं था कि पतिदेव आ गए हैं । कोई सखी बाहर से पुकार कर कहती है—हे चन्द्रमुखी रति, तेरा आराध्य पति, घर के

द्वार पर आनन्द से आ गया है । तू भी चित्त में प्रफुल्लित होकर शीघ्र ही आरती उतार । इस प्रकार पति-पत्नी का सम्बन्ध है ।

यदि अन्तर्दृष्टि से देखे तो हम रागी गृहस्थी जीवों का मन ही मदन है । उसमें उत्पन्न अभिलाषा ही रति है । जब मन बाह्य पदार्थोंको जानने के लिए जाता है उस समय रति चुपचाप पड़ी रहती है । बाहर में मन फँसकर नहीं रह जाता तब रति अपने पति को उन विषयों के संग्रह में प्रोत्साहित करती है । यही उसका आरती उतारना है । पति को इस कार्य के लिए प्रसन्न करना तथा आलसी न होने देना है । कवि ने प्रत्येक जीवन के अनुभव को संक्षेप में प्रस्तुत किया है ।

मुहु रहिय मोडि मानिनि पुच्छइ तब मयणु कवण कज्जेण
को सुरवीरु अटलो कहि सुंदरि मज्झु सिंह भुवेण ।।६०।।

अर्थ—मदनने अपनी पत्नी (रति) से पूछा कि—हे मानिनी । तू किस कार्य से मुख मोड़ रही है । (मन कर रही है) । हे सुन्दरी ! कहो, सिंह भुजा वाले मुझसे अधिक इतना शूरवीर कौन है?

व्याख्या—रतिका अपने माननीय पतिके आदरमें उत्साह न दिखलाना ही मदनके प्रति रूस जानेका सूचक है । जीव की प्रवृत्तियाँ ही उसके मनोगत भावोंको प्रकट कर देती है । उसके आलसको देखकर बिना कहे ही मदन ने जान लिया कि वह रूठ गई है, तो वह गर्व में भरकर उसे मनाने की चेष्टा करता हुआ कहता है—"मैं विजयके लिए गया था। वहाँ सुमति और संयमश्री आदि अनेक नारियाँ थीं किन्तु मैं उनके मोहजालमें नहीं फँसा । मेरी सिंह जैसी भुजाओं का पराक्रम विशिष्ट है, वे सभीको पराजित करके छोड़ती हैं । वह कायर विवेक मुझे देखते ही भाग खड़ा हुआ। उसने मुझे अपनी पीठ दिखला दी । ऐसे कायर के पीछे मैं नहीं दौड़ा। मैंने महापुरुषों के वाक्योंको प्रमाणित किया कि शूरों को शूर की छाती पर ही प्रहार करना चाहिए, भागते हुए की पीठ पर प्रहार करना अन्याय मार्ग है इसीलिए मैं अपनी विजय मानकर लौट आया हूँ । इसमें तुम्हारा कौन सा मान भंग हुआ है । मैंने तो तुम्हारी प्रतिष्ठाको ही बढ़ाया है। मुझे तुमसे अद्वितीय प्रेम है इसलिए विजय प्राप्त करके शीघ्र ही तुम्हारे पास आ गया हूँ । ऐसा कौन सा प्रयोजन है, जिसे मैंने पूरा नहीं किया। संभव है तुझे मेरे विरह ने दुखी किया हो किन्तु अब निश्चिन्त रहो, अब मैं तुम्हारे पास ही रहूँगा । मदन जैसा वीर राजा भी स्त्री के रूस जाने पर भीरु बन गया और इस प्रकार के प्रश्न पूछने लगा ।"

रति-मदन संवाद

वस्तु छन्द

कं न जित्तिउ कवणु तइं देसु ।
को मंडलु वर पट्टणु कवणु सबल भूपति डिगायउ ।
किसु छत्तु विहंडियउ करिवि बंदि कहु कासु ल्यायउ ।
किसु मलियउ परतापु तइं कहं कहं फेरी आण ।
रति जंपइ-हो मयण सुणि कहु पोरुषु अप्पाणु ।।६१।।

अर्थ—रति कहती है—कि हे प्राणप्रिय, मदन आप मुझे बताइये कि ऐसा भी कोई देश है, जिसे आपने नहीं जीता? (यदि जीता है तो) वह कौन सा देश है । कौन सा पट्टन (समुद्र तट का नगर) है, कौन सा सबल राजा है, जिसको डिगाया है । किसका छत्र विघटित किया है । कहो, किसको बंदी बनाकर लाए हो । किसके प्रतापको मलिन किया है । तुमने कहाँ-कहाँ किस-किस पर आज्ञा चलाई है । अपना पुरुषार्थ तो मुझे बताओ, कितना तुममें पौरुष बल है ।

व्याख्या—संसार में नर-नारियों का प्रेम एक अकृत्रिम प्रेम है । जब उसमें कृत्रिमता की गन्ध आने लगती है तभी आपसी सम्बन्धों में कटुता आ जाती है । यहाँ रति और मदन के आपसी सम्बन्धों में कटुता आ गई है । इसलिए रति अपने पति पर क्रोध प्रकट कर रही है । उससे प्रेम पूर्वक नहीं बोलती है । अपनी दृष्टि नीची कर लेती है । लेकिन मदन के अपनी वीरता के सम्बन्ध में कहे गए-गर्व भरे वचनों से आहत होकर वह पूछती है—कि बताइये आपने कौन से ऐसे पुरुषार्थके कार्य किए हैं, जिनसे आपकी विजयका पता लग सके ।

रतिने मदनसे आठ प्रकार की विजयोंके विषय मे पूछा है, जिनका आध्यात्मिक दृष्टि से निम्न अर्थ है—प्रथम विजय से तात्पर्य शंकर आदि देव तथा वैराग्य भावों से हैं । दूसरी विजय में कौन-कौन देश से मतलब स्वर्ग, मनुष्य लोक तथा शुभभाव रूप देश से है । तृतीय विजय मे श्रावक व मुनिरूप पट्टन देशों से है । चतुर्थ विजय में बलराजा से अर्थ संयमी साधुओं को डिगाने से है । पंचम विजय में छत्र शब्द से अभिप्राय सम्यक्त्व को बिगाड़ने से है । विजय में बन्दी बनाने का तात्पर्य कुगुरु, कुशास्त्र सेवकों से है । सप्तम विजय में प्रताप मलिन करने का प्रयोजन अन्तरंग की मलिन भावनाओं से है । अष्टम विजय का अर्थ बहिरात्मा तथा बाह्य परिग्रहों को एकत्व मानने वाले भावों से है ।

दार्शनिक दृष्टि से देखें तो यह कोई स्त्री पुरुष नहीं है। संसारी आत्मा के विकारी भाव हैं। रति शब्द से अभिप्राय राग की परिणति से है और मदन का अर्थ पुरुषवेद अर्थात् रागपरिणति के अधिपति रूप से है।

जिणिउ संकरु इंदु हरि बंभु।
वासिकु पायाल घर चंदु सुरु गह गयणि तारयण।
विद्याधर जक्ख सुर गंधव्व सहु देव गायण।
जोगी जंगम कापडिय संन्यासी रिसि छंदि।
ले ले तपु वन महि दुडे ते मइं घाले बंदि।।६२।।

अर्थ—रति के प्रश्न को सुनकर मदन इस प्रकार उत्तर देता है "मैंने शंकर, इन्द्र, हरि (विष्णु) और ब्रह्मा सबको जीत लिया (वश में कर लिया) है। वासुकि नागके पाताल देशको तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रके धाम आकाशको भी जीत लिया। मैंने विद्याधर, यक्ष, सुर, गन्धर्वों को जीतकर अपना यशोगान करने वाला बनाया। जोगी, जंगम और कपटी जीवों को उनके पद से गिराया। सन्यासी ऋषियों को स्वच्छन्द किया (उनका यश मलिन किया) और जो-जो साधु तप ग्रहण करने वन में चले गए थे, उन सभीको पकड़कर बन्दीखाने में डाल दिया। (गृहस्थ जीवन में फिर से ला दिया। उन पर अपनी आज्ञा चलाई अर्थात् दास बना लिया।

व्याख्या—मदनके वश में सभी देवता हैं। उसे यह घमण्ड है कि सभी मेरे वश में हैं। यहाँ शंकर से अभिप्राय तामसी भावों से हैं। इन्द्र का अर्थ परिग्रही भावों से। हरि से तात्पर्य परनारी आदि के हरण करने वाले भावों से है। ब्रह्मा का अर्थ राग के उत्पादक कारण भावों से है। इन सभी भावों पर मदन का प्रभाव व्याप्त है। प्रवचनसार की "कुं साउह चक्कधरा" आदि गाथा में इन्हीं का वर्णन है। संसार मे सभी नागो का राजा वासुकी तक्षक नाग है, जो पाताल में रहता है, वह भी मदन के आधीन है। चन्द्र, सूर्य आदि सभी ग्रह नक्षत्र मदन के वश में होकर ही भ्रष्ट हुए है। इस मैथुन की भावनाने ही देवलोग के देवों को मनुष्य पर्याय की अवस्था वाला बना दिया। यहाँ तक कि तपस्या में रत साधुओं को भी भ्रष्टाचारी बनाकर पुनः गृहस्थजीवन में ला दिया।

दोहा :

सुणिकरि पोरषि मुझ तणउ घालिउ मनु भरमाइ।
सम्मुहु आणि न जुज्झियउ गयउ विवेकु पलाइ।।६३।।

अर्थ—हे प्रिय, मेरे इस तरह के पौरुषको सुनकर उस विवेक ने अपने मन में भ्रम डाल दिया। (अपनी शक्ति को क्षीण देखकर वह

विवेक मेरे सम्मुख आकर युद्ध न कर सका और (कायर की तरह) पलायन (भाग जाना) कर गया ।

व्याख्या—कायर पुरुष उन्हें कहते हैं, जो शत्रुओं के प्रताप पौरुष को सुनकर डर जाते हैं । अपने पुरुषत्व को भूल जाते हैं । यहाँ श्रद्धान रूप भावोंके कठोर रूप परिणाम को ही विवेक कहा गया है । वह मोह का विजेता है । इसलिए विवेकने संयम रूपी किले का आश्रय ले लिया और अपने इष्ट श्री ऋषभेश भगवान् का स्मरण किया, जिससे कि विजय प्राप्त हो । मदन ने उसके इस कृत्य का उल्टा अर्थ लगाया और सर्वत्र प्रचार किया कि विवेक कायर है । वह मेरी वीरता के सम्मुख टिक नहीं सका इसीलिए पीठ दिखाकर भाग गया है ।

वस्तु छन्द :

जाणि सच्चु पिय गयउ विव्वेकु
धम्मपुरि गढ़ि चडिउ सरवण्णि सनमानु दीयउ ।
परतापिहि गरजियउ रुद्द जेम उद्योतु कीयउ ।
जीवंतउ वैरी गयउ देखु जु कटिहइ सोजु ।
नहि तूं मदन न मोह भडु दुहू गवावइ खोजु ।।६४।।

अर्थ—हे प्रिय (रति), तू सत्य जान कि विवेक भाग गया और धर्मपुरी के गढ़ (दुर्ग) पर चढ़ गया । सर्वज्ञ (श्री ऋषभदेव) ने उसे सम्मान (आश्रय) दिया । उनके प्रताप से वह वहाँ गरजने लगा । उसने रुद्र (भयंकर) रूप से (अपनी शक्ति का) उद्योत किया । मुझे लौटता हुआ देखकर वह बोला—कि मुझ विवेकको कमर कसे (लड़ने को तैयार) देखकर शत्रु (मदन) जिन्दा ही वापिस चला गया, न तू मदन ही रहेगा और न वीर मोह ही । दोनों को खोजकर उनके प्राण गँवा दूँगा ।

व्याख्या—इस गाथा में कवि ने उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों के द्वारा रतिको विश्वास दिलाने का प्रयास किया है । वह किसी भी प्रकार मदन की बातों पर विश्वास नहीं कर रही थी । मदन ने विश्वास दिलाते हुए कहा—कि विवेक रत्नत्रय को धारण कर ऋषभेश की शरण में चला गया । ऋषभेश ने अभी उसे शरणागत जानकर अपनी छत्र-छाया में आश्रय दे दिया है । वह प्रभु के सम्मुख स्वयमेव ही संयमी बन गया । वह संयम नामक गढ़ बड़ा ही अभेद्य है, जो पाप रूप मदन गोलों से भी अस्पृश्य है । उस संयम का लक्षण निम्न प्रकार है—

"वदसमिदि कसायरणं दंडाणतहिंदियाण पंचणहं ।

धारण पालण निग्गह चागजओ संजमो भणिओ ।।''

धर्म का अर्थ है—सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।।

रूह का अर्थ है—रूप

सोज—सीधा

कटिहइ—कमर कसकर

इस प्रकार कमर कसकर वह विवेक अरहंत, सिद्धके ध्यान में लीन हो गया। पंच-परमेष्ठी मन्त्रोंका उच्चारण ही उसकी गर्जना है। उन मंत्रों से और शुद्धात्मतत्व में लीनता होने से जीव शीघ्र ही ''-७ वें गुणस्थान से चढ़कर आठवें, नौवें, दसवें गुणस्थान में पहुँच जाता है जहाँ मदन और मोह का पूरा नाम शेष हो जाता है। यदि मोह का उपशम भी हो जाता है तो पुनः उसको खोजकर उसका क्षय कर दिया जाता है। ऐसी क्षपक श्रेणी में आरुढ़ होकर मोह के साथी अन्य कर्मों को भी नष्ट कर दिया जाता है। वह विवेक इस प्रकार का संयम धारण कर रहा है।''

दोहा छन्द :

ढंढोलिय तिन्निउ[1] भुवण बलु लखउ सुभटाहं।
सो मइं कहिं वि न देखियउ जो मुझु पकडइ बांह ।।६५।।

अर्थ—मैंने तीन लोकों में ढूँढ़ लिया। जहाँ-तहाँ सुभटों की सेनाएँ मिलीं उनमें मैंने ऐसा वीर नहीं देखा, जो मेरी भुजा को पकड़ सके (लड़ सके)।

व्याख्या—मदन एक रागमयी भाव है और रति विकृति रूपी परिणति है। आध्यात्मिक रूप से एक ही आत्मा में विकारी और अविकारी दोनों प्रकार के परिणाम रहते हैं। जब मदन की प्रबलता होती है तो अनुप्रेक्षादि वैराग्य भाव मंद पड़ जाते हैं और अदृश्य से हो जाते हैं। माया लोभ वेद परिणामों की विशिष्टता सामने आ जाती है। इसलिए मदन ने करनी के कच्चे उन शूरमाओं पर ऐसा प्रभाव डाला कि उसी आत्मा में वे राग को पछाड़ नहीं सके। मदन रतिके सामने अपनी इसी वीरता का गुणगान कर रहा है।

वडह बडेरी पिरथवी धरमहि गव्वहि कीसु।
तौ बलु पोरिसु कंत तुझु जइ जित्तहिं आदीसु।६६।।

अर्थ—हे कंत! बड़ों की यह पृथिवी बहुत बड़ी है। इसमें और अपने ही घर में गर्व कैसा? तुम्हारा बल पौरुष तभी है, जब तुम जाकर भगवान् आदीश आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को जीतो।

व्याख्या—रति ने मदन से कहा—घर में गर्व करना सभी जानते

---

१. ख. तिण्णिउ, ग. तिंणि

है । घर में ही अपनी बड़ाई करने से कोई बड़ा नहीं होता । जब बाहर जाकर शक्तिशाली को जीतो तब शक्ति का पता लगता है । आपने अभी तक इसी कर्मपुरी के निवासी शंकरादि देवों को ही अपने वश में किया है किन्तु धर्मपुरी में प्रवेश नहीं किया । आज संसार में धर्मपुरी के निवासी परमवीतरागी आदीशप्रभु की प्रसिद्धि का बड़ा यशोगान हो रहा है । यदि तुम वहाँ प्रवेशकर उन देवाधिदेव परमात्माको जीत लो तब मैं आपके बल, पौरुषको समझ लूँगी ।

जब तिनि नारि विछोइयउ तब तमकिउ तिसु जीउ ।
जणु प्रजलंती अगिणि महि लेकरि डालिउ घीउ ।।६७।।

अर्थ—जब उसकी (मदन की) नारी (रति) ने विक्षोभ उत्पन्न किया तब उसका जीव तमक (मदन रोष से भर) गया । जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि में घी डाल देने से वह और अधिक भभक उठती है, उसी प्रकार वह (मदन) भी अत्यधिक क्रोधित हो गया ।

व्याख्या—यह आत्मा अनन्त गुणों का भंडार है । इसमे सापेक्ष अनन्त धर्म विद्यमान हैं और उनमें अनन्त परिणमन भी पाए जाते हैं। वही भाव जब परिणमन कारण के बिना कहे जाते हैं तब शुद्धभाव कहलाते हैं । मन्दकषायों के सम्बन्ध से कहे जाएँ तो शुभ भाव कहलाते हैं और मिथ्यात्व तथा तीव्रकषाओं से सम्बन्धित कहे जाएँ तो अशुभभाव कहलाते हैं । जिस प्रकार वायु के लगने से अग्नि प्रज्ज्वलित होती है और घी के संसर्ग से अधिक भीषण रूप से प्रज्ज्वलित हो उठती है । उसी प्रकार प्रत्येक कार्योंके प्रेरक निमित्त होते हैं ।

इन निमित्तों द्वारा भावोंको तीव्र उदय में ले आने से इन्हें नोकर्म भी कहा जाता है तथा प्रकट होने वाले भावोंको विभाव, भाव या विकारी भाव कहते हैं । भाव दो प्रकार के हैं—१. भूयमाण और २. क्रियमाण । कर्मों के निमित्त बिना होने वाले भाव भूयमाण और कर्मोंके द्वारा होने वाले भाव क्रियमाण कहलाते हैं । भूयमाण भाव स्व होनेके कारण उपादेय शुभ भाव हैं और क्रियमाण पर होनेके कारण हेय अशुभभाव हैं । क्रोधादि कषाय परके भाव होने से निमित्त प्राप्त करके तीव्र हो जाते हैं और आत्माको पराधीनता के बन्ध में डाल देते हैं ।

उपर्युक्त छन्द की बड़ी विशेषता है कि क्रोध तो मदनको पहले से ही था किन्तु रतिके वचनोंने उस पर घृत का कार्य किया । यह कथननो- पकथन रूपक वास्तव में अपना भाव ही अपना तिरस्कार करता है, उसी से चित्त मलिन होता है । वही मलिन भाव घी का कार्य करता है और इसीको कवि ने घी का डालना कहा है ।

षट्पद छन्द :

रोम-रोम उद्धसिय भृकुटि चाडिय णिल्लाडिय
गुरणायउ जिमँ सिंधु घालि बलु लिय अंगाडिय ।
विसहरु जिय फुंकरिउ लहरि ले कोपइ चडियउ
जिम पावस घणु मत्तु तिम सु गज्जिवि गडवडियउ
न हु सहिय तमक तिसु तरुणि की मच्छु तुच्छ जलि-जिम खलिउ
सिरि धम्मप्पुर पट्टण दिसिहि तब सु दुट्टु मनमथु चलिउ ।।६८।।

अर्थ—उसके (क्रोधित हो जानेसे) रोम-रोम फड़क उठे (काँटे के समान खड़े हो गए) और लिलाट पर भृकुटि चढ़ (टेढ़ी हो) गई, जो देखनेमें भयंकर लगने लगी । जिस प्रकार सिंह किसी पर गुर्राता है और अपने बलको घालकर (ग्रहणकर) अँगड़ाई लेता है, उसी प्रकार मदन भी रति पर जोरसे गुर्राया और शक्तिको सम्हालकर अँगड़ाई लेने लगा।

सर्प जैसे फुफकार मारता है और लहर लेता हुआ क्रोधमें ऊपर चढ़ जाता है, उसीप्रकार मदन भी विषधरके समान रति पर श्वास छोड़ने लगा तथा अंगों को टेढ़ाकर क्रोधाविष्ट हो गया । जिस प्रकार पावस (वर्षा) ॠतुके मेघ मात्र गर्जनाके द्वारा गड़बड़ (जोरसे वर्षा आ रही है इस भावनाको जगा देता है) कर देते हैं । उसी प्रकार मदन भी गर्जना करने लगा और गड़बड़ करने वाला हो गया (कोई भयंकर विस्फोट करेगा ऐसा मालूम पड़ने लगा) । जिस प्रकार मत्स्य थोड़ेसे जलमें उलट-पलटकर खलबली पैदा कर देते हैं (थोड़ेसे जलमें उनका कष्ट बढ़ जाता है और वे घबराहटमे उलटने पलटने लगते हैं) उसी प्रकार मदन भी अपनी तरुणीके पौरुषहीन तमकाने वाले वचनों को सुनकर, उनसे होने वाले कष्ट को सहन नहीं कर सका तथा तत्काल उलट-पलटकर, उछलकूद मचाने लगा और तब वह दुष्ट मदन राजा भी धर्मपुरी पट्टण की दिशामें चल दिया ।

व्याख्या—इस गाथा में मन्मथके क्रोधके चार दृष्टान्तोंका प्रतिपादन किया गया है । १. सिंह, २. सर्प, ३. वर्षाके मेघ और ४. मत्स्य । ये सभी निदर्शन लोकमें प्रसिद्ध हैं और सभीके अनुभूत हैं । लोकका अर्थ आत्मा है । जैसे—

"लोक्यन्ते पदार्थाः यत्र स आत्मा । यत्रस्येनात्मना लोक्यते स लोकः ।

आत्मा में विकारी भाव विवेक बुद्धि से रहित क्रोधाविष्ट होकर सिंहके समान गर्जना करते हैं । भीतर ही भीतर गुर्राते हैं । वे सर्पके समान

शुभभावोंको डरा देते हैं । वर्षाके मेघके समान चारों ओर बाढ़की तरह गड़बड़ी ला देते हैं । मत्स्यके समान शुभ भाव उलट-पलट कर, डर कर प्राण छोड़नेको तैयार हो जाते हैं । इसी प्रकार मदन भी रतिके वचनोंसे आहत हो गया और उसी दिशाकी ओर चल दिया, जहाँ धर्मपुरीमें भगवान आदीश विराजमान थे ।

गाथा छन्द :

चल्लियउ मयणणाहो धरि सुंदरि-वयण चित्त मज्झम्मि ।
कलिकालि ताम सुप्पियउ उट्ठायउ मोह-भडु जाइ ।।६९।।

अर्थ—(वह) मदननाथ सुन्दरीके वचनोंको अपने चित्तके मध्यमें रखकर चल पड़ा । तब (उसीसमय) कलिकालने आकर सोते हुए मोहभटको उठाया ।

व्याख्या—मदन और सुंदरी राग भाव रहित आत्मा और रागयुक्त परिणति है । इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है तथापि कर्ता और क्रियाकी अपेक्षा भेद है । काम विजयी, निर्मल आत्माके निवासी भगवान ऋषभदेवने चारित्र, मोहनीय कर्मका क्षय कर दिया इसलिए रागकी उत्पत्ति उनमें हो ही नहीं सकती, फिर भी मदन नवनिधि छत्र, चमर, सिंहासनादि का रूप धारणकर भगवानकी तरफ चला और राग परिणति का उत्पादक निमित्त बना । निमित्तों के सम्बन्धसे तत्काल शक्ति क्षीण होनेसे विजयी आत्मा भी हार जाता है और रागी बन जाता है । शील व्रत छूट जाता है तथा मैथुन संज्ञा उत्पन्न हो जाती है । पुरुषवेद रूप कर्म प्रकृतिका आस्रव और बन्ध होता है । ऐसी परिणति उत्पन्न करनेके लिए वेदकर्मके परमाणु चले । परमाणु अर्थात् कर्मवर्गणा सर्वत्र विद्यमान हैं । वे ही खिंचकर पहुँच जाती हैं और आत्म-प्रदेशों पर बन्ध योग्य होती हैं । यही मदननाथ का चलना है । कलिकालमें राग परिणति अधिक होती हैं इसलिए कविने कलिकालका उल्लेख किया है । मोहका उपशम हो गया था । कलिकालने उस सोए हुए मोह वीरको जगाया ।

उट्ठियउ मोहराओ दिट्ठो नरु सूरवीरु परचंडो ।
तूं कवणु कत्थ वासहिं कहु आयउ कवण कज्जेण ।।७०।।

अर्थ—मोहराजाने उठकर (अपने सम्मुख) प्रचण्ड, शूरवीर मनुष्यको देखकर पूछा कि तू कौन है, कहाँ तेरा निवास है, तू कब आया है और किस कार्यसे आया है?

व्याख्या—कलिकाल सभी प्रकारसे पाप परिणतियोंका घर है । यह मिथ्या आचरण वाला बड़ा शूरवीर, तेजस्वी तथा सभी पापों में बड़ा पाप

है। यहाँ काल शब्द को पुरुष की संज्ञा दी गयी है। जब इस प्रकारकी पाप प्रकृतियोंका उदय होता है तब सोए हुए मोहनीय कर्मका उदय भी हो जाता है। मोहनीय कर्म पाप रूप है। ११वें उपशान्त मोह गुणस्थानमें लोभका उदय आकर आत्मा सूक्ष्मराग वाला होकर दशम गुणस्थानी बन जाता है। ये सब लोभके अबुद्धिपूर्वक परिणाम हैं। उस समय आत्मा जघन्यज्ञान-गुणवाला होता है। वहीं जघन्यज्ञानगुण कलिकाल है। फिर अन्य कषायोंका उदय आते-आते वेदनाका भी उदय हो जाता है। इसप्रकार गिरते-गिरते आत्मा प्रथम गुणस्थान में परिणमन कर जाता है। यही मदनकी विजय है।

कलिकाल-मोह संवाद

वस्तु[1] छन्द :

सुणहु स्वामी हउं सु कलिकालु।
दस खित्तिहिं संचरिउ मइं[2] प्रतापु अप्पणउ कीयउ।
विव्वेकु दुडाइयउ मुकतिपंथु चल्लणि न दीयउ।
कोडाकोडी अट्ठदस सागर बल मइ कितु।
आदीसर-भय भग्गियउ अब तुम्हसरणु पहुतु।।७१।।

अर्थ—(मोहके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कलिकाल कहता है) हे स्वामी, मैं वहीं कलिकाल हूँ, जिसने दस (पाँच भरत क्षेत्र, पाँच ऐरावत क्षेत्र) क्षेत्रोंमें भ्रमण किया (वहीं मेरा निवास है, अन्यत्र नहीं) और वहाँ अपना प्रताप प्रकट किया (सबको भोगोंमें मग्न करके रखा। विवेक को मैंने दौड़ा दिया-भगा दिया एवं मुक्ति पथको नहीं चलने दिया (संचार मार्गकी ही परणति रखी)। इस प्रकार १८ कोडा कोडी सागर तक मैंने अपना बल प्रगट किया। परन्तु अब आदीश्वर भगवानके भयसे (उन्होंने जो मोक्षमार्ग-चलाया है, उसके भयसे) भागकर अब तुम्हारी शरणमें आ पहुँचा हूँ।

व्याख्या—कलिकाल अपने प्रतापका वर्णन कर रहा है। वह मोहसे कहता है—मैंने उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी कालके १८ कोडाकोडी सागर तक मोक्ष मार्गका प्रवर्त्तन नहीं होने दिया। देशों क्षेत्रों पर मेरा एक छत्र शासन रहा है। मेरे सामने विवेककी स्थिति ही नहीं रहती है किन्तु अब चतुर्थ कालके प्रारम्भ में मोक्षमार्ग प्रारम्भ होते ही कर्मभूमिमें ऋषभदेव उत्पन्न

१. ख. रड छन्द
२. ग. मैनु

हुए । उन्होंने धर्मपुरीमें निवास किया है । उनसे भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ । आपके अतिरिक्त मेरी रक्षा दूसरा कौन कर सकता है? शरणगतकी रक्षा करना बड़ों का कर्त्तव्य है ।

दोहा-छन्द :

आइ पडिय तिनु[1] अवसरिहि पुरुषहँ सीझहिं काम ।
कलिकालिहि पच्चारियउ मोहु तमक्किउ ताम ।।७२।।

अर्थ—अवसर आने पर ही पुरुषोंके कार्य सिद्ध होते हैं । वह अवसर आ पड़ा है । (कलिकालके इन वचनोंको सुनकर) मोह (राजा) तमक उठा (क्रोधित हो उठा) और उसने कलिकाल को फटकारा ।

व्याख्या—कलिकालने मोहको अपने आनेका प्रयोजन बतलाते हुए कहा---श्री ऋषभदेव बड़े प्रबल वीर हैं । उनके कारण इन देशों, क्षेत्रोंमें मेरा रहना कठिन हो गया है । अवसर देखकर कार्यकरने से महापुरुषोंके कार्य सिद्ध होते हैं । भगवान ऋषभदेवको भी चतुर्थकाल रूप सुअवसर प्राप्त हो गया है । अब वे संयम धारण कर बैठ गए हैं । उन पर मेरा कोई वश नही चल रहा है । अत: मैं आपके पास चला आया । इन बातोंको सुनकर मोह राजा क्रोधित हो उठा और कलिकालको ही डाँटने लगा । तू भागकर क्यों आ गया! तुझे वहीं रहना चाहिए था । यहाँ मोहके तमकनेसे तात्पर्य है कि चारित्र मोहका तीव्र उदय हो गया ।

पाधडी छन्द :

तम कायउ तिणि भडु मोहु जाइ
पुनि माया तहिं ठइ लिय बुलाइ
जब दोनउं बइठे एक्क सत्थ
कलिकालु कहइ तव जोडि हत्थ ।।७३।।

अर्थ—उस (कलिकाल) ने मोहभटके पास जाकर उसे और तमकाया (क्रोधित किया) । अनन्तर मोहने फिर मायारानीको उसी स्थान पर बुला लिया । जब दोनों (राजा, रानी) एकसाथ बैठे तब कलिकाल उनके सम्मुख हाथ जोड़कर बोलने लगा ।

व्याख्या—राजा मोह छिपा-छिपा कार्य करता है । जब वह कार्य कर चुकता है तब पता चलता है कि यह मोहका कार्य है । सभी राजाओंकी यही नीति होती है । मोहकी पत्नी भी छिप-छिप कर कार्य करती है इसलिए उसका नाम माया है । कलिकाल दोनोंके सम्मुख अपनी कथा कहता है ।

---

१. ख.ग. तित्तु

आत्मामें अपने शुभ अशुभ भावोंका संरंभ समारंभ हुआ करता है। सभीको अपने-अपने भावोंका अनुभव होता रहता है। इन भावोंका नाम ही संसार है। जब विवेक यथार्थश्रद्धान ज्ञानकी साधना करता है, तभी मोह, मदन, कलिकाल, वसंतऋतु आदि रागादि परिणाति मिथ्या श्रद्धानके कारण जिस भावकी प्रबलता होती है, वही भाव स्थिर होकर खड़े रह जाते हैं; अन्य भाव लुप्त हो जाते हैं। यहाँ इसी प्रकारके युद्धका स्वरूप वर्णित है।

कवि अत्यन्त ज्ञानी एवं अनुभवी हैं। इन गाथाओंमें उसने आन्तरिक भावोंका स्पष्टीकरण किया है।

तुम्ह पुत्तु मयणु अति चडिउ तेजि
मन माहिं न मानइ सो[१] अंगेजि
घर मांहि वडत तिणि नारि दुट्ठि
आरत्तउ न कियउ वेगि उट्ठि ।।७४।।

अर्थ—तुम्हारा पुत्र मदन अधिक तेज पर (प्रताप में) चढ़ गया है। उसने दूसरी अंगेजी (दूसरी नगरी को अंगीकृत नहीं किया) को मनमें नहीं माना। घरमें प्रवेश करते समय उसकी दुष्ट नारी (रति) ने उठकर जल्दीसे (उसकी) आरती नहीं उतारी।

व्याख्या—कलिकालने मोहसे कहा—तुम्हारा पुत्र मदन अत्यन्त तेजवान् है। तेज उसे कहते हैं, जिसका नाम सुनते ही शत्रु भाग जाते हैं। मदनका नाम सुनते ही विवेक शत्रु भी भाग गया। इस प्रतिष्ठाको प्राप्त करके मदन अपने घर वापिस आया किन्तु उसकी अंगेजी स्त्री (स्वीकारकी गई पत्नी) ने उसके प्रति प्रेम प्रकट नहीं किया और न ही उठकर आरती उतारी। उस मदनने आजतक अपने मनमें अपनी पत्नीको ही स्थान दिया था। वह निरन्तर उसीका ध्यान करता था और उसीकी स्मृतिमें खिंचा चला आया था। किन्तु पत्नी (रति) के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर वह रोषसे भर उठा और उसे दुष्टा तक कह डाला।

प्रस्तुत गाथामें घरका तात्पर्य पत्नीसे है—

"गृहं हि गृहिणी माहुर्नकुड्यकटय संहतिम्"।।

नहु सहिय तमक मनमथु प्रचंडु
उत्तरिउ जाइ तह घोर कुंडु
सो घोर कुंडु दुत्तरु[२] अगाहु
जल रुहिरपुर भरियउ अथाहु ।।७५।।

---

१. आसायणि वेयणि, असलेन (आसालन) वेगणी।

२. नलिन

अर्थ—मदन पत्नीके द्वारा किए गए अनादरको नहीं सह सका और प्रचण्ड तमक (रोष) से भर गया। (रोषके कारण वह भरे कुण्ड (नरक कुण्ड) में उतर गया। वह घोर कुण्ड दुस्तर और अगाध था तथा जल और रुधिर से परिपूर्ण अथाह था।

व्याख्या—संसार में प्रायः यही देखा जाता है कि अनादर पाकर पुरुष कूप आदिमें पड़कर आत्मघात कर लेते हैं। नारियाँ भी आत्मघात कर लेती हैं ! मरण के दुःख से भी अपमानके दुःखको बड़ा मानते हैं। उन्हें यह विवेक नहीं रह जाता कि वह नरक-कुण्ड कैसा गन्दा है? मैं इसमें से निकल पाऊँगा अथवा नहीं। कविने प्रस्तुत गाथामें उत्प्रेक्षाके द्वारा इसीकी कल्पनाकी है। उन्होंने नारी रूपी नरककुण्डका वर्णन किया है—"वह घोर है, दुस्तर है, अगाध है, जल रूपी रक्तसे परिपूर्ण है। उसकी थाह पाना बड़ा कठिन है।" नरकभी ऐसा ही है। उसी नरककुण्डमें मदन उतर गया।

भय भीम भयंकर पालि जाह
अ[१]सातवेयणी[२] नलिणि ताह
तहिं विरख तिक्ख करवाल पत्त
झ[१]डपडहिं तुट्टि छेदहिं ति गत्त ॥७६॥

अर्थ—भय से भरी भयंकर उस कुण्डकी पाली (तट) है। असातावेदनीयके उदय रूप ही उसकी नलिनी (कमलिनी) है। वहाँके वृक्ष तीक्ष्ण तलवारके समान पत्ते वाले हैं, जो गिरकर (नारकियोंके) शीघ्र ही शरीरको छेद डालते हैं।

व्याख्या—कोईभी क्षेत्र हो, वहाँ नदी-नाले एवं वृक्ष होते ही हैं। फिर यह तो एक अदभुत कुण्ड है। जिस प्रकार कुण्डमें जल होता है उसी प्रकार यह नरक कुण्ड भी रक्त रूपी जलसे भरा हुआ है। उसके किनारे भयंकर कांटेदार हैं, जिससे कोई जीव भागकर दूसरी जगह नहीं जा सकता। वहाँ प्रतिक्षण असातावेदनीय कर्मका उदय रहता है। एक भी क्षण सुख नहीं है। कोई भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, सुखका कारण नहीं है? द्रव्य तो कुण्ड, जल, वृक्ष आदि हैं। क्षेत्र वहाँके वृक्षों की भूमि है, जो तलवार तुल्य तीक्ष्ण पत्र वाली है। जिनके द्वारा शरीर छिन्न-भिन्न हो जाता है। कमलिनी बेल असातावेदनीय रूप काल है। इनके भाव भी बिगड़ जाते हैं। अतः सुख कहीं भी नहीं है। इस प्रकारका

१. झडि
२. करि

वह भयंकर स्थान है ।

जहिं ढंक कंक पक्खिय निनेह
जिन्ह चुंच संडासी भखहि देह
जितु लहरि अगनि झाला तपाइ
खिण माहिं सतनु थालहिं जलाइ ।।७७।।

अर्थ—जहाँ ढंक-कंक नामके पक्षी निनाद (ध्वनि) कर रहे हैं (जो भयंकर हैं) उनकी चोंच संडासी के समान है, (जिससे) वे इन (नारकियों) के शरीरको खाते हैं । जितु (जहाँ) उन्हें अग्निकी ज्वालाकी लहरें तपाती हैं । गरम-गरम वायु चलती है, जो सबको तपाती है । क्षणभरमें वह ज्वाला उनके शरीरको जला देती है ।

व्याख्या—इस गाथामें मांसाहार तथा उष्णताजनित क्षेत्रके दुःखोंका वर्णन किया गया है । जीव यहाँ पर जिस प्रकारका पाप कार्य करता है । उसको उस नरककुण्डमे वैसा ही फल भोगना पड़ता है । जो यहाँ जिस प्रकारके जीवोंका माँस भक्षण करते हैं । वे वहाँ उसी प्रकारके पक्षियोंकी चोंच द्वारा भक्षण किए जाते हैं । यह संसार पँच पापोंका घर है । पाप साक्षात् तीव्र कषायों द्वारा ही होते हैं । तीव्र कषाय पहले अपने ही ज्ञान प्राणोंका घात कर देती है फिर दुर्गति (आकुलता-तृष्णा) में ढकेल देती है । यह आत्मा ही पाप करके नारकी और तिर्यंच बनता है । अन्य दुर्गति भी भविष्यमें होती है । यही आत्मा अपना अशुभ-शुभ करने वाला ईश्वर है । अन्य कोई ईश्वर फलदाता नहीं है । अतः पापोंसे सदा दूर रहो । कहा भी गया है—

"सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परोददातीत्ति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितोहि लोकः ।।"

कहिं मगर-मच्छ ए दुट्ठ जीव
तिसु भिंतरि जे पुणु लेहि दीव
जे परमा धरमी वधिक आणि
ते घालि जालु कड्ढंति ताणि ।।७८।।

अर्थ—उस (कुण्ड) में कहीं-कहीं मगरमच्छ रूप दुष्ट जीव भी हो जाते हैं तब उस (कुण्ड) के जो परम अधर्मी हिंसक दुष्टजीव हैं, वे दीपक लेकर तथा जाल डालकर उन्हें काढ़ (निकाल) लेते हैं ।

व्याख्या—संसारमें जो हिंसक-कसाई मगरमच्छको पकड़ते हैं । वे नरकमें मगर-मच्छ रूपमें उत्पन्न होते हैं । नरकमें सूर्यका प्रकाश नहीं है, सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार है । अतः कसाई रूप जीव पहले दीपक

लेकर मगर-मच्छोंको खोजते हैं तब उन्हें जालमें फँसाकर बाहर निकाल लेते हैं और मार डालते है । थोड़ी सी जिह्वा इन्द्रियके स्वादवश अनेक प्रकारके कष्टोको सहन करते हैं । असली बन्ध यहाँ कषायोका बन्ध है ; पापके समान पुण्यका भी बन्ध है । दोनों एक ही समान बेड़ी हैं । हमारी श्रद्धामें दोनोंको छुड़ानेका ध्येय होना चाहिए । कहा गया है—

निजार्जितं कर्मविहाय देहिनो न कोपि कस्यापि ददाति किंचनो,
विचारयन्नेवमनन्यमानस: परोददातीति विमुच्यशेमुषीम् ।।

पुण्यकोभी पाप कहने वाले संसारमें विरले है—

"पाप कहत हैं पुण्यको ते विरले संसार । ।"

इक लेइ कुहाडु कुटहिं[1] गहीरु
करि खंडु खंडु फाडहिं सरीरु
जहिं तपा तपहिं नितु लोह थंभ
तिन्हि लावहिं अंगि जि खलिय बंभ ।।७९।।

अर्थ—कोई एक (नारकी दुष्ट) जीव कुहाडु (कुल्हाड़ी) लेकर गम्भीर रूपसे कूटते हैं और शरीरको खण्ड-खण्ड कर डालते हैं । जहाँ तपा (अग्नि) से नित्य तपे हुये लोहेके स्तम्भ हैं, वे उन तप्त स्तम्भोंसे ब्रह्मचर्यसे स्खलित होने वाले पापियोंके शरीरको लगाते हैं ।

व्याख्या—इस गाथामे ब्रह्मचर्यसे स्खलित होने वाले लोगोंकी दुर्दशाका वर्णन किया गया है । जैन दर्शन यही कहता है कि पापका फल पुण्यरूप कभी नहीं हो सकता । पापका फल तो भोगनेसे अथवा तपस्या करनेसे ही छूटेगा । केवल यह कहनेसे कि भगवन्, हम आपकी भक्ति करते हैं, हमें पाप बन्धनसे छुड़ाओ, पाप छूट नहीं सकता । फल भोगनेमें यह स्वयं ही अकेला है । जैसे—

कर्मोदयान्भवति मरणजीवित दु:ख सौख्यं ।
स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभं ।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा ।

अत: अपनी शरण ही शरण है ।

प्याइयइ सुतांबउ ताइ सुख
मदि मांसि जि हुंति पजीय लुद्ध
तहिं घाट विषम कुंभी गहीरु
तिसु माहिं पचावहिं ले सरीरु ।।८०।।

अर्थ—जो माँस-मदिरा के खाने में (जीभ के) लुब्ध जीव हैं, उन्हे

१. कुटहिं हीरु, कूकडि अहीर

वे शुद्ध तांबा का रस पिलाते हैं । वहाँ विषय (टेढ़े भयंकर) गहीर (गम्भीर) कुंभी (कड़ाहों) के घाट (स्थान) हैं उन कुम्भियों में (नारकी जीवों को) पटककर उनके शरीरको पकाते हैं ।

व्याख्या—जो इस लोक मे जिह्वा के स्वादके लिए गन्ध मांस का भक्षण करते है, उन्हें नरक योनि में ताम्ररस का पान कराया जाता है। यह रस एक प्रकार की तेजाब के समान होता है, जिससे सम्पूर्ण शरीर क्षार-क्षार हो जाता है । इस लोकमें जो दूसरोंको पकाते हैं, उन्हें उसी प्रकार बड़े-बड़े कड़ाहोंमें पकाया जाता है । यही जैनदर्शन है । Tit for tat जैसेको तैसा धूम्र रूपसाधनसे जैसे अग्निका निर्णय होता है उसी प्रकार इन कार्य-रूपोंको देखने से इस प्रकार की फल-प्राप्तिका निर्णय होता है। यह दर्शन गुरु उपदेशसे, आगमसे और पूर्वजन्म स्मरणसे सिद्ध होता है।

सिरु तलइ करहिं उप्परि स-पाव
ते घालहिं सबल निसंक घाव
भाले करि पीलहिं घाण-माहि
रडवडहिं रडहिं बहु दुख सहाहिं ।।८१।।

अर्थ—वहांके दुष्ट जीव सबल हैं, वे (निर्बल जीवों को) सिर नीचा करके, पैरों को ऊपर कर (औंधा लटकाकर) देते हैं और निःशंक होकर घाव घालते (मार मारते) हैं, भालोंके द्वारा पेरते हैं तथा धानी में पेरते हैं । वे चिल्लाते हैं, रोते हैं और दुःखोंको सहते हैं ।

व्याख्या—यहाँ नरकका अपूर्व दृश्य उपस्थित किया गया है । देखा जाय तो संसार की यही रीति है । यह संसार दुःखोंका घर है, अनीति मार्गसे परिपूर्ण है । छल-कपट सहित है । सबल,निर्बलको सताते हैं । यहाँ तक कि प्राणोंका अपहरण भी कर लेते हैं । अनेक प्रकारके दुःख देते हैं । उनकी पुकार कोई नहीं सुनता, ऐसे संसारमें कोई शरण नहीं है । कभी कोई विरले धर्मात्मा ही वैराग्यसे प्रबुद्ध होकर अपने उपदेश द्वारा ऐसे जीवोंको सन्मार्ग पर लगाते हैं ।

छेयण-भेयण ताडण सुताप
वे जीव सहहिं जिनि किये पाप
जिन्हि आज्ञा मानी मोह राइ
तिहु सरवरि मज्जहिं तेवि जाइ ।।८२।।

अर्थ—जिन जीवों ने पाप किए हैं,वे नरक-सरोवरके छेदन, भेदन ताड़न और तापको सहते रहते हैं । जिन्होंने मोहराजाकी आज्ञा (शिरोधार्य की) मानी, वे भी उसी नरक-सरोवरमें डूब जाते हैं ।

व्याख्या—नरक भूमिमें दयाका नाम-निशानभी नहीं है। मनुष्यलोकसे अनन्तगुणें दुःख वहाँ पर है, जो मोहराजाकी आज्ञा मानते हैं अर्थात् तीव्र मिथ्यादृष्टि हैं, वे भी उसी नरक-सरोवरमें मग्न हो जाते हैं। क्योंकि मिथ्यात्व ही सबसे बड़ा पाप है। आचार्योंने कहा भी है—

"अश्चेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यतभूभृताम् ।"

मिथ्यात्वके कारण ही संसार है एवं सम्यक्त्व का नाम ही मोक्ष है।

तहिं स्वामि उतारउ मयणु कीय
मइं आइ सार यह तुम्ह दीय
धम्मप्पुरु गढु अति विषम थानु
तिसु उप्परि चल्लिउ करिवि तानु ।।८३।।

अर्थ—हे स्वामिन्,मोहराजन्! मदन ने वहाँ अपना उतारा किया है। मैने आकर, यह उत्तम संदेश आपको दिया है। धर्मपुर नामका जो गढ़ है वह बहुत ही विषम स्थान है। उस गढ़के ऊपर वह कमान तानकर चलता है।

व्याख्या—नारीके जघनरंध्रको भी नरककुण्ड या घोरकुण्ड कहते हैं। वहाँ मदनने प्रवेश किया है। उस स्थानमें उपर्युक्त सभी बातें विद्यमान हैं। नारी और यश, ये दोनों ही विषम घाटियाँ हैं, इनमें पार हो पाना कठिन है। कलिकाल नामके सेवकने मोह राजाको यह संदेश दिया और बताया कि अब मदन तीर कमान तान कर धर्मपुरके गढ़ की तरफ चलनेको उद्यत है। आपको पुत्रका साथ देना चाहिए।।

अब आइ जुड़ी यह विषम संधि
वह संक न मानइ जीति कंधि
वह अप्पु अप्पु अप्पउ भणेइ
वह अवरकोडि तिण वडि गणेइ ।।८४।।

अर्थ—अब यह विषम सन्धि आकर जुड़ गई है। वह आदीश्वर स्वामी कंधि अर्थात् बंधी हुई बाधाओंको जीतकर अब किसीकी शंका (भय) नही मानते हैं। उन्होने सब दंद-फंदको जीत लिया है। वे आत्मा, आत्मा कहकर अपनी आत्माका उच्चारण करते रहते है, और पर को तृणवत् गिनते (समझते) हैं।

व्याख्या—आत्मबल सबसे बड़ा बल है। वह आत्मविश्वाससे प्राप्त होता है। इसलिए आदीश्वरस्वामी केवल आत्मा-आत्माका ही ध्यान करते रहते हैं। उन्होने सभी विकारी भावोंको जीत लिया है, और अब पूरी तरह निश्चिन्त हो गए हैं। वे किसीकी शंका (भय) नहीं करते, इस

कारण से प्रबल हैं । यहाँ मदन और आदीश, इन दो प्रबल शत्रुओंका संयोग आ मिला है । यह कार्य बड़ा विषम है । ना मालूम किसकी विजय हो?

"मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ।।

आदीसर सिउं मिलियउ विवेकु
तिनि बइसिवि कियउ सुमंतु एकु
अप्पणउ दाउ सहु कोई गणंति
को जाणइ पासा किं ढलंति ।।८५।।

अर्थ—वह विवेक आदीश्वर शिवसे मिल गया है । उन्होंने विवेकको बैठाकर एक सुमन्त्र किया है । अपने-अपने दाँवको सभी कोई समझते (विचारते) हैं । कौन जाने पाँसा किस ओर पड़ता है । (कलिकालने इस प्रकारकी चिन्ता व्यक्तकी)

व्याख्या— चौपड़के खेलमें पासा डाला जाता है । किन्तु यह सुनिश्चित नहीं रहता कि सदा विजय हो ही । अतः यहाँ कलिकाल द्वारा संदेह व्यक्त करना स्वाभाविक ही है । यहाँ आदीश्वर भगवान शिव हैं । शिवने पहले मदनको भस्म कर दिया था । अब ये आदीश भगवान वीतरागी हैं, जिससे उनके पास पहुँच पाना ही कठिन है । इनके भीतर रागकी कथा ही नहीं है । जहाँ रागी नर-नारी हैं, वहीं राग की विजय होती है । वे परस्पर में मुग्ध हो जाती हैं और घोर नरक-कुण्ड में पड़ते हैं ।

विवेक की आत्मा से भी राग दूर निकल गया है । दोनों ही गुरु-शिष्य ने आपसमें भेद-विज्ञानका मन्त्रकर लिया है । वे आत्माका उच्चारण करते हैं और "शुद्धचिद्रूपोहं" का जाप करते हैं । वे निर्विकल्प बनकर आत्मध्यानमें मग्न हैं । "सर्वं निराकृत्य विकल्प जालं संसार कान्तार निपातहेतुं विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्वे ।।" उन्हें डिगाया नहीं जा सकता । निर्विकल्पसमाधि अभेद्य गढ़ है, जहाँ मदन पहुँच नहीं सकता । मदन का कार्य तो छठवें गुणस्थान तक बुद्धिपूर्वक है और वे ९वें गुणस्थान तक अबुद्धिपूर्वक हैं । आगे मैथुनसंज्ञा या संवेदपना नही है । मोह भी कषायरूप से अबुद्धिपूर्वक दशमगुणस्थान तक ही है । आगे जाने वाले मोहको क्षय करके ही जाते हैं । उन्ही आगे जाने वालोंमें ये दोनों शिवस्वरूप हैं । जिनका आत्मतेज अपूर्व है । एकत्व वितर्क नामका शुक्लध्यान, एकत्वको प्रकट करता है । जब एकत्वका निश्चय हो जाता है तो वहाँ अन्यत्वका प्रवेश ही नहीं होता ।

भटराज मोह मदन की सहायता-हेतु जाता है

दोहा छन्द :

इत्ती बात सुणेवि करि चिंति उप्पन्नउ कोहु ।
सैन सयल संवुहि करि इम चल्लिउ भडु मोहु ।।८६।।

अर्थ—(कलिकाल की) इतनी बात सुनकर मोहके चित्तमें क्रोध उत्पन्न हो गया । मोहभटने अपनी समस्त सेना एकत्रित कर व्यूहरचना की और इस प्रकार (युद्धके लिए) चल पड़ा ।

व्याख्या—कलिकालने मोहसे कहा कि राजवीर वही होता है जिसका अपना गढ़ होता है, सैनिक होते हैं, मंत्र बताने वाले योग्य गुरु होते हैं । अक्षयधन होता है । समय भी अनुकूल होता है । अंतरंगमे भावोंका उत्साह होता है । ये सभी भाव श्री १००८ आदीश्वर भगवान और विवेकके पास हैं । वे शान्तरस से युक्त सर्वोपरि वीर हैं । परन्तु मोहने इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, मंत्रियोंसे भी उसने कोई सलाह नहीं ली और अनुकूल अवसरके बिना ही प्रचण्ड क्रोधसे भरकर अपनी सेनाको सजा लिया ।

इस समय प्रभु और विवेक सहज स्वभावमें निमग्न हो रहे थे । उनका भूषण क्षमाधर्म था । उनके पास अपूर्व रत्नत्रयधन था । सभी प्रकारके शुद्ध गुण, उनके सैनिक थे । इस प्रकारके अवसरमें युद्ध नहीं करना चाहिए । परन्तु जब जिसका विपत्तिकाल आता है, उसकी बुद्धि मलिन हो जाती है—

"समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसामलिना भवंति ।।"

मोहकी भी यही स्थिति हुई । यहाँ मोहको भट कहा गया है । भटका अर्थ है विवेकहीन, जो कि बिना विचारे ही लड़ना जानता है । आगे पीछे की नहीं सोचता ।

वस्तु छन्द :

मोहु चल्लिउ साथि कलिकालु
जहिं हुंतउ मदन भडु तहिं सु जाइ वि कुमंतु कीयउ
गढु विषमउ धम्मपुरु तहिं सुसैन संवुहि लीयउ
दोनउं चल्ले पयज करि गब्बु धरिउ मनमाहि
पवनु प्रबलु जब उच्चलइ घण-घट केम रहाहिं ।।८७।।

अर्थ—मोहभटके साथ कलिकाल भी चला । जहाँ मदनभट था, वहाँ जाकर उसके साथ अच्छी तरह कुमन्त्रणाकी । जहाँ विषम धर्मपुर

गढ़ है, वहाँ जाकर अपनी श्रेष्ठ सेनाकी सम्यक् व्यूह रचना की । दोनों (मोह और मदन) अपने मनमें गर्वधारण कर साहसके साथ उसी प्रकार चले, जिस प्रकार प्रबल पवनके उछलनेसे सघन मेघोंकी घटा फट जाती है (छिन्न-भिन्न हो जाती है) ।

व्याख्या—मोह भट कलिकालको साथमें इसलिए लेकर चला कि वह धर्मपुरी गढ़के मार्गों से पूर्णरूप से सुपरिचित था । सुपरिचित आदमीके साथ चलनेसे अगम्यमार्ग भी गम्य हो जाता है । वहाँ से चलकर दोनों मदनके पास पहुँचे । वहाँ मिलकर तीनोंने कुमंत्रणाकी । कुमंत्रणा उसको कहते हैं, जिसमें दूसरेको जानसे मार दिया जाय । उसका सर्वस्व नष्ट कर दिया जाय, जिससे कि आगे उसकी परम्परा ही न चले । जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, उसे वैर-विरोध, हत्याही अच्छी लगती है । वह अच्छी विचारधाराको सुनता ही नहीं है । ऐसा राजा कुराजा कहलाता है। उसके सेवक भी उसी प्रकारके दुष्ट होते हैं ।

आदीश प्रभुने सुमन्त्रणाकी थी । अहिंसा धर्मसे परिपूर्ण विचार करनेको सुमन्त्र कहते हैं । वहां किसीके साथ वैर-विरोधकी कथा नहीं होती । सबके ऊपर क्षमाभाव होता है । शत्रु मित्र पर समभाव होना ही श्रमण संस्कृति है । जहाँ श्रमण-संस्कृति होती है, वहाँ निर्भयता विश्वस्तता भी रहती है। यह बात केवल मनुष्योंमें ही नहीं पशु-पक्षियोंमें भी देखी जाती है।

गाथा छन्द :

रहहिं सि किम घण घट्ट [1]जुड़िया सब सैन मिलिय गजयट्टं
सब मिक्कि चले सुभट्ट पयाणओ कियउ भडु मोह ।।८८।।

अर्थ—(प्रबल पवनके चलने पर) घनकी घटाएँ कैसे स्थिर रह सकती हैं अर्थात् एक दूसरेसे टकरा ही जाती हैं, उसी प्रकार सब सेनाके एकत्रित हो जानेपर गज, रथ, और घोड़ोंकी बहुत थट्ट (भीड़) हो गई । सुभट भी मिल कर चलने लगे । इस प्रकारकी सेना सहित मोह भट ने प्रयाण किया ।

व्याख्या—मोहराजा अपनी शक्तिसे मदनका साथ देने चला इसलिए साथमें सेना भी ले ली । सेना का **अर्थ** होता है—

"इनेनसहिता सा सेना"

स्वामीकी शोभा सेनासे और सेनाकी शोभा स्वामीसे होती है । सेनाके

---

१. ऐसा भी पाठ है:
जुड़िया दल सबल गज्जि गज ठट्टं
सब खिड़ि चलिय सुभट्टं

चार अंग होते हैं—हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल। मोह भटने चतुरंग सेना सहित प्रयाण किया। मोहराजा ही सेनापति था। बाजे और ध्वजाओंके साथ उनकी सेना चल पड़ी। मोहने प्रबल संग्रामकी तैयारीकी थी। उसका अभिप्राय था, कि मैं सब लोगोंका एक छत्र राजा हूँ, परन्तु मेरे राज्यमें यह एक बैरी उपस्थित हो गया है, जो मेरी आज्ञामें नहीं है। मुझे इस पर अवश्य विजय प्राप्त करना है। मैंने बहुत वीर देखे हैं। देखता हूँ यह कैसा वीर है? ऐसा सोचकर वह आगे बढ़ने लगा।

ग्यारह अपशकुन वर्णन

आभानक छन्द :

करिवि पयाणउ मोहु महाभडु चल्लियउ
सम्मुह झंखडु वाय बघूलउ झुल्लियउ
फुट्टउ जलहर कुंभ धाह तरुणीहि दिय
ले आइ तहिं[1]अगिणि धुकंती रंड-तिय ॥८१॥

अर्थ—महाभट मोह प्रस्थान कर जब चलने लगा तब उसके सम्मुख जंखड़ु (पत्ते और धूल भरी) और बघूलउं (गोल-गोल) वायु झुलने (चलने) लगी। जल का भरा हुआ घड़ा फूट गया। तरुणी स्त्रियाँ रोने, चिल्लाने लगीं तथा राँड-नारी (विधवा-स्त्री) धौंकती हुई ज्वाला वाली अग्नि वहाँ ले आई (इस प्रकार के अपशकुन हुए)।

व्याख्या—इस गाथामें कविने चार अपशकुनोंको उपस्थित किया है। १. प्रतिकूल वायु का चलना, २. जलसे भरे घड़ेका फूटना, ३. तरुणी स्त्रियोंका रोना, ४. विधवा नारीका धौंकती हुई ज्वाला अग्निको सामने लाना। मोहके प्रयाण करते समय ये चारों अपशकुन हुए। जब कोई व्यक्ति किसी कार्यकी सिद्धिके लिए घरसे निकलता है तो इस प्रकारके शकुन, अपशकुन उसके कार्यकी सिद्धि-असिद्धिकी सूचना प्रारंभमें ही दे देते हैं। इसलिए अच्छे पुरुष अपशकुन होनेपर प्रस्थान नहीं करते और समयकी अनुकूलता होने पर ही कार्यके लिए जाते हैं। इन शकुन निमित्तोंका वर्णन भद्रबाहुसंहिता आदि ग्रन्थों में आया है।

जब वायु पीछेसे आती है तो वह अनुकूल कहलाती है क्योंकि वह चलनेमें सहायक होती है किन्तु सामनेसे आने वाली वायु नेत्रोंमें प्रवेश कर जाती है और आगे चलनेमें बाधक होती है। इसलिए प्रतिकूल वायु कहलाती है। ऐसी वायुको बघुलया (बवंडर) वायु कहते हैं। पानी भरा

---

१ लह आगि धुरखंतिय

हुआ घड़ा मिलना शुभ है, लेकिन उसका फूट जाना अशुभ है। सधवा स्त्रियोंका रोना-चिल्लाना भी अशुभ सूचक है। विधवा स्त्रीको तो देखना ही अशुभ माना जाता है और यदि वह धौंकती हुई अग्नि लेकर सामने आए तो वह अत्यधिक अशुभ माना जाता है और विश्वास किया जाता है कि मानों वह किसी को भस्म कर देना चाहती है। इस प्रकार के अपशकुन होने पर भी अभिमानी राजा मोह ने कोई ध्यान नहीं दिया और अपनी युद्ध-यात्रा पर निकल पड़ा।

मुंडिय सिरु (नरु) नकटउ हत्थि कपालु जिसु
सम्मुह[1] हुई छींक पयाणउ करत तिसु।
तिण तुस चम्म कपास[2] सकोदव गुड लवण
मोह चलंतहं नगरहु हुए ए सवण ॥१०॥

अर्थ—(तत्पश्चात्) मुँह मुँडाए हुए नकटे नर को देखा, जो हाथी के कपाल (मस्तिष्क) जैसा था। प्रस्थान करते समय (नताके) सम्मुख राजा मोहकी स्वयं ही छींक हुई। इसके पश्चात् उसने नगरसे चलते समय तृण, तुष, चर्म, कपास एवं कोदों सहित गुड़ नमक आदि पदार्थोंको भी देखा। उसके प्रयाणके समय इस प्रकारके शकुन (अपशकुन) हुए।

व्याख्या--इस गाथा में भी आठ वस्तुओं के दर्शन मोह ने किए जो अपशकुन सूचक थी। सिर मुड़ाना लोकमें तभी होता है जब घरमें किसीका वियोग होता है। सिर मुँडाए मनुष्यको देखना अशुभ सूचक है। उस परसे उसका नकटा होना और भी अशुभतर होता है। इस प्रकारके मनुष्यको देखनेसे पता चलता है कि अपनी भी कहीं नाक कटने वाली है अर्थात् बेइज्जती या हार होने वाली है। अपनी छींक अपने सम्मुख होना यह भी अशुभ है। इस प्रकारकी छींक कार्यके निषेधको सूचित करती है। छींक पीछे होना ठीक है। यात्रा तो आनन्दका विषय है, इसमें छींक आना एकदम प्रतिकूल है।

यात्राके समय निरर्थक निकृष्ट पदार्थोंका देखना भी हानिकारक है। तृण निरर्थक है, तुषसारहीन है, चर्म मरणका सूचक है। कपास भी शरीरके लिए कार्यकारी नहीं है। कोदों निकृष्ट धान्य है। कर्दम सहित गुड़ नमक आदि पदार्थ घातक हेतु हैं। यद्यपि दर्शनशास्त्रमें कहा गया है कि इस प्रकारके दृश्य सर्वकालोंमें मरणके सूचक ही हों यह सुनिश्चित नहीं है जैसे—

"भाव्यतीतयोः मरण जाग्रद्बोधयोः नारिष्टोद्बोधौ प्रतिहेतुत्वं।" इस

---

१. होनइ
२. स कद्दम

प्रकारके अपशकुन होने पर उनका परिहार करना आवश्यक है। यद्यपि कार्य सामग्रीमें होता है। एक ही कारणसे नहीं होता—"कार्यस्यजनिका सामग्रीनैककारणं।" किन्तु फिर भी शुभ सामग्रीमें शुभ शकुन भी सम्मिलित है। सामर्थ्यका अप्रतिबन्ध तथा कारणान्तरका अवैकल्प यह उभयरूप सामग्री है। किन्तु मोहने गर्वके कारण किसी भी प्रकारके अपशकुनका विचार नहीं किया और आगे बढ़ने लगा।

प्रथम मजलि चल्लंतय[1] फौही फुक्करइ
[2]नाइक बांझुहु मालउ वत्तिय अणुसरइ
बांवइ कालउ विसहरु भुइ सिउं फणु हणइ
सुक्क विरख चडि जुगिणि बोलइ दाहिणइ ।।११।।

अर्थ—जब राजा मोह भट (सेना-सहित) आगे बढ़ा तो उसने पहली मंजिलमें देखा कि फौही (शृगाली) फुक्कार कर रही है। मालाके द्वारा (बाझुइ) बन्धा हुआ नायक चल रहा है, उसीसे बंधी हुई स्त्री भी खिसक रही है। बांयीं ओर काला विषधर नाग सरता हुआ अपने फणको पटक रहा है। सूखे वृक्ष पर चढ़कर दाहिनी तरफ जुगिनी (बिल्ली) बोल रही है।

व्याख्या—साधारणस्थिति में शृगाली सदैव मधुर शब्द बोलती है लेकिन जब किसी व्यक्तिकी भाग्यदशा उत्तम नहीं रहती तब यह उसके सम्मुख विकृत शब्दोंमें बोलती है। काकके स्वरकी भी यही स्थिति होती है। जाते हुए नायक पुरुषका मालामें बंधा होना एवं उसके पीछे स्त्रीका खिचा चला जाना भी कार्यकी हानि का सूचक है। काले सर्पका फन पटकना, बिल्ली आदि का सूखे वृक्ष पर चढ़कर दाहिने ओर बोलना भी पराजयकी सूचना देते हैं। इसका अभिप्राय है कि सूखे वृक्षके समान सभी कार्य फल रहित हो जायेंगे। मंगलमय यात्रा करने वाले इस प्रकारके अपशकुन देखकर कुछ समयके लिए यात्रा स्थगित कर देते हैं और विघ्न निवारणके उपाय करते हैं किन्तु मोहने अपनी प्रथम यात्रामें ही कुछ सोच-विचार नहीं किया और आगे बढ़ता गया।

सवण सुपमा न हु मानइ चडियउ गब्बि अति
कज्ज विनासण अवसरि पुरिसहं गइय मति
मजलि मजलि करि चल्लिउ धम्मप्पुर घरहि
सार जणाई आगम ध्यातम विहु अरहिं ।।१२।।

---

१ फउही फड़ करइ
२. नायक भागहु नाल गुवंती अणुसरइ

अर्थ—राजा मोह इन शकुनोंको प्रमाण मानता हुआ अत्यन्त गर्वमें चढ़ गया (गर्वसे परिपूर्ण हो गया)। कार्य नाशके अवसर पर पुरुषोंकी बुद्धि चली जाती (नष्ट हो जाती है) यह ठीक ही है इस प्रकार (यात्रामें) वह पड़ाव-पड़ाव करता हुआ धर्मपुरके घर की तरफ चला। वहाँ आगम और अध्यात्म नामके दूत थे, उनसे अपनी सार (रहस्यपूर्ण बात) बताई, (अपने आनेकी सूचना दी)।

व्याख्या—श्री आदीश्वरके आगम और अध्यात्म नामके दो दूत धर्मपुरीके द्वार पर पहरा दे रहे थे। राजा मोहने इन दूतोंको अपने आनेकी सूचना दी और बतलाया। शास्त्रोक्त युद्धनीति है कि पहले शत्रुके पास अपना संदेश भेजना तब उसके तैयार होने पर युद्ध प्रारंभ करना। मोहने इसी नीतिका पालन किया। आगम उसे कहते हैं, जिसमें सभी द्रव्यों तथा जीव के चारित्र व्रत, तप आदि का वर्णन होता है। अध्यात्म उसे कहते हैं, जहाँ शुद्ध आत्माकी दृष्टिसे आत्माका कथन होता है। भगवान आदिनाथके पास ये दोनों ही थे।

आदीश्वर की मदन पर चढ़ाई

आगम ध्यातम विण्णिचर तिनिहु जणायउ जाउ।
तुम्ह उप्परि मल्लाणियउ स्वामी मनमथु राइ ॥९३॥

अर्थ—आगम और अध्यात्म दोनों दूतोंने जाकर (भगवान आदीश्वरसे) कहा—हे स्वामिन्! तुम्हारे ऊपर मन्मथ सहित राजा मोह चढ़ाईके लिए आ पहुँचा है।

व्याख्या—दोनों दूतोंने जाकर ऋषभदेवको संदेश दिया कि मोह और मदन दोनों सेना लेकर लड़नेके लिए द्वार पर आ पहुँचे हैं। यहाँ कविने प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवका ही नाम लिया है क्योंकि १८ कोडाकोडी सागरके पश्चात् भरतक्षेत्रमें मोक्षमार्गका प्रारम्भ हुआ है। अतः मोह ने उस मोक्ष मार्गको रोकनेकी कोशिश की है। उसका विचार था कि सभी मेरे घोर-कुण्डमें पड़े रहे, कोई निकलने न पाए।

मडिल्ल छन्द :

सुणिवि बात मनि रहसु उपायउ
गरवत्तुणु न वि काइ वि लायउ
सार देइ विवेक्क बुलावहु
सभा जोडि शुभ मंतु उपावहु ॥९४॥

अर्थ—यह बात सुनकर (भगवान ऋषभदेवने) मनमें हर्ष ही उत्पन्न

किया । वे गर्वका थोड़ा भी भाव मनमें नहीं लाए । उन्होंने सार (समाचार) देकर विवेकको बुलाया और कहा कि सभा जोड़कर शुभ मन्त्रका उपाय करो ।

व्याख्या—दूतोंकी बात सुनकर ऋषभदेवके मनमें हर्ष हुआ । मोहके आगमनसे उनके मनमें थोड़ा-सा भी विकार भाव नहीं आया । यही उत्तम शूरोंका लक्षण है—"विकारहे तासति विक्रियन्ते येषां न चेतांसितौ सएव धीरा: ।" जिनेशने मोहको जीतनेके लिए युद्धमें जानेका विचार किया था किन्तु वह स्वयं ही आ गया । इसलिए उन्हें हर्ष हुआ—"यस्य देवस्य गंतव्यं स देवो गृहमागत: । ।"

उन्होंने विवेक को बुलाकर कहाकि—मन्त्रि-परिषद जोड़कर युद्धकी तैयारी करो । राजनीति यही है कि कोई भी संकट उपस्थित होने पर मन्त्रियोंसे सलाह करके, सेना सुसंगठित करके अवसर देखकर युद्ध करना ही विजयश्रीको प्राप्त कराता है ।

षट्पद छन्द :

समु दमु संवरु ढुक्कु ढुक्कु बइरागु सबल नरु
बोहितत्तु परमत्थु सयण संतोष गउरु भरु
छिमा सुमद्दउ मिलिउ मिलिउ अज्जउ मुत्तित्तउ
संजमु सच्चु सउच्चु अकिंचणु चाउ बंभवउ
बलु मंडि पिलिय करुणा अटलसासण बिनय बधाइयउ
ले फोज सबल संबूहि करि इम विवेक भडु आइयउ ।।१५।।

अर्थ—उस (सभामें सम, दम, संवर ने प्रवेश किया । वैराग्य रूप सबल नर आ पहुँचा । परमार्थ रूप बोधितत्त्व तथा गौरवसे भरे हुए सन्तोष आदि स्वजन भी आ गये । उत्तम क्षमा, मार्दव, धर्म भी आकर मिल गए । आर्जव और मूर्तिमान तप धर्म भी आ मिला । संयम, सत्य, शौच, अकिंचन, त्याग और ब्रह्मचर्य भी मिलकर आ गए । उन्होंने बल (सेना) को मॉडा (तैयारीकी) अटल करुण (दया) और शासन की विनय को विस्तृत किया । इस प्रकारकी फौज लेकर सबल संव्यूह बनाकर विवेक भट भी आ गया । (सामने खड़ा हो गया) ।

व्याख्या—ऋषभेश और मोह दोनों के पास भावोंकी सेना है एक तरफ स्वभावोन्मुख भाव है तो दूसरी ओर विकारीभाव है । आत्मामें जब मोक्षमार्गके भाव आते है तो एक दुर्भेद्य किला बन जाता है । स्याद्वाद

---

१. सहण.

शासनके सम्मुख एकान्तमत रूप गोले नहीं ठहर पाते । सम अर्थात् समता भाव—"दुक्खे सुक्खे वैरिणि बन्धुवर्गे योगे वियोगे भुवने वने वा निराकृता शेष ममत्व बुद्धे, समं मनो मेऽस्ति सदापि नाथः ।।" दम अर्थात् इन्द्रियोंका वशीकरण, संवर-आश्रव विरोधी वैराग्य-शरीर, भोग, संसारसे रागका अभाव, परमार्थ-यथार्थ, सम्यक्, बोधितत्त्व रत्नत्रय, सयण-स्वजन और दशधर्म । इन सभी ने मिलकर सेना बनाई । दया और विनयको बढ़ाया । इस प्रकारके बलशाली नरों की सेना विवेकने तैयारकी,जो पूर्णरूपसे भाव सापेक्ष है ।

गाथा छन्द :

हक्कारि बड्डु चरित्तं सज्जिउ तप सैनु सबलु संबूहो ।
गह गहिउ जैन चित्तं, जब चल्लिउ रिसह जिणणाहो ।।९६।।

अर्थ—(ऋषभजिनेशने) चारित्र रूप (सम्यक्रत्नत्रयरूप) भटको हकाकर (बुलाकर) तथा तपकी सेनाके द्वारा सबल संव्यूह बनाकर ग्रहसे अर्थात् जैनधर्मकी रस्सीसे चित्तको ग्रहण (वशमें) कर ऋषभ जिनेश चले (प्रस्थान किया) ।

व्याख्या—जैनशासनमे चारित्रको महाभट बतलाया गया है । उससे ही कर्मोका क्षय होता है । उसको विवेकने शीघ्र बुलाया । द्वादश तप विवेकके शरीरपर चमकने लगे । अत: मूर्त्तरूप बन गए । आत्म रूप से (जैन मन्त्र) से चित्तको बाँध लिया । इस प्रकारकी अपूर्व शक्तिसे पूर्ण समृद्ध जो हो वही देव है । जिनेश्वर इन शक्तियों से समृद्ध है, अत: उनके समान कोई दूसरा देव नहीं है ।

एकावली छन्द :

आदीश्वर के शुभ शकुनों का वर्णन

चल्लियउ रिसह जिणिंद स्वामी वियसियउ मनकमलु
तितु पंथि सम्मुह आइयउ नत्थियउ मयमथु धवलु
मिरदंग तूरी संख भेरी झल्लरी झंकारु
दाहिणइ सुंदरि सबद मंगल गीय करहिं उचारु ।।९७।।

अर्थ—जब ऋषभ जिनेश स्वामी चलने लगे तभी उनका मन रूप कमल विकसित हो गया । उसी मार्गसे चलते समय उनके सम्मुख नाथा हुआ उज्ज्वल वृषभ आ गया । मृदंग, तुरही, शंख, भेरी, झल्लरी (घंटा) की झंकार होने लगी । दाहिने हाथकी तरफ सुन्दरियाँ (तरुणी महिलाएँ) मंगल गीतोंका उच्चारण कर रही थीं ।

व्याख्या—आदीश्वर देवाधिदेवने जब युद्धके लिए प्रयाण किया तब मार्गमें उत्तम शकुन हुए। प्रभुका युद्ध नीतिमार्गका था, अतः शुभ चिन्होंका प्रकट होना आवश्यक है। यहाँ तीन शकुनोंका वर्णन विशेष रूपसे किया गया है। प्रथम शकुन वृषभका है। आदिनाथ भगवानका चिह्न भी वृषभ ही है फिर स्वप्नदर्शनोंमें भी प्रथम स्वप्न बैलका है। बैलका अर्थ भारवाहो है। भगवान ऋषभदेवने भी धर्मका भार उठा लिया है। इसीको प्रकट करने वाला प्रथम शकुन नाथा हुआ धवल बैल सम्मुख आ गया। "नाथा हुआ" का अभिप्राय वशमें रहने वालेसे है। कविने "आइयउ" शब्दका प्रयोग किया है, जो इस बातका सूचक है कि ऐसे शकुन चाहनेसे नहीं मिलते, वे तो स्वयमेव उपस्थित हो जाते हैं।

दूसरा शकुन वाद्योंकी मधुर झंकारका है तथा तीसरा सुन्दरनारियों द्वारा मधुर स्वरमें गीत गाना। अभी तो प्रभुकी यात्राकी प्रथम मंजिल है। उसमें ही मधुर गीत-वादित्र द्वारा विजयकी सूचना मिल गई। जीव-काण्डमें मनकी रचना "वियसिय अट्ठच्छदाविदवा" बतलाई गई है। अतः मन कमल कहा गया है। शान्ति और हर्षपूर्वक चलना, शत्रु पर भी समभावका सूचक है। दाहिने हाथको संसारमें शुभ माना गया है। यहाँ वर्णित सभी लक्षण विजयकी सूचना दे रहे हैं।

ले हाथि पूरण कलसु लखमी मिलिय सम्मुह आइ
पावक्क दीपक ज्योति समसरि देखिया जिणराइ
सव्वत्थ सुरही अति अनुपम काढ़ता सु गुवालु
पइसंतु पवलिहि दिट्ठु नरवइ कर गहेउ करवालु ।।९८।।

अर्थ—पूर्ण जलसे भरा हुआ कलश हाथोंमें लिए हुए लक्ष्मी (सौभाग्यवती नारी) सम्मुख आकर मिली। जिनराजने प्रज्ज्वलित दीपक ज्योति बराबर अपने सामने देखी। सर्वत्र अति अनुपम सुरभी गायोंसे दूध निकालते हुए ग्वालोंको देखा। किसी राजाको हाथोंमें तलवार लिए हुए पौली (गली) में प्रवेश करते देखा।

व्याख्या—यात्रा के समय सामने पूर्णकलश का मिलना संसारमें महान् सफल शकुन माना गया है। यह कार्यकी पूर्ण सफलताको व्यक्त करता है। दीपककी ज्योतिको एक समान जलते हुए देखना जगमगाते यशको प्रकट करता है। जैसी ज्योति होती है वैसी ही कीर्ति प्राप्त होती है। सुरभि गायों से दूध दुहते ग्वालोंको देखनेसे तात्पर्य है कि इस प्रकारकी गाएँ जिनके घरमें होती हैं, वे तो समृद्धिशाली होते ही हैं, साथही देश

और राजाको भी समृद्धिशाली बनाती है। ऐसी गायोंको कामधेनु कहा जाता है। कोई राजा तलवार लिए हुए सामनेसे प्रतोलीमें प्रवेश कर रहा दिखलाई देना प्रभुत्वको सूचित करता है।

निलटासु बांवइ बोलियउ चढ़ि सुपफल बिरखह ढाइ
इकु निउल जुअलु पलोइयउ साबइ चडियउ आइ
दहि भरे भाजन गूजरी सनमुख पहूंती आई
गरजंतु सुणियउ केहरी सिरि धरिउ चउंर उठाई ।।९९।।

अर्थ—(यह भी देखा कि) निलटा (कोकिल) आम्रफलके वृक्ष पर चढ़ी है और वहां बैठकर बोल रही है। एक नेवला-युगल (जोड़ा) को सर्पके ऊपर चढ़ा देखा तभी दहीसे भरे हुए पात्र लिए गूजरी (ग्वालिनें) सामने आ पहुँची। अपनी पूँछ रूपी चँवरको उठाकर सिर पर रखे हुए गरजते केहरी (सिंह) को सुना और देखा (इस प्रकार जिनेश्वर ने ये चार शकुन और देखे)।

व्याख्या—वसन्त ऋतुमें आम्रमंजरीको खानेके पश्चात् ही कोयलका गला खुलता है और वे मधुर स्वरमें कूकने लगती हैं। यहाँ भी वसन्त ऋतुका समय है, कोयलोंका मधुर स्वर शुभ अवसरकी सूचना देता है। नकुलोंके जोड़ेका सर्प पर चढ़ना अर्थात् सर्पपर विजय प्राप्त करना, आदिदेवकी विजयकी अग्रिम सूचना देना है। गोपियों (ग्वालिनों) को दहीका पात्र लिए हुए देखना कार्यकी सिद्धि करानेवाला है तथा सिंहको अपनी पूँछ चँवरकी तरह पीठ पर रखे हुए देखना और उसकी गर्जना सुनना अति उत्तम फलको प्राप्त करानेवाला है। इस प्रकारके शुभ शकुन प्रभुकी यात्रामें हुए।

दुइ दिट्ठ गयवर अति सुउज्जल करत भल गज्जार
वर आँव फल नारिंग निहाले अवरु कुसुमह हार
सब सुपण सवण सुजोग उत्तम लद्ध पोतइ जाम
जे नीति मारगि पुरुष चालहिं तिन्हरु सीझहिं काम ।।१००।।

अर्थ—(और भी) अत्यन्त उज्ज्वल दो हाथियों को भली (उत्तम) गर्जना करते हुए देखा। सुन्दर आम (आम्रफल) नारंग (सन्तरा) फल और पुष्पहार भी देखा। (उन्होंने) ये सब स्वप्न, शकुन और उत्तम सुयोग्य जहाज के समान प्राप्त किए जिस प्रकार समुद्र या नदी पार करने के लिए जहाज मिल जाता है ठीक उसी प्रकार जो पुरुष न्याय-नीति मार्ग से चलते हैं उनके सभी कार्य सिद्ध (सफल) होते हैं।

व्याख्या—हाथी को भगवानकी माताने दूसरे स्वप्नमें देखा था। चलते

हुए प्रभुने भी हाथियोंके जोड़ेको देखा । हाथीको देखनेसे अटल उज्ज्वल यशाकी प्राप्ति होती है । उत्तम फलोंको देखनेसे उत्तम परिणाम प्राप्तिको सूचित करती है । पुष्पहार यह व्यक्त करता है कि प्रभुके गलेमें जय रूपी माला सुशोभित होगी । न्यायमार्गसे चलनेवालोंको इस प्रकारके एकसे एक सुन्दर शुभ शकुन मिलते हैं । प्रभु आदीश्वर न्यायमार्गी हैं । उनकी भक्ति पूजा से एवं उनके निमित्तसे सभी सदाचारियोंके कार्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं । यहाँ साक्षात् प्रभुही युद्धके लिए सन्नद्ध हुए हैं, इसलिए सभी शुभ-शकुन दृष्टिगोचर हुए ।

वस्तु छन्द :

दिट्ठ उत्तम सवण ए आम
गढ़ पाखलि उत्तरिय सुमति पंच सावान छाइय
मनु सूरहं गहगहिउ जसु निसाणु परगट बजाइय
दोनउं ढुक्के सबल दल मिलिय सुभट मुख जोडि
रणु देक्खिवि जे नर खिसहिं तिन्हकी जननी खोडि ।।१०१।।

अर्थ—(भगवान आदीश्वरने) जब इन सभी शकुनोंको देखा तब वे गढ़-पर्वतसे उतरे । वे अपने साथ पाँच-समितियोंका सामान भी लिए हुए थे । जैसे ही निशान (युद्धके बाजे) बजने लगे, वैसे ही शूरवीरोंका मन गहगहाने (उछलने) लगा । जब दोनों ही सेनाएँ दल-बलके साथ परस्पर में मिली तब शूरमा तो मुख जोड़कर परस्परमें मिल गए लेकिन जो नर युद्ध (भीषणता) को देखकर खिसकने (कायर होनेके कारण भागने) लगे, उनकी माता थोड़ी (बन्ध्या) है ।

व्याख्या—भगवान इन शुभ शकुनोंको देखनेके पश्चात् अपने गढ़ पर्वतसे नीचे उतरे । उनके साथ सामानके रूप में पाँच समितियाँ भी थीं । अर्थात् वे देखकर चलते थे । देखकर पैर उठाते थे, हित-मित वचन बोलते थे, शुद्ध भोजन करते थे और मूल-मूत्र का योग्य स्थानमें क्षेपण करते थे । यद्यपि भगवानको मल-मूत्र नहीं होता इसलिए क्षेपणका प्रश्न ही नहीं है । तथापि समिति अवश्य होती है तथा उस संस्कारका आरोपण किया जाता है । रणमें वाद्य बजते ही वे शूर-वीर प्रभु युद्धके लिए तत्पर हो जाते हैं उनकी माता सच्ची माता थी किन्तु जो कायर पुरुष रण क्षेत्रको देखकर भाग जाते हैं, उनकी माता बन्ध्या है ।

पद्धडी छन्द :

तिन्ह जननि खोडि जे मज्जि जाहिं

पच्चारिय न पउरिषु कराहिं
रण अंगणु देखिवि सूरवीर
पेरणी जेम नच्चहिं गहीर ।।१०२।।

अर्थ—जो वीर (रणभूमि में) न तो शत्रुको डाँटते हैं और न ही अपना पौरुष (बल) दिखलाते हैं तथा रणसे (मुख मोड़कर) भाग जाते हैं, उनकी माता खोड-वन्ध्या है। शूरवीर वहीं है, जो रणांगण में पेरणी (चकरी) की तरह गम्भीर रूपसे नाचते (सफलता प्राप्त करते) हैं।

व्याख्या—रणभूमिमें युद्धको देखकर वीरोंमें स्वतः ही आवेश आ जाता है और वे सोचने लगते हैं कि इस युद्धमें विजयश्री को अवश्य प्राप्त करना है। इस प्रकारके दृढ़ निश्चयके साथ ही उनमें वीर रसके स्थायी भाव उत्साहका उदय हो जाता है और वे तदनुरूप लड़ने लगते हैं तथा शारीरिक क्रियाके साथही उनके वचनोंमें भी तीव्रता आने लगती है और वे परस्परमें कहने लगते हैं—आजा, मेरे सामने, मैं देखता हूँ; तुममे कितना बल है, क्यों गर्व करता है? मेरे वार को रोक। अपने शस्त्रोंको संभाल। इस प्रकार मन, वचन, काय की चेष्टाएँ उनके शूरत्वको प्रकट करती हैं। फिर वे स्थिर नहीं रह सकते, न शत्रु से डरते हैं और न पीठ ही दिखाते हैं, जो पुरुष शूर नहीं है, वे पीठ दिखाकर युद्ध क्षेत्रसे भाग जाते हैं। चुप रह जाते हैं, डरके मारे छिप जाते हैं। उनकी माता "वीर माता" कैसे कही जा सकती है। इस प्रकारका पुत्र अपने वंशके गौरवको नष्ट करता है और माता-पिताके नामको भी लज्जित करता है।

आयउ पहिले अज्ञानु घोरु
तिहि ज्ञानि पछाडिउ करिवि जोरु
मिथ्यातु उठिउ तब अति करालु
जिनि जीव रुलाये नन्त कालु ।।१०३।।

अर्थ—(युद्धमें) सर्वप्रथम अज्ञान (मोहराजा का सैनिक) नामक भयंकर वीर आया। उसको ज्ञान (आदीश्वरका सैनिक) नामके वीरने जोर पूर्वक पछाड़ दिया तब मिथ्यात्व नामका अत्यन्त विकराल वीर उठा (खड़ा हो गया) जिसने अनन्तकाल तक जीवोंको (सभी गतियोंमें) रुलाया है।

व्याख्या—सर्वप्रथम मोहका अज्ञान नामका वीर युद्ध क्षेत्रमें लड़नेके लिए आया। ऋषभदेवके ज्ञान नामके वीरने उसे क्षण भरमें परास्तकर दिया। जैसे सूर्यकी एक ही किरण अन्धकार को नष्ट कर देती है। उसी प्रकार ज्ञान एक अपूर्व सूर्य है। उसकी अद्‌भुत महिमा है। सम्यक्त्व

की प्राप्ति होने पर सभी अज्ञान कुमति, कुश्रुत आदि सुमति सुश्रुत, ज्ञानसे परिवर्तित हो जाते हैं। ज्ञानका अर्थ है स्वरूपको ज्योंका त्यों जान लेना। अज्ञानके पश्चात् मिथ्यात्व मैदानमें उतरा। इस मिथ्यात्वने अनादिकालसे जीव को चारों गतियोंमें भ्रमण कराया है। यह प्रभावशाली है। जिसको एक बार पकड़ लेता है फिर छोड़ता नहीं है।

घल्लियउ कुमग्गिहि लोउ तासि
तिनि मुसिउ न को को करि विसासि
अणादि कालि जो नरह सल्लु
बहु भिडइ सुभटु एकल्लु मल्लु ॥१०४॥

अर्थ—उसने (मिथ्यात्वने) लोगोंको कुमार्गमें ढकेल (डाल) दिया उसका विश्वास किस-किसने नहीं किया? जिस-जिसने भी किया, उसने उन सबको मूसा (लूटा) वह अनादि कालसे मनुष्यादि जीवोंके साथ शल्य (काँटे) की तरह लगा हुआ है। वह अकेला ही ऐसा मल्ल (वीर) है, जो बहुत सुभटोंसे भिड़ता है (उसकी शक्ति अपरिमित है)

व्याख्या—मिथ्या अभिप्रायको मिथ्यात्व कहते हैं। आत्मा और शरीरको एक मानना, विषयोंमें सुख मानना, एकान्त मत हैं। विपरीत, एकान्त, विनय, संशय, अज्ञान, क्रियावादी, अक्रियावादी आदि भेदोंसे वह अनेक प्रकारका है। जितने जीव हैं, उनके जो-जो अभिप्राय हैं, वे यथार्थ से दूर हैं। यही मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व अनादिकालसे चला आ रहा है। यही संसार है, उसने सभी जीवोंके भावोंको विपरीत बनाकर ज्ञान, चारित्र धनको लूट लिया और ज्ञानको मिथ्याज्ञान तथा चारित्र को मिथ्याचारित्र बना दिया। वह जीवके साथ ऐसा घुलमिल जाता है कि उसके विकारी होनेका पता ही नहीं लगता। यह अन्तरंग शत्रु बड़ा योद्धा है। उसकी शक्ति अपरम्पार है।

लोगा लोगोत्तरु दुहु पयारि
जिसु सेवत भमियइ गति चयारि
समिकतु सूरु तब सु दिढु होइ
बलु मंडि रणिहि जुट्टियउ सोइ ॥१०५॥

अर्थ—मिथ्यात्व दो प्रकार का होता है—पहला लोक (गृहीत) और दूसरा लोकोत्तर (अगृहीत) इनका सेवन करनेसे जीव चारों गतियों में भ्रमण करता रहता है। (इस प्रकार के मल्ल मिथ्यात्वको देखकर) सम्यक्त्व नामका शूरवीर दृढ़ (क्षायिक) होकर अपने बल (सेना) को माँडकर (स्थापित) कर युद्ध-स्थलमें आकर उपस्थित हो गया।

व्याख्या—मिथ्यात्व का सामना करनेके लिए युद्धक्षेत्रमें सम्यक्त्व आया। सच्चे देवशास्त्र गुरू का श्रद्धान, स्वपर का श्रद्धान, सात तत्वोंका श्रद्धान, सम्यक्त्व कहलाता है। दर्शन मोहनीयके उपशम, क्षयोपशम एवं क्षयसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। क्षयसे प्राप्त होने वाला सम्यक्त्व दृढ़ निर्दोष एवं अविनाशी होता है, चलायमान नहीं होता। इसकी प्राप्तिसे चौथे भवमें मोक्ष हो ही जाता है। इस प्रकारकी आत्माकी आशक्ति रूप सम्यक्त्व अत्यन्त वीर है:-

फाटियउ तिमिरु जिम देखि भाणु
भग्गियउ छोडि सो पढम ठाणु
बहु रागु चलिउ गरजंतु गहीरू
वइरागि हणिउ तकि तासु तीरू ।।१०६।।

अर्थ—जिस प्रकार सूर्यको देखकर तिमिर (अन्धकार) फट जाता है, उसी प्रकार सम्यक्त्व को देखकर प्रथम गुण स्थान नामका मिथ्यात्व भी युद्ध-स्थल छोड़कर भाग (अदृश्य हो) गया। उसके बाद (उसका साथी) राग (विषयानुराग) गम्भीर गर्जना करते हुए आया। उसको आते देख वैराग्यने ताक कर (लक्ष्य बनाकर) तीर मारा तब वह भी अदृश्य हो गया।

व्याख्या—प्रथम गुणस्थान मिथ्यात्व है—

"मिच्छोदयेण मिच्छत्तम सहणतु तच्च अत्थाणं।" वह मिथ्यात्व अयथार्थ था। अतः वह यथार्थ सम्यक्त्व के सम्मुख नहीं ठहर सका। उसको युद्ध करनेका साहस ही नहीं हुआ। उसके साथी रागको भी वैराग्य नामक वीरने तीर मारकर भगा दिया। सच्चे सुखमें सुख मानने रूप वैराग्यके सामने झूठे सुखमें सुख रूप बुद्धिवाला वह राग नहीं ठहर पाया। मोह राजाके मिथ्यात्व और राग, दोनों प्रबल वीर हार गए। धर्मानुराग (प्रभात) के सामने विषयानुराग (रात्रिका अन्धकार) फट गया।

मिथ्यात्व दो प्रकारका होता है। १. लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक मिथ्यात्व तीन मूढ़ता, छहअनायतन, तथा पर उपदेश से गृहीत कहा जाता है। लोकोत्तर मिथ्यात्व पर उपदेशके बिना स्वतः स्वभावसे उत्पन्न हुआ, पर वस्तुओंका स्वामी, शरीरमें निजबुद्धिरूप होता है। सम्यक्त्व भी दो प्रकारका होता है। निसर्गज और अधिगमज। जो बिना किसी उपदेशके प्राप्त होता है उसे अधिगमज कहते हैं। यहाँ वीतरागका सम्यक्त्व से ही प्रयोजन है। उस वीतरागके सामने मिथ्यात्वकी सत्ता भी नही टिक सकी।

उठि धाइ दुसहु तव विषय लग्गु
पचक्खाणु देखि बलु पहइ भग्गु

उठि कोहु चलिउ झाला करालु
तब उपसमि ले हणियउ कवालु ।।१०७।।

अर्थ—विषय (इन्द्रियों) नामके जो और भी वीर थे, वे दुस्सह रूपसे दौड़ कर आ गए वे सभी प्रत्याख्यान (संयम) नामके वीरका बल देखकर (भयके कारण) पथ (मार्ग) से ही भाग गए। उसके बाद क्रोध (कषाय) नामका वीर विकराल ज्वालाके समान चला तब उपशम भटने उठकर उसके कपालमें मारा (वह भी धराशायी हो गया)।

व्याख्या—विषय अर्थात् अविरति दो प्रकारकी है। १. इन्द्रिय अविरति और २. प्राणी अविरति। जीव अनादिकालसे दोनों अविरतिका सेवन कर रहा है। उस विषय वीरने प्रत्याख्यान वीरको देखा। प्रत्याख्यान संयम को कहते हैं। इसके दो भेद हैं। १. इन्द्रिय-संयम और २. प्राणी-संयम। संयम वीर के समक्ष विषय-वीर खड़ा नहीं रह सका, वह भाग खड़ा हुआ। इसके पश्चात् क्रोध नामक वीर उपस्थित हुआ। उसका प्रतिकार क्षमा वीरने किया। क्षमाने अपने प्रहार से क्रोध का नाम शेषकर दिया। आत्मामें कलुषता का उत्पन्न होना क्षमा कहलाती है। वह आत्माकी महान् शक्ति है। जहाँ क्षमा रहती है वहाँ क्रोध एक क्षण भी नही ठहर सकता इसीलिए कहा गया है—"क्षमावीरस्यभूषणं।" क्षमा वीरोंका आभूषण है।

मद अट्ठ सहितु गज्जियउ मानु
तिनि महवि जित्तउ करिवि तानु
तब माया उट्ठिय अति करूरि
मलि अज्जवि दिण्णिय हेट्ठि चूरि ।।१०८।।

अर्थ—(तत्पश्चात्) मान नामका वीर अपने आठों मद सहित गरजने लगा। मार्दव (नामके वीर) ने उन सभी को कमान तान कर जीत लिया, तब अत्यन्त क्रूर माया उठकर लड़नेको तैयार हुई। उसे आर्जव वीरने नीचे पटककर मल-मलकर (मसल-मसलकर) चूर्ण कर दिया (उसकी श्वास निकाल दी)।

व्याख्या—युद्ध भूमिमें दो वीर परस्पर युद्धके लिए आते हैं। उनमें जो बलवान होता है, वह निर्बलको भूमिमें पटककर उसकी छाती पर चढ़ जाता है और मसल-मसल कर उसे प्राण रहित कर देता है। तभी योद्धाकी विजय मानी जाती है। यहाँ भी कविने परस्परमें भावोंके युद्धका वर्णन किया है। मार्दव अर्थात् कोमलताने मानको और आर्जव अर्थात् सरलताने मायाको दबोच लिया एक क्षण भी उसे भागनेका अवसर नहीं दिया।

इस वर्णनसे साक्षात युद्धका चित्रात्मक रूप उपस्थित हो गया है। सम्यग्दृष्टिकी आत्मामें इसी प्रकारका द्वन्द्व चलता रहता है किन्तु जो वीर होता है, विजयश्री उसका दामन पकड़ लेती है। आदीश प्रभुकी आत्मा ऐसी ही वीर है। वहाँ विकार उपस्थित होते ही नहीं है। जहाँ के तहाँ सत्तामें से किनारा कर जाते हैं अर्थात् पर रूप उदय होकर निकल जाते हैं।

बावीस परीसह उठिय गज्जि
लखि धीरज सुभटहि गइय भज्जि
आइयउ कलहु तब कल कलाइ
दंडि गयउ दुसहु तिसु खिमा धाइ ।।१०९।।

अर्थ—तब बाइस परीषह उठकर गर्जना करने लगी। वे सभी धीरज नामके सुभट (वीर) को देखकर भाग गई तब कलकलाता (हल्लाकरता) हुआ कलह नामका वीर सामने आया। उसके पीछे क्षमा दौड़ी तब वह दुस्सह भी दौड़ा चला गया।

व्याख्या—उपसर्ग, परीषह आदि बाधक कारण धैर्यशाली पुरुषों पर ही तीव्र आक्रमण करते हैं। उनके रोकनेका एक मात्र उपाय धैर्य है। धैर्य के समक्ष सभी हार जाते हैं। इन परीषहोंसे भगवानके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सका। ६ मास तक भगवानने उपवास धारण किया फिर छह मासतक विधि न मिलनेके कारण आहार ग्रहण नहीं कर सके। अत: एक वर्ष तक क्षुधा परीषह सही पर धैर्यशाली होनेके कारण उन्हींकी विजय हुई। जहाँ क्षमा होती है, वहाँ कलह नहीं रहती। कलह दोनों पक्षोंसे होती है। क्षमा सदैव भगवानके साथ रही। अत: उन्हें कलहको देखनेका अवसर ही नहीं मिला। भगवानके सान्निध्यमें मनुष्य तो क्या पशुओंका भी बैर-विरोध (कलह) समाप्त हो जाता है। उनके अतिशयोंमें बतलाया गया है—नहीं अदया, उपसर्ग नहीं, नहीं कवलाहार। सब जीवोंमें मैत्री भाव।

ढुक्कियउ झूठु मूरखु अंगेजु
सतराइ गंवायउ तासु खोजु
कुस्सीलु पहुत्तउ दुट्ठचित्तु
बलु करिवि विदारिउ बंभव्रत्तु ।।११०।।

अर्थ—जब झूठ ने मूर्ख को अंगेज (अंगीकार) किए हुए (रणांगण में) प्रवेश किया तब सत्यराजा ने उसकी खोज (अस्तित्व) को मिटा दिया। इसके पश्चात (दुष्ट चित्तवाला कुशील भी आ पहुँचा। उसे ब्रह्मचर्यव्रत

ने बल लगाकर विदार (खंड-खंडकर) दिया ।

व्याख्या—वीर सत्यके सामने झूठ नहीं ठहर सकता । सभी वीर अपनी अंग रक्षाके लिए कवच धारण करते हैं । झूठ भी मूर्खताका कवच धारण किये हुए था । सत्यने उसकी खोज को मिटा दिया । "खोज" शब्द बुन्देली भाषाका है, जिसका अर्थ अस्तित्व होता है । ब्रह्मचर्य के सम्मुख कुशील भी स्थिर नहीं रह सका । वह दुष्ट चित्त प्रभुको अपने लालचमें फँसाना चाहता था किन्तु स्वयमेव विदीर्ण हो गया । सीताका ब्रह्मतेज ऐसा था कि महाबली रावण उसका स्पर्श भी नहीं कर सका। प्रभुका आत्मशौर्य भी ऐसा ही था कि कुशीलका कार्य सिद्ध नहीं हो सका—

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि ।

नीतिमनागपि मनो न विकारमार्गम् ।।

दलु चल्लिउ मोहह मुहु फिराइ
तब लोभ सुभदु भी जुड़िउ आइ
तिनि दारुणि बलु मंडिउ बहुत्तु
उनि विकट बुद्धि सिउ देसु धुत्तु ।।१११।।

अर्थ—जब मोहका दल (हारकर) मुँह फिराकर चलने लगा तब लोभ नामका वीर भी आकर (मोहकी सेना में) शामिल हो गया । उसने लोभने अपना अत्यन्त दारुण बल माँडा (शक्ति प्रदर्शित की) और अपनी विकट (तीक्ष्ण) बुद्धिसे शिव (आदिनाथ) प्रभुको भी धुत्तु (धोखा) दिया ।

व्याख्या—मोहका अस्तित्व एकादश गुणस्थान तक है । लोभका उदय भी दसम गुणस्थान तक है । वह उदय दो क्षुद्रप्रमाण कालके लिए उपशम हो जाता है । अर्थात् मृत तुल्य हो जाता है । पुनः प्रबुद्ध होकर वह जीवको नीचे गिरा देता है । उसके उदयसे जीव क्रमसे दसवें, नौवें, आठवें, सातवें, छठवें गुणस्थान तक आ जाता है । आदीश प्रथमको भी लोभने धोखा दिया और उन्हें भी गिरकर छठवें गुणस्थानमें आ जाना पड़ा । लोभ ऐसा नाच नचाता है कि जीव यथाख्यात से किंचित् दूर ही रहता है ।

बहु दुखी करइ नितु पुरुष संत
बहु व्यापि रहिउ सहु जीव जंत
बहु लकइ खिणिहि खिणि मज्झि जाइ
छलु करिवि बहुवि संचरइ आइ ।।११२।।

अर्थ—यह लोभ सन्त-पुरुषोंको नित्य दुखी करता रहता है । वह सभी जीव-जन्तुओंमें अधिकता से व्याप (अधिकार किये हुए है) रहा है।

वह क्षण भर लड़ता है क्षणभरमें भाग जाता है और फिर छल पूर्वक लौटकरसंचरण कराने लगता है ।

व्याख्या—लोभकी महिमा अवर्णनीय है । वह साधुओंको भी निदान करा देता है । वे साधु "दुक्खक्खओ कम्मक्खओ" आदि रूप निदान करने लगते हैं । इसलिए कहा है—"मोक्षपि यस्याकांक्षा तस्य मोक्षेन विद्यते ।" श्री अकलंकदेवने तत्वार्थराजवार्तिकमें लोभके चार प्रकारोंका वर्णन किया है—१. आहारका लोभ, २. आरोग्यका लोभ, ३. यशका लोभ और ४. जीवितका लोभ । धनका लोभ, आहार लोभमें समाहित है । लोभकी चार संज्ञाएं प्रत्येक जीवके साथ लगी हैं । वह लोभ सबको दुःखी करता है । एक बार उसने प्रभुको भी धोखा दिया । वह उपशम (शान्त) हो गया । पुनः उदयमे (होश में) आ गया । वह अन्य कषाय रूप भी हो जाता है । इसीका अभिप्राय है कि क्षण भरमें भाग जाना, फिर क्षण भरमें आ जाना । ऐसा कार्य नौवें गुणस्थानमें कृष्टिकरणके समय होता है ।, जब कषायोंको कृश करते हैं लोभका नाश सबसे अन्तमें होता है ।

दसमइ गुणठाणइ लगु चडेइ
बलु करइ अधिकु नहि जाण देइ
तिसु देखि परक्कमु खलिय राइ
संतोषु तव सु उट्ठिउ रिसाइ ।।११३।।

अर्थ—यह लोभ दसवें स्थान पर चढ़ जाता है और पराक्रम दिखलाने लगता है तथा (प्रभुको) उसके आगे जाने नहीं देता, जिसके कारण राय (आदीश्वर प्रभु) कुछ स्खलित होते हैं, कुछ पीछे खिसकते हैं तब सन्तोष नामक वीर रिसाकर (क्रोधित होकर) उठा ।

व्याख्या—कर्म ग्रन्थोंमें लोभका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है । दसवें गुणस्थानमें उदय रूप सूक्ष्य लोभ है । वह ध्यान रूप परिणामों में अबुद्धिपूर्वक विकार उत्पन्न करता है । उस समय उससे कर्मो का (१६ प्रकृतियोंका) आस्रव भी होता है—"पढमं विग्घं दंसणचउ जसउच्चं च सुहुमंते ।।" (५ ज्ञानावरण, ५ अन्तराय ४. दर्शनावरण, १ यश, १ उच्चगोत्र) ।

समयसारमें लोभको ज्ञानका जघन्य परिणाम कहा गया है । यह लोभ सबको सता रहा है । जर, जोरु, जमीन, इच्छाएं ये सभी लोभकी पर्यायें हैं, जो इच्छाओंका दास होता है, वह सभी का दास होता है—

"इच्छाया: ये दासास्ते दासा भवंति सर्वलोकस्य ।।"

अतः लोभ सर्वथा त्याज्य है ।

तिसु सीसि हणिउ ले वज्रदंडु
खडहडिउ लोभु पडियउ प्रचंडु
यहु देखि जुद्ध सो कलिय कालु
खिण मांहि फिरिउ ना रडु वि तालु ।।११४।।

अर्थ—(सन्तोषने) उस लोभके सिरमें वज्रदण्डसे मारा, जिससे वह प्रचण्ड लोभ हड़बड़ाकर गिर पड़ा। इस प्रकार सन्तोषकी विजय हुई। इस युद्धको देखकर कलिकाल क्षण भरमें लौट पड़ा। न वह रोया, न चिल्लाया और न ही ताली बजाई (एकदम चुपचाप रहा)।

व्याख्या—लोभका विरोधी भाव सन्तोष है। जब लोभने छलपूर्वक लड़ाईकी तब सन्तोष शान्त नहीं रह सका। उसने लोभके मस्तिष्क पर वज्रदण्डका प्रहार किया, जिस कारण वह सदाके लिए मर मिटा। गाथामें आए हुए "हड़बड़ाकर गिर पड़ा" का अभिप्राय है कि लोभकी बंधव्युच्छित्ति पहले ही नौवें गुणस्थानमें हो गई थी। दसवें गुणस्थानमें एकसाथ, अन्तसमयमें उदय और सत्त्व की व्युच्छित्ति हो गई। अब आगे बारहवें गुणस्थान में जानेका मार्ग प्रशस्त हो गया। अब कोई भी बाधक न रहा। तब कलिकालने मुख फेर लिया वह कुछ भी नहीं बोल सका।

तिणि तजिय कुमति सुहमति उपाइ
विव्वेक-सखाई हुयउ आइ
जो चलण न देतउ मुत्तिमग्गु
कर जोडि सु स्वामी चलण लग्गु ।।११५।।

अर्थ—कलिकालने अपनी कुमतिको छोड़ दिया और सुमति उत्पन्न की। वह विवेकके पास आकर उसका मित्र बन गया, जो मोक्षमार्गको चलने नहीं देता (व्याघात बना हुआ) था, अब उसने स्वामीके हाथ जोड़े।

व्याख्या—कलिकाल बहुत दिनोंसे मोहकी संगतिमें रह रहा था। अतः उसकी यह कुमति रहती थी कि कोई भी मोक्षमार्गमें न चलने पाए। उसकी कुमति अब शुभमतिमें परिवर्तित हो गई कि मोक्षके मार्गमें स्वामी जैसे वीर आगे बढ़े। इसमें हमारी क्या हानि है? यही सब सोचकर उसने विवेकके साथ दोस्ती कर ली। इस अवसर्पिणी कालमें भोगभूमिके प्रथम, द्वितीय, तृतीय काल पूरे हुए। जिनके नाम हैं—सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमादुःखमा,। तृतीय कालमें ही पल्यका आठवां भाग शेष रहने पर भोगभूमिका अन्त हो गया था। उस समय तक १४ कुलकर हो चुके थे। ऋषभदेव ने कृषि, मसि आदि का उपदेश दिया। अतः वे १५वें

कुलकर कहलाए । तृतीयकाल की समाप्तिके पूर्व ही ३ वर्ष ८ मास, १५ दिन शेष रहने पर ही प्रभु मोक्ष चले गए । कलिकालकी यह शुभमति हो गई इसीलिए मोक्षका मार्ग प्रशस्त हो गया ।

आसरउ उड्डिउ सब विधि समत्थु
रणमज्झि भिडिउ करि उब्भ हत्थु
संवरु बलु आणिवि ताम चित्ति
तिसु कोड्डय मूलु उपाडि थित्ति ।।११६।।

अर्थ—इसके पश्चात् आस्रव वीर सभी प्रकारसे समर्थ होकर उदित (प्रगट) हुआ और अपने दोनों हाथ जोड़कर युद्धके मध्य जाकर भिड गया, तब संवर नामक वीर अपनी शक्ति लगाकर प्रभु-चित्तमें बैठ गया, उस संवरने आस्रवकी स्थिति नष्ट कर, उसकी जड़ ही उखाड़ डाली ।

व्याख्या—कर्मसिद्धान्त-सम्बन्धी शास्त्रोंका कथन है कि जब प्रभु बारहवें, तेरहवें गुणस्थानमें जाते हैं तब वहाँ सातावेदनीय कर्मोंका आस्रव होता है । वह आस्रव वीरके समान प्रभुका रास्ता रोककर कहता है कि अभी आप सातावदनीय कर्मोंका भोग करें । तब संवर वीर उसे रोकते हुए कहता है—कि तुम्हारी तो अब स्थिति ही नहीं रह गई है । तुम ईर्यापथ आस्रव हो, जो शीघ्रही समाप्त हो जाने वाले हो । प्रभुको रोकनेकी अब तुममें सामर्थ्य नहीं है । आत्माका तपोबल ही संवर करता है, जिससे सम्पूर्ण आस्रवोंका अभाव हो जाता है ।

बहु भिडिय सुभट रणमहि पचारि
के मरग्गिय के घल्लिय सुमारि ।
जे कर्म हुंति दल महि प्रचंड
तप सरि किए ते खंड खंड ।।११७।।

अर्थ—बहुत से सुभट रणमें चलकर आ भिड़े । (संवरके सामने आते ही) कई वीर तो स्वयं ही मर गए और कई मार डाले गए, जो घातिया कर्म (मोहको छोड़कर, तीन थे) दलमें प्रचण्ड थे, उनको तप नामके शूरने खण्ड-खण्ड कर दिया ।

व्याख्या—अज्ञान, अदर्शन, अवीर्य नामके अनेक वीर युद्धभूमिमें आकर लड़ने लगे । उनमेंसे अनेक वीर तो तत्काल ही नष्ट हो गए और कुछ अन्तर्मुहूर्त्तकाल में मर गए । आदीशप्रभु में केवलज्ञान, केवलदर्शन, वीर्य आदि गुण प्रकट हो गए और वे सकलपरमात्मा अर्हन्तदेव बन गए । कर्मसिद्धान्तसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब तुम अपनी आत्मामें रत्नत्रय, धर्म आदि स्वभावोंको प्रकट करोगे और आदीश्वर प्रभुकी तरह

कर्मोंसे युद्ध करते हुए उनके मार्गपर चलोगें तभी मुक्तिके मार्गपर जा सकते हो। इसलिए मोहराजाकी सेवा छोड़कर अपने बल पौरुषसे आगे बढ़ो।

जब बात सुणी यह मोहराइ
तब जलिउ बलिउ उट्ठिउ रिसाइ
करि रत्त-नयण बहु दंत पीसि
अणिहाउ पडिउ जणु टूटि सीसि ॥११८॥

अर्थ—जब मोहराजा ने (अन्य घातिया कर्मोंको नाश होनेका समाचार सुना) यह बात सुनी, तब (अन्दरही) जल, भुन गया और क्रोधित होकर उठा। उसने अपने नेत्रोंको आरक्त किया तथा दाँतोंको बहुत पीसा। जिस प्रकार कटे सिर वाले मनुष्यका धड़ बिना सहारेके गिर पड़ता है उसी प्रकार वह (मोह) भी गिर पड़ा।

व्याख्या—प्रस्तुत गाथामें कविने मोहके दुःखका वर्णन किया है। संसारमें जिस प्रकार कोई व्यक्ति इष्ट वियोग होने पर अथवा मानहानि होनेपर ईर्ष्यावश भीतर ही भीतर जलता है और मनही मन रूसता है, उसी प्रकार अपने वीरोंका प्राणान्त और ऋषभप्रभुकी विजय देखकर मोह भी ईर्ष्याकी अग्नि में जलने लगा। क्रोधकी प्रबलताके कारण मोह भूमि पर धड़ामसे गिर पड़ा, वह ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उसका सिर कट गया हो। क्रोधसे मनुष्यके शरीर की शक्ति नष्ट हो जाती है। मनुष्य आगे पैर उठाकर चलनेमें असमर्थ हो जाता है। क्रोधके कारण मोहकी भी यही स्थिति हुई। उसका कोई भी अभिप्राय सफल नहीं हो सका। अब उसको कौन पूछेगा? कौन त्रिलोक विजयी कहेगा? इसी प्रकारके विचारोंसे वह अत्यन्त दुखी हो गया।

बहु रुद्द रूपि हुइ डहिउ आपु
सोक करइ बहुत जीवह संतापु
रडवडिउ सु रणमहि दुसहु धाइ
तिसु संमुहु न ढुक्कइ कोई आइ ॥११९॥

अर्थ—मोह भयंकर रौद्ररूपवाला होकर स्वयं ही जलने लगा और जीवोंको अत्यधिक संताप करने वाला (देने वाला) हो गया। वह दुस्सह रणमें दौड़ा (क्रोध में अपनेको नहीं सम्हाल सका) और फिसल पड़ा। उसके सामने आकर कोई भी खड़ा नहीं हो सका।

व्याख्या—संसारमें क्रोधी की दशा मोहके समान ही होती है। मोह क्रोधाग्निसे अपने आपको जला रहा था। जिस प्रकार किसीके जल जाने पर उसका सारा शरीर भयंकर रूपसे लाल हो जाता है, उसकी भयंकरताके

कारण दूसरे लोग उसकी तरफ देख नहीं पाते, उसी प्रकार क्रोधाग्निसे जले हुए मोहके भयंकर रूपको देखकर सब लोग डल गए। कोई भी उसकी सहायताके लिए उसके पास नहीं आया, जिससे मोह और अधिक दुःखी हो उठा।

वस्तु छन्द :

कोइ न ढुक्कइ सँमुहु तिसु आइ
बलु पोरिषु सब हरिउ मलइ अमलु सो अचलु चालइ।
वइरागहु चारितहु तपहु अवरु संजमहु टालइ।
अट्ठावीसउं पयइ लागि लग्गइ जिसु कहुं धाइ।
सो नरु अम्मणु मरणु करि बहुती जोणि भमाइ॥१२०॥

अर्थ—उसके सामने आकर कोई नहीं ढुका-खड़ा हो सका। उसका सब बल पौरुष नष्ट हो गया, जो मोह अमल था वह रण में मलिन हो गया। जब वह अचल हो गया (उठ नहीं सका) तब चाल (पुकार करने लगा)। सहायता के लिए वैराग्य, चारित्र, तप और संयम (दौड़े) आए पर उस मोहने उन्हें भगा दिया। तब कहीं पीछे से दौड़कर २८ प्रकृतियाँ उसके चरणों में आ गिरीं। जो मनुष्य उस मोहके पीछे लगता है, वह बहुत योनियों (८४ लाख योनि) तक जन्म-मरणका चक्कर काटता रहता है।

व्याख्या—मोहकी सेवाके लिए चारित्र, तप एवं संयम जैसी सद्वृत्तियाँ वहाँ दौड़ी आई लेकिन मोहने उन्हें पास नहीं फटकने दिया। उसने विचार किया कि यद्यपि ये सज्जन हैं, फिर भी मेरे द्रोही हैं। कहीं ऐसा न हो कि ये मुझे और कष्ट दें, या मुझे मार ही डालें। इसलिए उसने उन्हें दूर से ही भगा दिया। सज्जन पुरुष आपत्तिकालमें शत्रुकी भी सहायता करते हैं। उनका स्वभाव ही इस प्रकारका होता है। नीतिकार ने कहा है—"अरावप्युचितं कार्यं तत्र गृहमुपागते। नहि-छेत्तुः पार्श्वगतांछायां संहरते द्रुमः॥"

चारित्रमोहनीय के २५ भेद (१६ कषाय और ९ नोकषाय) और दर्शन मोहनीय के ३ भेद। कुल मिलाकर २८ प्रवृत्तियाँ होती हैं। ये प्रवृत्तियाँ दौड़कर मोहकी सेवामें लग गई, जो सज्जन मोहकी सेवा करते हैं, वे उसीके समान दुर्जन बन जाते हैं।

विवेक का पराक्रम

तव बुलायउ देवि आदीसि
विव्वेकु जु सबल भडु अपुव्वकरण थानकि वइट्ठिउ

अवगंजण मोहकउ ज्ञानबुद्धि अवलोइ दिट्ठउ
प्रेरिउ तब तिणि सीख कहि दे असिवरु सुइ झाणु ।
वेगि निवारहु धुत्त दुइ जिम प्रगटइ णिव्वाणु ।।१२१।।

अर्थ—तब देव आदीश्वरने विवेकको बुलाया । विवेक बड़ा शक्तिशाली वीर था । वह अपनी शक्तिसे अपूर्णकारण (आठवें) गुणस्थान में बैठा था और नवीन नवीन अपूर्णपरिणाम कर रहा था, जो मोह कृत ज्ञान-बुद्धि को अवमंजण (मर्दन) करने वाले हैं, भगवानने उनको ज्ञानसे अवलोकन करके देखा तथा विवेकको बुलाकर प्रेरणा एवं शिक्षा दी, साथ ही शुक्ल ध्यान नामका असिवर (तलवार) प्रदान किया और कहा कि—"इन दोनों धूर्तों (मोह और मदन) को तुम यहाँ से निकाल बाहर करो, जिससे निर्वाण प्रगट हो ।

व्याख्या—भगवानकी सबसे लिए ही शिक्षा है कि मोह और मदन दोमों वीरों को निकालनेके लिए अपने परिणामोंको शुद्ध करो । इस मोहका कभी विश्वास न करो । यही निर्वाणको रोकता है । तुम शूर हो, शूरतासे काम लो । इस मोह पर शुभ ध्यान रूपी शस्त्रसे काम लो । इस मोह पर शुभ ध्यानरूपी शस्त्र से प्रहार करो । वही तुम्हारा शस्त्र है । इसी प्रकारकी शिक्षा उन्होंने विवेक को देकर सावधान किया और कहा कि इसीके द्वारा तुम मोह और मदन को पराजित करके निर्वाण को प्रकट करो ।

गाथा छन्द :

प्रगटावण मुत्ति पहो चडियउ विव्वेकु सज्जि भूपालो ।
सरवण्ण चलणि लग्गिवि ले उनमतु चल्लियउ राम ।।१२२।।

अर्थ—विवेक नामका भूपाल (राजा सजकर शस्त्रधारण कर) सर्वज्ञ देवके चरणोंमें लगकर तथा उनका मन्त्र लेकर मुक्ति पथको प्रकट करनेके लिए राम ही (अकेला ही) चढ़कर चल दिया ।

व्याख्या—विवेक आठवें गुणस्थानमें स्थित था । आदीश प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर वह अकेले ही मदन और मोह जैसे दुर्दान्त वीरोंको पराजित करने तथा मुक्ति पथको प्रकट करनेके लिए शान्त भावको धारण कर रणभूमि की ओर चल पड़ा ।

चउपइया छन्द :

उनमतु ले चल्लिउ मभमाहें खिल्लिउ उपनी बहुत समाधी
रणि अंगणि आयउ साथह भायउ नट्ठी कुमति कुव्याधी ।
रंजिय सहि-सज्जण जिम पावस-घण दुज्जण मत्थइतालो

मोहह मय खंडणु ज्ञानह मंडणु चडिउ विवेकु भुवालो ।।१२३।।

अर्थ—जब विवेक राजा अनुमति लेकर (युद्धके लिए) चला, उस समय वह अपने मनमें बहुत ही प्रफुल्लित हुआ। उसे बहुत प्रकार की समाधी (ऋद्धियाँ) उत्पन्न हुई अर्थात् वह निर्विकल्प शुक्लध्यान मे पहुंच गया। वह रणांगण (युद्धभूमि) में आ पहुँचा। साधुओं को भी (उसका यह कार्य) अच्छा लगा। विवेककी कुमति रूपी बुरी व्याधि भी नष्ट हो गई। जिस प्रकार वर्षके मेघ सभीको प्रसन्नता से आप्लावित कर देते हैं, उसी प्रकार विवेकने भी सभी सज्जनोंको प्रसन्नता से परिपूर्ण कर दिया। दुर्जनोंके मस्तिष्क पर वह विवेक बज्रके समान था। अपने ज्ञानका मण्डन (भूषण) करनेके लिए एवं मोहके घमण्डको खण्डन (चूर) करनेके लिए राजा विवेक सजकर चला (ध्यानमें स्थिर हुआ)।

व्याख्या—भगवानकी अनुमति लेकर विवेक राजा युद्धके लिए चल पड़ा। वह आठवें गुणस्थानसे नौवें गुणस्थान में चढ़ा। वहाँ उसके भाव और भी निर्मल हुए जिनसे बहुत सी ऋद्धियाँ उत्पन्न हो गई। जिन्होंने उसकी मोह जनित सभी कुमतियाँ दूर कर दीं और श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन: पर्ययज्ञान, उत्पन्न हो गए। इससे सभी दुर्जनोंके सिर पर वज्रपात हो गया तथा सज्जनोंके मन प्रसन्न हो गए। इसप्रकार मोहके मद को नष्ट करने एवं ज्ञानको विभूषित करनेके लिए विवेक ने रणभूमिमें प्रवेश किया।

तिसु बज्झे जे नर दीसहिं ते खर कित्तिय कम्भि न काजे
जिन कहुं परसण्णा पुव्विल पुण्णा से राणे ते राजे
ते अविरुड भत्तिहि णिम्मल चित्तिहि विकसित वदन रसालो
मोहह मय खंडणु ज्ञानहमंडणु चडिउ विवेकु भुवालो ।।१२४।।

अर्थ—उस (मोह) से बँधे हुए जो भी मनुष्य दिखलाई पड़ते हैं, वे किस काल में खर (गधा) नहीं कहे गए। जहाँ कहीं भी (मनुष्योंमें) प्रसन्नता दिखलाई पड़ती है, (वह मोह की मंदता है) वे पूर्व पुण्य के कारण राजा हैं। वे अविरत (निरन्तर) भक्ति करते हैं और निर्मल चित्त वाले हैं। वह राजा विवेक, जिसका मुख रूपी कमलफुल्लित है, मोह के मर्दन एवं ज्ञानको विभूषित करने के लिए चढ़कर चला।

व्याख्या—मोह की ऐसी गाँठ है कि जो प्राणी इसमें एक बार बँध जाता है, वह सदा के लिए भारवाही हो जाता है। जिस प्रकार कुली भार ढोता है, उसी प्रकार जीव भी जन्म-जन्मान्तर तक इस मोहके भारको ढोता रहता है। भार ढोने का फल उसे कुछ भी नहीं मिलता। अत: उसका सारा श्रम निष्फल हो जाता है। धोबी का गधा इसी अर्थमें प्रसिद्ध है। इसी प्रकार जो मोहसे बँधे हैं, वे भी गधेके समान हैं। किन्तु जिसमें मोह मन्दता आ

जाती है उसके परिणामोंमें विशुद्धता आ आती है, वे सुखी और प्रसन्न दिखलाई पड़ते हैं। कुछ पूर्व पुण्यके सहयोगसे भी मोहके भार को उतार फेंकते हैं तथा बन्धनसे रहित होकर स्वतन्त्र बन जाते हैं।

जब तक भावोंमें निर्मलता नहीं आती तब तक जीव अन्धा भी कहा जाता है किन्तु जब वह पाले हुए परिग्रहका परिमाण कर लेता है या सम्पूर्ण परिग्रहका त्यागी बन जाता है वही राजा है। जैसे कहा भी गया है—

"अकिंचनोहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भीः।"

इसी प्रकारके निर्मोहसे ज्ञानका मण्डन हुआ है।

जो दल बल पूरो सब विधि सूरो पंचहं मांहि परवीणो
परमत्थउ बुज्झइ आगमु मुज्झइ धम्म-झाणि नितु लीणो।
जो फेडइ दुरमति आणइ सुभमति बहु जीवह रखवालो
मोहह मय खंडणु ज्ञानह मंडणु चल्लिउ विवेकु भुवालो ।।१२५।।

अर्थ—वह राजा विवेक दल (सेना) बल (शक्ति) से परिपूर्ण एवं सभी प्रकार से शूरवीर है। वह पाँच प्रकारके संयमोंमें प्रवीण है तथा परमार्थको जाननेवाला है। वह आगममें मग्न (मुज्झई) रहने वाला (साथ ही) धर्मध्यानमें नित्यलीन रहनेवाला है। वह दुरमतिको फेड़ने (नाश करने) वाला और शुभमतिको लाने वाला तथा सभी जीवों का रक्षक है। इस प्रकार ज्ञानको प्रतिष्ठित करने वाला राजा विवेक मोहका खण्डन करनेके लिए चल पड़ा।

व्याख्या—यहाँ विवेककी महिमाका दिग्दर्शन कराया गया है। महिमा मन-वचन और कायके बलसे आती है। विवेकके मनका बल ध्यानरूप है, जो पूरा है। उसका कायका बल भी पूरा है। वह पाँच प्रकारके सामायिक, छेदोपस्थापना परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्म-साम्पराय, यथाख्यात संयमके आचरणमें प्रवीण है। निर्दोष पंचमहाव्रती है, पंचसमितिमें दक्ष है। वह वचन बल में भी पूरा समर्थ है। पूर्णरूप से आगम का ज्ञाता है और साथ ही परमार्थको भी जनता है।

विवेक पूरी तरह से संघटित है। संगठनमें बड़ी शक्ति है। इस संगठन का फल है कि वह अपने ममत्वको तो छोड़ ही चुका है लेकिन अन्य जीवों सम्बन्धी विकारी भावोंको भी छुड़ा देता है। वह जिसकी ओर देखता है, उसके भी कषायादि भाव छूट जाते हैं और तत्काल शुभ मति उत्पन्न हो जाती है। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि दूर होकर सुमति, सुश्रुत, सुअवधि उत्पन्न हो जाती है। यह सुमति मोहके क्षयोपशममें प्रगट होती है। तभी संसारके नाशका उद्यम होता है। विवेकने स्वयं आचरण करके मोहसे छूटनेका उपाय किया और दूसरोंको बतलाया अतएव वह महान है।

जो दव्वई खित्तई जाणइ थित्तई काल भाव सु वियारइ
नयसुत्तहि सत्थिहि भेयहि अत्थिहि संकट विकटनिवारइ ।
जो अगमु विभासइ निरउ भासइ मदन खनन कुद्दलो
मोहह मय खंडणु इणइ मंडणु चलिउ विवेक भुवालो ।।१५३।।

अर्थ—जो द्रव्य क्षेत्र को जानते हैं, स्थिति, काल और भावको विचारते हैं तथा जो नयसूत्रोंसे शास्त्रोंसे, भेदोंसे, अर्थोंसे विकट संकटको दूर करते हैं, जिनके ज्ञानमें आगम-पदार्थ भी भासते हैं और निर्णय भी प्रकाशित होते हैं, तथा जो मदनको खोद फेंकनेमें कुदालका काम करते हैं, ऐसे ज्ञानका मण्डन करनेवाला राजा विवेक मोहके मदका खण्डन (नाश) करनेके लिए चढ़कर चल दिया ।

व्याख्या—यहाँ विवेकके ज्ञानकी महिमा को दर्शाया गया है । जैन शास्त्रों में किसी भी पदार्थके विचारके लिए सभी नयसूत्रोंसे द्रव्य, क्षेत्र, काल भावका विचार किया जाता है । तभी निर्णय पूरा होता है । द्रव्यके विचार से निश्चयनयसे उसके असली व्यक्तित्वका स्वरूप जाना जाता है और व्यवहार नयसे वर्तमानके अशुद्ध स्वरूप को । उसकी अनेक प्रकार की पर्यायोंको भी इसी माध्यमसे जाना जा सकता है । दुधानुसे द्रव्य शब्द बना है । द्रव्यका अर्थ है— जो पर्यायोंको प्राप्त हुआथा, प्राप्त होता है और प्राप्त होगा, वह द्रव्य है, जिसके द्वारा प्राप्त किया जाता है, ऐसा कर्त्ता कारण रूप से स्वतन्त्र है । इस प्रकार ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय लक्षण वाला सत् स्वरूप है, गुण पर्याय युक्त है । देवागम में कहा गया है—"द्रव्यगुणपर्यायाणं त्रिकालानां समुच्चयः । अविभ्राड्भावसंबंधों द्रव्यमेकमनेकधा ।"

द्रव्य के प्रदेशों को क्षेत्र कहते हैं । प्रदेश जितने लम्बे चौड़े है, वैसा ही द्रव्य भी होता है । परिणमन को काल कहते है और शक्तियोंको भाव कहते है । इस प्रकार इन चारों को स्वचतुष्टयके नामसे पुकारा जाता है । अस्तित्वपूर्वक ही सबका विचार किया जाता है । अतः सत्का ज्ञान आवश्यक है । इसी ज्ञान से विकट संकट, संशय, अज्ञान, विपर्यायादि अनेक प्रश्न दूर हो जाते हैं । यही सम्यग्ज्ञान है । यह मदनको जड़ से उखाड़ फेंकता है । सागारधर्मामृत में कहा गया है—

"ज्ञानिसंग तपोध्यानेरप्य साध्योरिपुः स्मरगदेहात्म भेदज्ञानोत्थ वैराग्येणैव साध्यते ।"

उस विवेकके ज्ञानकी अपूर्व महिमाथी ।।

षट्पद छन्द :

पाप-पटलनिद्दलणु ज्योति परमप्प पयासणु
चिन्तामणि यहु रयणु भव्वजण मण उल्लासणु
सकल कल्याणहं कोसु सकल आरति भय पिल्लणु
सिद्धिगत जीव अवठंभ धम्मधुर भारह झिल्लणु
संतुट्ठ होइ जिसु नरु मिलिउ तासु न पाडइ कम्मफहु
चडियउ विवेकु भडु भजि इम प्रगट करण निव्वाण पहु ।।१२७।।

अर्थ—(चढ़ाईके निम्न कारण हैं) १. पाप—पटलको निर्दलन (नष्ट) करना २. परमात्म ज्योतिको प्रकाशित करना । ३. चिन्तामणि रत्न अपनेको बताना ३. भव्य जीवोंके मन में उल्लाश उत्पन्न करना । ५. समस्त कल्याणोंका कोष बतलाना । ६. सभी आर्त्त भयको भगाना । ७. सिद्धिगत (शरणागत) जीवों को अवलम्बन (सहारा) देना । ८. धर्मधुराके भारको झेलना ९. संतुष्ट होकर जो जीव इससे मिलते हैं उनको कर्म द्वारा कहीं पटकने न देना । १०. निर्वाण पथ को प्रकट करना इन कारणोंको लेकर विवेक भट मोहको भगानेके लिए आरूढ़ होकर चल दिया ।

व्याख्या—इस रणांगणमें कविने विवेक द्वारा मोह पर चढ़ाई करनेके दस कारण बतलाए हैं । १. पाप सबसे बड़े मिथ्यात्व है । तदनंतर हिंसादि कषायें हैं । इन सबका कारण मोह ही है । अत:इसका अस्तित्वही समाप्त कर देना । २. इस पाप पटल के दूर हो जानेसे आत्माके भीतरसे परमात्माकी ज्योति प्रगट होती है । आत्माकी निर्मलता ही परमात्मा है । ३. चिन्तामणि-रत्नकी प्राप्तिसे तात्पर्य है, निर्मोही होना । यह विवेक ज्ञान ही सकल सुखोंका दाता है इसलिए इसका आश्रय ग्रहण करके पूर्ण सुख की प्राप्ति करो । ४. भव्य जीवोंके मनमें उल्लास प्रकट हो अर्थात् वे पूरी तरह निर्भय हो जाएँ । ५. मोहका अभाव सर्व कल्याणोंका कोष है । इस बातकी प्रतीति करना । ६. सकल इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग, वेदना, निदान रूप आर्त्त से होने वाले भयको दूर करना । न मोह रहेगा और न ही आर्त्त रहेगा । सातवाँ- ७. मोहका अभाव हो जानेसे सिद्धिगत (शरणागत) जीवोंके लिए विवेक ही सबसे बड़ा सहारा है । सभी मुनिगण पाप-पुण्यको छोड़ देने पर इसकी शरण में रहते हैं । यह सभी जीवोंको बतलाना । ८. अब इस वीतरागता रूप धर्मका भार मैंने उठा लिया है इसलिए तुम लोग निर्भय रहो । ९. कर्म और कर्मफल चेतना तुम्हें कोई योनिमें नहीं पटक सकती है । अब ज्ञान चेतनामें रहो ।

यह विश्वास दिलाना। १०. मोहके अभावमें सब कर्मों का अभाव रूप मोक्ष अवश्य ही होगा। यह दृढ़ निश्चय करानेके लिए विवेकने मोह पर चढ़ाई की।

पद्धड़ी छन्द :

णिवाण मग्ग पगटाण कज्जि विव्वेक सुभटु तव चडिउ सज्जि।
जब कोयउ दीयउ तेंण आइ मुहु चालिउ तब मोहराइ॥१२८॥

अर्थ—निर्वाण-मार्ग प्रकट करनेके लिए विवेक सजकर चला। रणभूमिमें पहुँचकर उसने भूमिमें पड़े हुए मोहको जोर से धक्का दिया तब मोह राजा मुखमोड़कर वहाँसे चला गया।

व्याख्या—निर्वाण मार्ग अभी तक मोहके कारण अवरुद्ध पड़ा था। भगवान आदीशकी आज्ञासे वीर विवेक अपना बल तैयार कर रणांगणमें पहुँचा। अर्थात् आगे अनिवृत्ति करण, सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थानमें चढ़ा। वहाँ शुक्लध्यानका बल बढ़ाया। यही रणांगण में चढ़ना कहलाता है। परिणामों की शुद्धिसे मोहका नाश होता है यद्यपि दसवें गुणस्थान तक लोभ वीर है और ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशम (अनुदय) रूप है। उसका उदय न हो इसके लिए ऋषभदेव ने मंत्र दिया। जिससे विवेक ध्यानमें मग्न हुआ। उपशम रूप मोह पड़ा हुआ था। विवेकने उसे अपने ध्यान की ठोकर मारी जिसके कारण वह वहाँ से भागा।

देखियउ मदनि जब खिसतु मोहु
तब अप्पु चलिउ मनि करिवि छोहु
वै दोनउं ढुक्किय काल कंधि
वै भिडिय रणंगणि फोज बंधि॥१२९॥

अर्थ—मदन ने मोहको खिसकते देखा तब मदन भी अपने मनमें क्षोभ करता हुआ रणसे चला। वे दोनों रणसे आगे कलिकालके कन्धे पर चढ़कर चले और आगे चलकर फौज (सेना) का बन्ध (व्यूह) बाँधकर रणांगण में आकर भिड़ पड़े (लड़ने लगे)।

व्याख्या—मोहको भागते देखकर मदन भी हतोत्साहित होकर उसके पीछे भागा परन्तु कुछ कालमें पुनः सावधान होकर वे दोनों उदयमें आ गये अर्थात् विवेक उपशम श्रेणी में चढ़कर पुनः नीचे आ गया। अभी मोक्ष-मार्ग खुलनेमें कुछ समय शेष है। अतः तीव्र उदयमें आ गया अर्थात् सातवें, छठवें, गुणस्थानमें आ गया। जो विवेकी भव्य जीव है, वही इसके पूर्णरहस्यको अच्छी तरह समझ सकते हैं। कविने सुन्दर शब्दोंमें

सुललित छन्दोंमें गूंथकर अपने अनुभवको अभिव्यक्ति प्रदान की है।

वै अणिय जोडि जुट्टिय भुवाल
तहँ पडहिं खग्ग जणु अगणिझाल
तेय लेए गोले मिलंति
ते सीय लेए झाला झलंति ।।१३०।।

अर्थ—वे दोनों राजा (मोह और मदन) अनीक (सेना को) जोड़ (इकट्ठा) कर युद्ध में जुट गए और रण में खड्ग पटकने लगे, वे खड्ग अग्नि की ज्वाला के समान दे : (खड्ग के माध्यमसे) तेजोलेश्या (पीतलेश्या) रूपी गोले छोड़े जा रहे थे। उसे (विवेक) शीत लेश्याकी झाला (धारा) से शान्त कर रहा था।

व्याख्या—यहाँ पर युद्धका भीषण वर्णन किया गया है। दोनों विपक्षी योद्धा विभिन्न प्रकारके शस्त्रोंसे युद्ध कर रहे हैं। मोह और मदनके पास जितने भी अस्त्र-शस्त्र हैं, वे उन सभी का प्रयोग विवेक राजा पर कर देते हैं। मोह-मदन खड्गों के माध्यमसे तेजो लेश्या रूप गोले छोड़ रहे थे। अर्थात् शरीरसे तेज (अग्नि) निकालना रूप गोले छोड़ रहे थे। वहाँ पर विवेक निर्भय रूपी खड्ग से सामना कर रहा था। उसके शरीरसे शीत (शान्ति) रूप लेश्या-किरणें निकल रही थीं। जो अग्निको शान्त कर रही थी। दर्शनकी दृष्टिसे यह तात्पर्य है कि मोह कर्म की उत्तर प्रकृति रूप सेना जोड़कर दोनों लड़ रहे थे। मानों विवेक की आत्मामें विकार उत्पन्न कर रहे थे। राग नामका लिंगभाव प्रकट किया जा रहा था। वही लिंग-विकार-खड्ग है। तब विवेक वैराग्यकी खड्ग से उसे दूर हटा देते थे। तब मोह मदन ने तेजोलेश्या रूप अग्नि छोड़ी जिसे विवेक ने अपनी शीत लेश्या अर्थात् दृढ़ सामयिक संयम की धारा से शान्त कर दिया। इस प्रकार इस भाव-युद्ध का रूपक के माध्यम से प्रस्तुतिकरण किया गया।

वे रहिय सुभट तहँ अचल होइ
दुहु माहि न पच्छइ खिसइ कोइ
जब देखिउ दलु दुद्धरु अगाहु
तब संजम रथि चडि चलिउ नाहु ।।१३१।।

अर्थ—दोनों ही (मोह मदन और विवेक) सुभट (युद्ध भूमि में) अचल होकर (एक दूसरे के सामने) खड़े थे। दोनोंमें से कोई पीछे नहीं हट रहा था। जब ऋषभनाथने दुद्धर अगाध दल देखा तब वे संयम

रूपी रथ पर आरूढ़ होकर (युद्धभूमिमें) चले ।

व्याख्या—दोनों योद्धा परस्परमें एक दूसरेकी शक्तिको तिरष्कृत कर रहे थे अर्थात् दोनों की शक्ति अपार दुर्धर थी । तब भगवान यथाख्यात की पूर्णता से संयम रूपी रथ पर सवार होकर रणांगण में आए । वहां आकर उन्होंने विवेक वीर की सहायता की । विवेक पहले से ही वीर था, अब और भी निर्भय वीर बन गया । अभी तक मदन की सहायता मोहराजा कर रहा था किन्तु अब विवेक की सहायता को स्वयं जिनराज ही उपस्थित हो गए ।

रंगिक्का छन्द :

जिणु संजम-रथिहि चडि तिन्नि गुत्ति गय गुडि
मिलिय सुभट जुडि पंच वरतं ।
खिमा अडगु सम्मुहु धरि ज्ञान करवालु करि
सम्मिकत्तु ताणि सिरि छविय छत्तं ।
छूटे आगम सर कुमति कायर नर
देखि हियड थरहर कंपंति घणो ।
काजु भाजु रे मदन घुटु आदिनाहु सिरि सट
देइ करइ दहवट प्रथम जिणो ।।१३२।।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान संयम रूपी रथ पर चढ़े । उस रथ में तीन गुप्ति रूपी हाथी जुते हुए थे । पाँच महाव्रत रूपी सुभट मिलकर जुड़े थे । ज्ञान रूपी तलवार हाथ में लेकर क्षमा को अडिग रूपसे सम्मुख रखा । सम्यक्त्व ने नाथ के सिर पर छविवाला (चमकता हुआ) छत्र तान दिया । आगम के स्वर रूपी बाण छूटने लगे । इस समय कुमति रूपी कायर मनुष्य (इस प्रबल युद्ध को देखकर) का हृदय थरहराने लगा । और घने (विशेष) रूप से काँपने तथा चिल्लाने लगा कि हे मदन घुट (जल्दी) से भाग भाग । ये आदिनाथ (नामके) प्रथम जिनेन्द्र तेरे सिर के ऊपर सट (प्रहार) करेंगे । तेरी दहवर (दसों रास्तों को नष्ट) कर देंगे ।

व्याख्या—जिनेन्द्रदेव किस प्रकार व्यूह सेना को तैयार कर रथ पर चढ़कर रण में पहुँचे उसका अपूर्व दृश्य उपस्थित किया गया है । जिनेन्द्रदेव यथाख्यात संयम रूपी रथ पर विराजमान थे । तीनगुप्ति रूपी हाथी रथ को चला रहे हैं । अर्थात् वे आत्मस्वरूप में तीनों गुप्ति से सुरक्षित थे । यही चंचलता रहित गज थे । कहा गया है—"सम्यग्योगनिग्रहोगुप्तिः" । पाँच महाव्रत रूप श्रेष्ठ वीर हाथियों के निकट थे । वे प्रबलबल वाले

हो रहे थे। ज्ञानको तलवारकी संज्ञा दी है। अर्थात् ज्ञान के साथ क्रोध के अभाव रूप क्षमा स्थिर खड़ी थी क्षमाखड्ग: करे यस्य दुर्जन: किं करिष्यति। युद्ध की नीति है कि आगे ऐसे अडिग वीरों को रखा जाता है जो पीछे न हटें। इसीलिए सर्वप्रथम संयम को लिया गया और उसके साथ तीन गुप्ति, पांच महाव्रत एवं ज्ञान को रखा गया है। सम्यक्त्व चमकता हुआ छत्र बन गया। सम्यक्त्व भी क्षायिक होने से अडिग-स्थिर है। वह इतनी चमकवाला है कि उसकी तरफ कोई नजर उठाकर नहीं देख सकता। भगवानकी दिव्यध्वनि खिरी (प्रस्फुटित हुई)।

उसमें आगम के स्वर निकले। वे स्वर ही बाण की तरह छूटने लगे। उन बाणों से भयभीत होकर कुज्ञान, कुमति आदि चिल्लाने लगे— "मदन अब तुम भाग जाओ, तुम्हारी अब कोई गति नही है। सामान्य जन नहीं है, ये तो प्रथम जिन हैं, विजेता हैं। तेरे सिर पर सट अर्थात् जोर से प्रहार करेंगे और तुझे दशवाट का कर देंगे। अत: भाग जाने में ही तेरी कुशल है।" आत्मा के युद्ध की अपूर्व स्थिति है।

खेतु रचिउ भावना भाइ ध्वजा मति लहकाइ
मिलिय राणे राइ छत्तीस गुणं।
पाइक अनुप्रेक्षा बार अंगि सील सहसठार
दसविध धम्म चार सबल घणं।
बइठा त्रिदश गुण ठानि दीपहिं अंतर ध्यानि
गति थिति सबजानि कहइ गुणो।
भाजु भाजु रे मदन धुट आदिनाहु सिरि सट्ट
देइ करइ दहवट प्रथम जिणो।।१३३।।

(विवेक) वैराग्य भावना भा रहा था। उन्हीं (भावनाओं) के द्वारा उसने रणक्षेत्र की रचना की। उस (युद्धक्षेत्र) में मति रूपी ध्वजा लहरा रही थी। छत्तीस गुण रूपी राजा अन्य राजाओं से मिल रहे थे। अनुप्रेक्षा (बारह भावना) तथा द्वादश अंग, अठारह हजार शील रूप पैदल सेना थी। उत्तमक्षमादि दस प्रकार के धर्म और चार प्रकार के धर्मध्यान रूपी सबल घन (भट) थे। (भगवान) तेरहवें गुणस्थान में ही विराजमान थे। वे अंतरध्यान में मग्न थे। (भगवान) गति, मार्गणा एवं उनकी स्थिति आदि का विचार कर गुणस्थानों का वर्णन कर रहे थे। (इस प्रकार भगवान का शौर्य प्रकट हो रहा था। वहाँ यह ध्वनि हो रही थी। (कि वे हे (धूर्त) मदन शीघ्रता से भाग-भाग, श्री आदिनाथ प्रभु आ रहे हैं, वे तेरे

सिर पर ही प्रहार करेंगे। वे प्रथम जिनेन्द्रदेव तुझे दहवट (नष्ट) कर देंगे।

व्याख्या—कवि ने भावों के द्वारा रण का अनेक प्रस्तुत किया है। सिद्धान्त शास्त्रों में इसी प्रकारके वर्णन आए हैं। कर्मों से लड़ना और उनकी सत्ता आत्मा से पृथक् करना बड़ा ही कठिन है। मध्य में बड़े-बड़े उपसर्ग और परीषह आते हैं। उनको जीतने के लिए पूर्ण वैराग्य की जरूरत होती है। इसलिए यहाँ भावना को रणक्षेत्र बनाया गया है। उससे कषायशत्रु पर विजय प्राप्तकर आत्मज्ञान में निमग्नता आती है। प्रभु का अनन्त बल है, उनकी ज्ञानरूपी ध्वजा लहरा रही है। अभी मोह मदन की शक्ति अधिक प्रकट हुई थी इसलिए प्रभुको विवेक की सहायता करने के लिए आना पड़ा। ३६ गुण (दशधर्म, बारह तप, छह आवश्यक, पाँच आचार तीन गुप्ति (राजा हैं वे ३६ प्रकृति रूपी राणासे जा भिड़े और उनका नाम निशान मिटा दिया।

प्रभु के साथ अनेक प्रबलवीर आये थे जैसे—१० प्रकार धर्म, ४ प्रकार धर्म ध्यान, १२ अनुप्रेक्षा १२. अंग, १८ हजार शील, ४ धर्मध्यान सबलघन (हथौड़ा) थे। उनके प्रहार से कोई जीवित नहीं बन सकता था। भगवान संयोगकेवली नामक १३वें गुणस्थान में विराजमान। अपने स्वरूपके ध्यान में मग्न थे। उस ध्यान का तेज अपार था। उसके सामने खड़े रहने की समर्थ्य अन्य किसी में नहीं थी। वे प्रभु गति, मार्गणा की स्थिति पर विचार कर रहे थे इस प्रकार भगवान का शौर्य प्रकट हो रहा था। यही आध्यात्मिक रण है। इसमें अन्य शत्रु ठहर नहीं सकता है। इसलिए वहाँ यही ध्वनि हो रही थी कि—हे धूर्त मदन, भाग आदीश प्रभु आ रहे हैं।

तीनि रतन जोसण कसि धारि बंभव्रत असि
नकीरी वाजहि जसि गहिर सरे।
रहिय दया पोरिष पूरि भागिय हिंसा दूरि
बलउपसम सूरि कियउ नरे।
आए अतिसय तीस चारि परजै ति चकारि
मंतु शुक्ल धानु धारि राखिउ मणो।
भाजु भाजु रे मदन धुट आदिनाहु सिरि सट
देइ करइ दहवट प्रथम जिणो।।१३४।।

अर्थ—(ऋषभदेव) तीन रत्न रूपी जोसण (धन) को कस कर,

ब्रह्मचर्य रूपी तलवारको धारण कर इस प्रकार के गम्भीर स्वर में बोलते हैं, जिस प्रकार नफीरी (सेना) के बाजे बजते हैं। वे प्रभु दया रहित हैं, अपने पौरुष से परिपूर्ण हैं, परन्तु हिंसा से दूर भागते हैं अपने उपशमके बल से नरों (कायरों) को भी शूरवीर कर (निर्भय वीर बना) देते हैं, ३४ अतिशय भी उन (प्रभु) के पास आए, जो तीन प्रकार की पर्याय वाले (भेद सहित थे)। उन्होने शुक्ल ध्यान रूपी मन्त्र से अपने मन को भी रोक लिया (वे ऐसे महान प्रभु हैं) अत: श्री आदिनाथ प्रभु के सम्मुख से हे धूर्त्त, मदन! भाग रे भाग, वे प्रथम जिनेश तुझे दसवार कर देंगे (तेरा कहीं पता ही नहीं चलेगा।

व्याख्या—भगवान को यहां धनी बताया गया है। उनके पास रत्नत्रय जैसी निधि है, जिसे संसार में सबसे बड़ा धन बतलाया गया है। प्रभु मदन के वश में आने वाले नही हैं। वश में वे ही आते हैं, जो निर्धन होते हैं। जिन्हें कुछ कामना होती है। भगवन् तो पहले ही रत्नत्रयके धनी हैं। फिर उनके पास ब्रह्मव्रत रुपी तलवार भी है, जो किसी के पास नहीं है, जिसके द्वारा सब हार जाते हैं। ब्रह्मव्रत के कारण मदन के कामबाण उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते तथा तरुणियाँ रंच मात्र भी विकार उत्पन्न नहीं कर सकती।उनके आगम शब्द इस प्रकार से गम्भीर हैं मानों गहन वाद्य बज रहे हों। उन स्वरों से काम के स्वर दूर भाग जाते हैं।

उनके पुरुषार्थ से हिंसा भाग जाती है। वहाँ कोई जीव परस्पर में वैर-विरोध भाव नहीं रख सकता है। फिर हिंसा का काम ही क्या है। उनका कोई शत्रु नहीं है। उनके सम्मुख सभी में परस्पर मैत्रीभाव हो जाता है। उन्होंने शुक्लध्यान के मन्त्र से अपने मन को वश में कर लिया है। जिससे मन में कोई विकल्प ही नहीं आता। जहाँ मन में चंचलता होती है वहीं मदन प्रवेश कर सकता है। प्रभु का मन वश में हो गया है इसलिए वहाँ मदन के प्रवेश की सम्भावना ही नहीं रही। मन्त्रबल से सर्प भी कुछ नहीं कर सकता है। ऐसी अवस्था में मदन के पक्ष के कुमति, कुज्ञान आदि उसे युद्धकरने से रोकने लगे।

घाल्या समरु कटक कंदि मोहराउ किया, बंदि
कसाए चारि निकंदि वहि वि मउ।
मद मयगल किया निपातु चलिउ भागि मिथ्यातु
फेडिउ कुसील छातु मंडिय धउ।

धम्म सुरत भाट पढंति दुंदुहि देव वाजंति
सुंदरि गीय गावंति सासण गुणो ।
भाजु भाजु रे मदन धुट आदिनाहु सिरि सट
देइ करइ दहवट प्रथम जिणो ।।१३५।।

अर्थ—(श्री जिनेन्द्र देव ने) कामदेव को पकड़कर उसकी कटक (सेना) को कन्दि (दबा) कर उसको तथा मोह राजा को बन्दी बनाया। चारों कषाय रूपी भटों को दबाकर निकन्द (नष्ट भ्रष्ट कर दिया) मद रूपी गजों का निपात (पतन) किया, तब मिथ्यात्व भी भाग चला। मेघरूपी घटा को माँडकर (सजाकर) कुशील के छत्र को दूर कर दिया (भगवान के समवशरण में) धर्म-श्रुत के सूत्र रूपी भाट विरद पढ़ते हैं। देवगण दुन्दुभि बजाते हैं। सुन्दरी देवियाँ भगवान के शासन के गुणों का गीत गाती हैं। इसलिए हे धूर्त मदन। भाग रे भाग। श्री आदिनाथ प्रभु तेरे सिर पर प्रहार करेंगे। वे प्रथम जिनेन्द्र तुझे दहवट (दशवट) का कर देंगे (तुझे भागने को मार्ग नहीं मिलेगा)।

व्याख्या—श्री आदिप्रभु ने मदन की सेना को रौंद डाला तथा मदन और मोह दोनों को बंदी बना लिया। मद, मोह, लोभ, ईर्ष्या, स्नेह आदि मदन की सेना है। इन उपरोक्त प्रकारों से मदन जीवों की आत्मा में प्रवेश करता है और सबको दुःखी बनाता है। प्रभुने सभी प्रकारोंको नष्ट कर डाला जिससे कि ये विकार किसी प्रकार की बाधा न दे पाएं। जब तक विवेक जागृत नहीं होता तभी तक ये वासनाएँ सताती है तथा ऊपर के गुणस्थानों में साधुके मैथुन संज्ञा कार्यरूप में नहीं रहती है आगे उपचार से भी छूट जाती है। संसार में इसी मैथुन राग के वशीभूत जीव परस्पर में लड़ते रहते हैं। यहाँ तक कि अपने कर्त्तव्य को भी भूल जाते हैं। इस मदन को प्रभु ने ही दूर किया। अतः प्रभु का नाम कामविजयी भी है। मोह को भी प्रभु ने पकड़ लिया। अर्थात् उसे पकड़ने से संसार में भ्रमण कराने वाला कोई नहीं रहा। इसी से वे निर्मोही भी कहलाए। अतः आदि प्रभु देवाधिदेव कहलाए, मनुष्यकी गणना में नहीं रहे।

षटपदम छन्द :

चढिउ कोपि कंदप्पु अप्पबलि अण्णु न भण्णइ
कुंदइ कुरलइ तसइ हसइ सुभटहं अवगण्णइ
ताणि कुसुम कोवंडु मंडु रंडहि जि सुहड दल

बंभु ईसु हरि इंदु तइय नहु रक्खियउ तिन्ह कल
कवि वल्हु जैनु जगमहि अटलु सरकिअवरु तिसु करइ कोइ
अहि झाणि हणिउ सिरि आदि जिणि गयउ मयणु दहवट्ट हुइ ।।१३६।।

अर्थ—तब कन्दर्प (मदन) क्रोधित होकर चढ़ा—उछला। वह अपने बल के सामने किसी दूसरे के बल को कुछ नहीं समझता था। अन्य सुभटों को वह कुन्दता (दबाता) था। कुरलइ (रुलाता) कराता था, तसइ (त्रास) देता था, हसइ (हँसी उड़ाता) था और उनका अपमान करता था। पुष्पमयी धनुष को चढ़ाकर वह लड़ने लगा। सुभट दल भी लड़ने लगे, कलपने लगे। ब्रह्मा शिव, विष्णु इन्द्र, सभी देवता हैं फिर भी इनको उसने (मदन ने) सुख नहीं दिया (हमेशा) दुखी ही किया। बल्हु कवि कहते हैं कि जिनदेव ही संसार में अटल हैं। सरककर (घिसटकर-खिसककर) उनकी बराबरी कौन कर सकता है। आदि जिनेन्द्र ने उस कन्दर्प के सिर पर ध्यान रूपी सर्प दे मारा जिससे वह दशवाट का (खण्ड-खण्ड) हो गया।

व्याख्या—संसार में मदन के पुष्प बाण और धनुष प्रसिद्ध हैं। उनसे कन्दर्प (मदन) ने सभी को अपने वश में कर लिया था। यही बात प्रभु के सम्बन्ध में भी समझी गई। तब कवि उसका विरोध करते हुए कहते हैं कि प्रभु तो अटल हैं। उन पर किसी का प्रहार नहीं हो सकता। मदन ने प्रहार किया तो उससे उसीका नाश होगा। वह भगवान का ध्यान रूपी प्रहार सहन नहीं कर सका और वहीं नष्ट हो गया। अतः संसार में प्रभु की बराबरी करने वाला अन्य कोई नहीं है। लोक में वीतरागता ही पूज्य है। प्रभु की वीतराग ध्यान मुद्रा के द्वारा ही काम जीता गया। प्रभु ने सबको ध्यान की शिक्षा दी। उसी से इन्द्रियाँ वश में होती हैं। इन्द्रिय-विजयी मानव ही दिगम्बर मुद्रा को धारण करता है। ऐसा वीर आत्म परीषह उपसर्गों से नहीं डरता। अटल रहकर उच्चश्रेणी का देव बन जाता है।

वस्तु छन्द :

दुसहु बब्बहु मोह परचंडु
भडु मयणु निकंदियउ कलियकालु तव पाडि लीयउ
आनंदु निवर्ति मनि सिरि विवेक जस-तिलकु दीयउ
जे वटपांडे धम्म के ते सब घाले बंदि
मैयण खड खुडाइयउ स्वामी रिसह जिणिंदि ।।१३७।।

(इसके पश्चात् आदि जिनेश्वर ने) प्रचण्ड मोह को दुस्सह रूप से कसकर बाँधा और मदन भट को भी कसकर बाँधा, तथा कलिकाल को भूमि पर पटक दिया। (इसप्रकार युद्ध समाप्त होने पर प्रभु ने) आनन्द से लौटकर विवेक के सिर रूपी मणि पर यश का तिलक दिया तथा जो धर्म के वट-पाण्डे (मार्ग के चोर-लुटेरे) थे सबको बन्दी बना लिया। स्वामी ऋषभ जिनेन्द्र ने चेतन को क्षयहोने से छुड़ा लिया।

व्याख्या—यहाँ "क्षय" शब्द अपना विशेष महत्व रखता है। मोह और मदन चेतन को बिगाड़कर ऐसा ज्ञान हीन, विवेकरहित बना देते हैं। कि चेतना ज्ञानी नहीं रह जाता। अचेतन तुल्य बन जाता है। अत: प्रभु के प्रसाद से चेतन ने अपनी चेतनता प्राप्त कर ली अर्थात् सह यथार्थ ज्ञानवाला बन गया। यह प्रभु ने बड़ा ही उपकार किया जो चेतन को उबार लिया अर्थात् क्षय होने से बचा लिया। जिनदेव उन्हीं का नाम है जो इस मोह, मदन को जीतते हैं। कहा गया है—चित्रंकिमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग नाभिर्नीतमनागपि मनो न विकारमार्गम्"।

प्रभु शत्रु पर विजय प्राप्त करके आनन्दपूर्वक लौट आए और अपने शिष्य विवेक के मस्तिष्क पर यश: कीर्तिरूप तिलक किया। महान् पुरुषों की यही नीति होती है कि वे अपने अधीन को अपनी बराबरी का बना लेते हैं। दर्शन शास्त्र में कहा है—सत्वमेवासिनिर्दोषो:। अर्थात् निर्दोष होने से तुम्ही महान हो। सबसे बड़ा दोष में रागद्वेष है। इसी से संसार बना है जो मुक्ति होना चाहता है वह मोह रागद्वेष को जीतकर जिन बनता है, जो विषयसुखों के अभिलाषी हैं वे देव नहीं है, वे दिगम्बर नहीं बन सकते। जिनदेव ही सर्वदेवाधिदेव हैं—मानुषीप्रकृतिमम्यतीतवान् देवता-स्वपि देवता यत:।" दर्शन शास्त्र देव में थोड़ा सा भी दोष पसन्द नहीं करता है। जब आत्मा में अनन्त चतुष्टय की पूर्णता होती है। तभी वह परमात्मा कहलाता है। उनके वचन युक्तागम से अविरुद्ध होते हैं। तब वचन पुद्गल होने पर भी वचन से ही पुरुष की परीक्षा होती है। इस रूपक ग्रंथ में निर्दोषता के स्थान पर निर्विकारिता से महिमा गाई गई है। आदीश्वर प्रभु का चेतन ही सच्चा चेतन है। विवेक का चेतन, चेतन है। उसकी श्रद्धा में चेतन, चेतन बना हुआ है। इस प्रकार मोह-कन्दर्प का घनघोर युद्ध हुआ और प्रभु जीत गए। शुद्धात्मा की एक बार शुद्धता होने पर फिर अशुद्धता का विकार नहीं होता है। जैसे सोना कीचड़ में पड़े रहने पर भी कीचड़ में नहीं लिप्त होता है। इसी प्रकार कलिकाल का भी

अभाव बतलाया गया है जिससे कि मोक्ष मार्ग चल पड़ा।

छुट्टउ चेयण हुवउ मनु सहजि
महि.खिल्लिय धम्म दह तह समाधि आगमु जणायउ
रवि कोडि अनंतगुण प्रगट ज्योति केवलु दिपायउ
सुरपति नरपति नागपति मिलिय सेन सब आइ
आज्ञा फेरण देसमहि दियो विवेकु पठाइ ।।१३८।।

अर्थ—चेतन (परतन्त्रता) से छूटकर सहज (स्वाभाविक) मनु (ज्ञानी) हो गया। पृथिवी पर दशधर्म (उत्तमक्षमादि) खिल पड़े तथा समाधियों (आगम) को जन्म दिया। कोटि सूर्यों से अनन्त गुणी ज्योतिवाला केवल ज्ञान प्रकट हुआ। सुरपति, नरपति, नागपति आदि सभी अपनी सेना सहित मिलकर आ गए। (प्रभु ने) विवेक को सभी देशों में आज्ञा (घोषणा) फैलाने के लिए भेज दिया।

व्याख्या—मनु वह कहलाता है, जो संसार में सर्व प्रथम मानवता की शिक्षा देता है। वह सब कलाओं का ज्ञाता होता है। उत्तम रीतियों का प्रवर्तक होता है, सर्व पुरुषों में प्रधान पुरुष होता है। यहाँ चेतन १५वाँ मनु ऋषभजिनेन्द्र है। जिन्होने असि, मसि, कृषि वाणिज्यरूप आजीविका षट् कर्मों द्वारा अजीविका सिखाई। यह कार्य उन्होने गृहस्थ जीवन में दिया। फिर उन्होने सर्वपरिग्रह का त्याग कर तपश्चरण किया जिससे ४ घातिया कर्म नष्ट हुए। तब मोह के फंदे से छूटा चेतन केवल ज्ञान रूपी सूर्य से दैदीप्यमान हो गया। उसका तेज करोड़ों सूर्यों से भी अधिक था। प्रभु को केवल ज्ञान प्रकट हो जाने पर सभी कार्य स्वतः होने लगते हैं। मनुष्यलोक में और तिर्यंचों के पास घोषणा करने के लिए विवेक को भेजा गया किन्तु स्वर्ग लोक में जाना संभव नहीं है अतः वहाँ अपने आप ही सिंहनाद, घंटानाद एवं शंखनाद के द्वारा प्रभु के केवलज्ञान प्राप्ति की घोषणा हो जाती है।

सभी देवगण अपने परिवारों सहित प्रभु की अभ्यर्थना के लिए एकत्रित हो गए। इस केवलज्ञान की अपार महिमा है, सूर्य तो केवल एक लोक को प्रकाशित करता है किन्तु केवलज्ञान तीनों लोकों एवं तीनों कालों की बातों को प्रकट करता है। बड़े पुरुषों की यही महिमा है कि उनका कार्य आगे से आगे स्वयं होने लगता है। उनके पुण्यके परमाणु स्वयं फैलते हैं, जैसे घंटा आदि बजने लगते हैं, जैसे कि टैलिफोन की घंटी बज जाती है। अब सर्वत्र शुभ परमाणुओं का संचार होने लगा।

धर्मादिधर्म पृथ्वी पर प्रकट हो गए । ध्यान को सब समझने लगे । आगमका उपदेश होने लगा । इसी को तीर्थ कहा जाता है । इससे तीर्थंकर कहे जाते हैं । यह अद्भुत तीर्थमार्ग ऋषभदेव से प्रारंभ हुआ है ।

स्वामी पठायउ राउ बिव्वेकु ।
सो देसिहि संचरिउ उसभ सेण कहु वेगि लायउ
सो थप्पिउ गणहपति सुत्त अत्थु तिसु कहु जणायउ
इक्कु धम्मु दुहु विधु कहिउ सागारी अणगारु
तं संखेपिहि हउं कहउं भवियण सुणहु विचारु ।।१३९।।

अर्थ—स्वामी (आदीश्वर) ने राजा विवेक को (संदेश देने के लिए) भेजा । उसने (अनेक) देशों में भ्रमण किया और शीघ्र ही वृषभसेन (नामक मनुष्य) को लाया । उसे प्रथम गणपति पद पर प्रतिष्ठित किया गया । प्रभु ने उसको सब सूत्र, अर्थ कहकर ज्ञान करा दिया और कहा कि धर्म एक है, उसके दो प्रकार हैं । एक सागारी अर्थात् गृहस्थ, दूसरा अनागारी अर्थात् मुनिधर्म । बल्हु कवि कहते हैं कि भगवान ने जैसा कहा था—वैसा ही मैंने संक्षेप में कहा है । हे भव्यजनो! इसे सुनो और विचार करो ।

व्याख्या—यह एक प्राकृतिक नियम है कि बिना मंत्री के राजा राज्य नहीं कर सकता है । इसी प्रकार बिना गणधरके तीर्थंकर प्रभु का उपदेश नहीं होता क्योंकि बिना विशेष पुरुष के गूढ़ एवं सूक्ष्म तत्त्वों को समझना और दूसरों को समझाना असम्भव रहता है । गणधर चार ज्ञानधारी विशेष ज्ञानी होते हैं । दूसरा नियम है कि तीर्थंकर द्वारा दीक्षित मुनि ही उनका गणधर होता है । वृषभसेन को गणधर के पद के योग्य मानकर, समवशरण में उपस्थित किया गया । उन्होंने प्रभु से दीक्षा ग्रहणकी और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान नाम के चार ज्ञानधारी बने । तब उनके सम्मुख प्रभुकी बीजाक्षर रूप वाणी खिरी । वृषभसेन गणधर ने स्वयं उसे समझकर शब्दों के रूपमें उसका विस्तार किया ।

मिलिउ चउविहु संघु सहु आइ
बहु देवी देवतहं तिरियंच मिहुण हुइ इकट्ठिय
करि बारह परिषदा ठामि ठामि मंडिवि वइट्ठिय
वाणीणिम्मल अमियमय सुणि उपजइ सुह झाणु
भवियहं तणु मणु गहगहइ स्वामी करइ वखाणु ।।१४०।।

अर्थ—(उस समवशरण में) चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक

एवं श्राविका) स्वर्गवासी देवी-देवी। पातालवासी देव-देवां, मनुष्य-मानुषी, तिर्यंच-तिर्यंची आदि सभी मिलकर आए। बारह परिषद (सभा) में सभी अपने-अपने स्थान पर बैठकर माँडकर इकट्ठे हुए। (आदीश्वर जिन की) निर्मल अमृतमयी वाणी सुनकर सभी के हृदय में शुभ ध्यान उत्पन्न हो गया। भव्यजीवों के मन रूपी ग्रह को पकड़कर (सभी के मन को स्थिर करके) स्वामी ऋषभदेव ने व्याख्यान किया।

व्याख्या—जहाँ भगवान् विराजते हैं, वहाँ समवशरण सभा की रचना होती है। सभी भव्यजीव एकत्रित होकर १२ सभाओं में बैठते हैं। प्रथमसभा में मुनि और गणधर। द्वितीयसभा में आर्यिका और नारियाँ। तृतीय सभा में तिर्यंच तिर्यंचनी। चतुर्थ सभा में पुरुष वर्ग। पंचम सभा में कल्पवासी देव। षष्ठी सभा में कल्पवासिनी देवियाँ। सप्तमी सभा में ज्योतिषी देव। आठवीं सभा में ज्योतिषी देवियाँ। ग्यारहवीं सभा में भवनवासी देव। बारहवीं सभा में भवनवासी देवियाँ इस प्रकार से सभा लग जाने के पश्चात् प्रभु अपना उपदेश देते हैं।

थिति पयासियलोय अल्लोय
पुणि अत्थि जे थिति हुंति तेण अत्थिति ति भासिय
सुह असुह विहु व फल कहिवि तेण परगट पयासिय
पुणी करणी बहु विध कहिय जो-जो जिसिय करेइ
सो सो तिमही मेलि दलु सा सा गति भोगेइ।।१४१।।

अर्थ—(उन्होंने) लोक-अलोक की स्थिति को प्रकाशित किया। पुनः जो अस्ति हैं अर्थात् स्थित हैं। (नष्ट नहीं होते) उनके स्वरूप को प्रकट किया। शुभ भावों का फल शुभ एवं अशुभ भावों का फल अशुभ होता है एवं उन क्रियाओं के विविध प्रकार हैं, ऐसा भाषण किया। पुनः जो जैसी करनी करता है वैसी ही फल की विधि मिलती है, उस-उस गति में जाता है और वहाँ उस फल को भोगता है।

व्याख्या—प्रभु ने द्रव्यों के स्वरूप का उपदेश दिया। सभी द्रव्य अपने-अपने स्वरूप में स्थित हैं, तभी द्रव्य कहलाते हैं। यदि द्रव्य अपने स्वरूप को छोड़ दें तो वे द्रव्य ही नहीं रहेंगे। अतः सब द्रव्य अस्ति कहलाते हैं। वे बहु प्रदेशी होने से अर्थात् शरीर की तरह लम्बे चौड़े होने से काय कहे जाते हैं।

पाँच द्रव्य अर्थात् जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, तो लम्बे-चौड़े होने से अस्ति काय कहलाते हैं किन्तु एक काल द्रव्य एक प्रदेशी

होने से अर्थात् लम्बा-चौड़ा न होने से तथा स्थिति रखने से अस्ति कहलाता है । संसार में द्रव्य की दो जातियाँ हैं । एक चेतन और दूसरी अचेतन। चेतन जीव है । वह जैसा कर्म करता है उसी प्रकार विभिन्न गतियों में जाकर शुभ अशुभ फलों को प्राप्त करता है । जहाँ तक ६ द्रव्यों की स्थिति है, वहाँ तक लोक है और जहाँ अकेला आकाश है वह अलोक है । इस प्रकार का प्रभु ने उपदेश दिया ।

रोड छन्द :

महारंभ पारंभ करिवि परिगहु बढ्ढावहिं
पंचिंदिय वधु करहिं मज्जि मांसिहि चित्तु लावहिं ।
विषयह का सुख लीण पापु पुण्णु नहु विचारहि ।
ते नर नरकिहि जाहिं मणुव जम्मंतरु हारहिं ।।१४२।।

अर्थ—(जो जीव) बहुत आरम्भ, प्रारंभ करके परिग्रह (तृष्णा) को बढ़ाते है तथा पंचेन्द्रिय जीवों का वध करते हैं और मद्य, माँस को चित्त में लाते हैं अर्थात् आनन्दपूर्वक खाते हैं, (निरन्तर) विषयों के सुख में लीन रहते हैं तथा पाप-पुण्य का विचार नहीं करते, वे जीव नरकों में जाते हैं और मनुष्य जन्म को हार जाते हैं अर्थात् वर्त्तमान में मिला मनुष्य-भव फिर प्राप्त नहीं होता ।

व्याख्या—प्रभु ने अशुभ भावों की फल प्राप्ति के सन्दर्भ में नरक-गतिका वर्णन किया है । सूत्र में कहा गया है—"**बह्वारंभ** परिग्रहत्वां नारकस्यायुषः" । बहुत आरम्भ परिग्रह के साथ अनेक पाप स्वयं होते हैं । जहाँ परिग्रह है वहाँ पंचेन्द्रिय—वध अवश्य है । तृष्णा अधिक होने से झूठ पाप होता है । उससे भी पूरा न पड़ने से चोरी में प्रवृत्ति होती है । इसीके साथ परदारागमन तथा खोटी आदतों रूप कुशील (अब्रह्म) पाप होता है । इतना ही नहीं, सप्त व्यसनों में भी परिणति होती है, उदारता मिट जाती है । निरन्तर अन्याय में प्रवृत्ति होती है, जिससे नरकायु का आस्रव-बन्ध होता है । धन को ही सब कुछ समझ लेने से उसका चित्त कहीं भी नहीं लगता, जिससे तिर्यग्योनि का भी आस्रव बन्ध होता है । माया एवं क्रोध की तीव्रता होने के कारण वह अशुभ फल को भोगता रहता है । वह मनुष्यभव को हार जाता है । वर्तमान में मिला हुआ मनुष्य भव फिर नहीं मिलता । मनुष्यभव मिलना शुभ करनी का फल है—"अल्पारंभ परिग्रहत्वं मानुषस्य ।"

स्वभावमार्दवं च।"

इन सूत्रों द्वारा मनुष्यायु का आस्रव बंध होता है ।

बहु मायाकेलवहिं कपटु कहि पर मनु रंजहिं
अति कूडिहि अवगूढ़ करिवि छलु परजिय संचहिं
मुहु मीठा मनि मलिण पंचमहि भला कहाविहि
इणा कम्मिहि नरु जाणि जुणि तिज्जंचरु पावहिं ।।१४३।।

अर्थ—(जो जीव तन से) बहुत मायाचारी कहते हैं, वचन से कपट की बातें कहकर दूसरे के मन को आनन्दित करते हैं । अतिगूढ़ लेखोंको गुप्त रूप से लिखकर (अथवा छपवाकर) दूसरे जीवों को ठगते है तथा मन में मलिन भाव रखकर मुख से मधुर शब्दों के द्वारा पंचजनों मे भला (अच्छा) कहलाते हैं, वे मनुष्य इन कर्मों (मन, वचन, कर्म) के कारण तिर्यंच-योनि को प्राप्त करते हैं ।

व्याख्या—इस छन्द मे तिर्यंचगति-गमन के कारणों पर प्रकाश डाला गया है । माया अर्थात् छल कपट करने से तिर्यंचगति का आस्रव होता है—"माया तैर्यग्योनयस्य" । मन, वचन और काय अर्थात् शरीर से ठगना, अन्य करना, अन्य कहना और अन्य विचारना,ये ही माया के कार्य हैं। इसलिए प्रभु का यही उपदेश है कि मायाचारी रूप अशुभ करनी को सभी का यही उपदेश है कि मायाचारी रूप अशुभकरनी के कर्म मत करो । अपनी आत्मा का हित करने के लिए आर्जव भावों को धारण करो, जिससे सद्‌गति की प्राप्ति हो सके ।

भद्द प्रकृति जे होहिं ध्यानि आरति न चहुटंटहिं
अणुकंपा चिति करहिं विनय सतभाइ पयट्टहिं ।
सदाकाल परिणाम मनि न राखहिं मच्छर मति
कहियउ इम सखत्तिति नर पावहिं मानुष गति ।।१४४।।

अर्थ—(जो जीव) भद्र (अच्छी) प्रकृति के होते है, आर्त्तध्यान में प्रवर्तन नहीं करते एवं चित्त में अनुकम्पा करते हैं, विनय और सत्य भावों से प्रवर्तते है, जिनके परिणाम सदाकाल कोमल रहते हैं और मन में मात्सर्य-बुद्धि नहीं रखते सर्वज्ञदेव ने कहा है कि ऐसे जीव मनुष्यगति को प्राप्त करते हैं ।

व्याख्या—मनुष्यगति-गमन का वर्णन करते हुए प्रभु ने बतलाया कि जो जीव दूसरों का भला करते हैं, मिथ्यामार्ग से छुड़ाकर सन्मार्ग में ले जाते हैं तथा आर्त्त और रौद्र ध्यान को छोड़ाकर शुभ ध्यान में प्रवर्त्तन कराते हैं वे मनुष्यगति के पात्र बनते हैं । दूसरों के दुःख के

प्रति अपने मन में दयाभाव रखने को अनुकम्पा कहते हैं । जो विनय अर्थात् मान-कषाय का त्याग करते हैं, गुरुजनों का आदर करते हैं, मन, वचन और कायकी एक रूप प्रवृत्ति से सत्यभाव की प्रवर्त्तना करते हैं, सदाकाल कोमल परिणाम अर्थात् भावों में कठोरता का त्याग करते हैं और मन में किसी भी जीव से ईर्ष्या द्वेष को नहीं रखते, वे मनुष्यगति में जन्म लेते हैं । यही सर्वज्ञ देव का वचन है ।

राग सहितु संजमु जि कें वि मुनि बरलई पालहिं
सावयधम्मि जि लीण दिट्ठि जे समिय निहालहिं
विणु रुचि जिहँ निरजरउ बाल तपसी तपु साधहिं
इसु सभाइ जिणराइ कहिउ देवहँ गति बाँधहिं ।।१४५।।

अर्थ—(जो मनुष्य तिर्यंच) संयम अर्थात् मुनिव्रत रागसहित जिस किसी भाव से [illegible] से पालते हैं तथा श्रावक-धर्म में लीन दिखलाई पड़ते हैं एवं समय अर्थात् आत्मा को देखते हैं और बिना रुचि (अभिप्राय) के जो निर्जरा होती है, (साथ ही) जो बाल तपस्वी (अज्ञानी साधु) तप की साधना करते हैं, जिनराज ने कहा है कि—इसप्रकार के स्वभाव से वे देवगति को बाँधते (प्राप्त करते) हैं ।

व्याख्या—देवगति का वर्णन करते हुए प्रभु ने उसकी प्राप्ति का उपदेश दिया, जो संयम का पालन करते हैं अर्थात् पाँच व्रतों को धारण करते है, समितियों का पालन करते हैं, कषायों का त्याग करते हैं एवं तीनों गुप्ति का पालन करते हैं, उससे देवगति का बन्ध होता है । कहा गया है—

"वदसमिदिकसायादंडाण तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारणपालणणिग्गहचागजो संजमो भणिओ ।।"

संयम दो प्रकार है इंद्रिय संयम और प्राणी संयम । पाँच इन्द्रिय एक मन, तथा षट् काय के जीवों की रक्षा के भेद से संयम १२ प्रकार का भी है । पाँच समिति, पाँच महाव्रत एवं तीन गुप्ति को धारण करने से संयम १३ प्रकार का भी कहा गया है । सरागी जीव को २८ मूलगुणसहित जो संयम होता है, उसे सम्यग्दर्शन सहित होने से भाव की अपेक्षा सरागसंयम कहते हैं । सम्यग्दर्शन रहित जो मुनिव्रत पालते हैं उसे द्रव्यलिंगी मुनि कहते हैं । इन दोनों प्रकारों से देवायु की प्राप्ति होती है ।

इसी प्रकार ११ प्रतिमारूप श्रावक धर्म में जो प्रवृत्ति करते हैं—

चाहे द्रव्य से या भाव से वे भी देवगति में जाते हैं, जो केवल अविरत सम्यग्दृष्टि आत्मा का अनुभव करते हैं, वे भी उच्च देवायु को प्राप्त करते हैं। परवश से जो व्रत करते हैं, उससे जो निर्जरा होती है, उसे अकामनिर्जरा करते हैं। अन्य मतवाले साधुजन जिस प्रकार का भी तप-साधना करते हैं, उसे श्रद्धाविहीन होने से बालव्रत या बालतप कहा जाता है। उससे भी देवगति की प्राप्ति होती हैं। सर्वज्ञदेव ने शुभ करनी का जो साक्षात् फल बतलाया हैं, उसी का कथन सर्वशास्त्रों में उपलब्ध हैं। तत्वार्थ सूत्र में भी कहा गया है—

"निःशील व्रतत्वं सराग संयम संयमासंयम कामनिर्जराबालपांसि देवस्य।

सम्यक्त्वं च सर्वेषाम् ।।"

वस्तु छन्द :

सुणहु सावय चित्ति धरि भाउ
निजु समिकत्तु सद्दहहु देउ इक्कु अरहंतु सेवहु।
आरंभ परंभ विणु सुगुरु जाणि णिग्गंथु सेवहु
भासिउ धम्मु जु केवलिहिं सो निश्चइँ जाणेहु
तिन्ह व्रत संजम नियम तिन्ह जिन्ह पहिला थिरु एहु ।।१४६।।

अर्थ—जिनेन्द्र देव ने कहा कि—चित्त में भावना को धारण कर श्रावक धर्म सुनो। निज का श्रद्धान कर सम्यग्दृष्टि बनो। देव, एक अरहन्तदेव ही हैं। इस प्रकार का निर्णय करो। आरम्भ परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ साधु को गुरु कहते हैं, उनकी सेवा करो। केवली द्वारा भाषित जो धर्म है, उसे निश्चय समझो। जिन्होंने देव, शास्त्र गुरु की श्रद्धा सहित व्रत, नियम का पालन किया और स्थिरता प्राप्त की उनको श्रावक व्रती समझो।

व्याख्या—सर्वज्ञप्रभु ने उत्तम श्रावक वृत्ति के सन्दर्भ में कहा कि—जो मनुष्य अपने स्वरूप को समझे बिना ही श्रावक व्रतधारण करता है, वह उचित नहीं है, जो श्रद्धा के साथ व्रत नियमों का पालन करता है, वही सच्चा श्रावक है। श्रद्धा दो प्रकार की होती है। पहली निज में निजसे निज की श्रद्धा है अर्थात् मैं एक शुद्ध-बुद्ध चेतन स्वभाव हूँ। यह आत्मा का श्रद्धान है। इसे निश्चय श्रद्धा कहते हैं तो दूसरी देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा है, जिसे व्यवहार श्रद्धा कहते हैं। अतः दोनों प्रकार की श्रद्धा के साथ व्रत और नियमों का पालन करने वाले संयम में पाँच

स्थूल पापों का त्याग करने वाला, श्रावक व्रती कहा जाता है । यहाँ उसी प्रतिमाधारी नैष्ठिक श्रावक का कथन विद्वान कवि ने किया है ।

षटपद छन्द :

थूल पाण म बहुहु थूल कुडउ म भासहु
थूल अदत्तु म लेहु देखि परतिय चित्तु तासहु
परिगह दिसहं पमाणहु भोगुवभोग संखेवहु
अनरथदंड विमाणु नवमु सामायिकु सेवहु
पसरंत सुमनु दसमउ दमहु पोसहु एकादस धरहु
आहारसुद्धि चित्तसिउं विमल संविभागु साधहं ।।१४७।।

अर्थ—स्थूल प्राणों (प्राणियों) का वध मत करो । २. स्थूल झूट (असत्य) मत बोलो । ३. स्थूल अदत्त (चोरी का द्रव्य) मत लो । ४. परस्त्री को देखकर चित्त को वश में करो । ५. परिग्रह और ६. दिशाओं का प्रमाण करो । ७. भोगोपभोग पदार्थों की संख्या करो । अनर्थदण्ड का त्याग करो । ९. सामयिक का सेवन करो । पसरते (विस्तृत) मन का दमन करो । ११. प्रोषद—उपवास धारण करो । साधु के लिए विमल चित्त से शुद्धि पूर्वक आहारादि का संविभाग करो । श्रावक के यही बारह व्रत हैं ।

व्याख्या—समन्त भद्र स्वामी ने जिस प्रकार १२ व्रतों का वर्णन किया है,कवि ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है । स्थूल शब्द का शाब्दिक अर्थ है "मोटा, किन्तु यहाँ उसका तात्पर्य संकल्प" से है । १२ व्रतों का पालन श्रावक के लिए अनिवार्य बतलाया गया है । श्रावक सूक्ष्म रूप से व्रतों का पालन नहीं कर सकता क्योंकि उसे आरंभादिक कार्य करने पड़ते हैं । इसलिए वह एकदेश स्थूल रूप से उनका पालन करता है । इनमें प्रथम पाँच अणुव्रत हैं । अणु का अर्थ होता है छोटे अर्थात् एकदेश और व्रत का अर्थ बुद्धिपूर्वक या अभिप्राय पूर्वक त्याग । महाव्रत सर्वदेशीय होते हैं, इसलिए एकदेशीय त्याग को अणुव्रत कहा जाता है ।

दूसरे व्रत गुणव्रत कहलाते हैं । इनकी संख्या ३ है और तीसरे ४ व्रतों को शिक्षाव्रत कहते हैं । दूसरे व्रतों को गुणव्रत इसलिए कहते हैं कि इनका पालन करने से आत्मा में महाव्रतीपन का गुण उपलब्ध होता है तथा इन्द्रियाँ वश में होती हैं । शिक्षा व्रतों से मुनिव्रत पालन की शिक्षा प्राप्त होती है इसलिए उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं ।

मडिल्ल छन्द :

पहिली प्रतिमा दंसणु धारहु
बीजी णिम्मुलु वउ उद्धारहु
तीजी तिहु कालिहि सामायिकु
चउथी पोसहु सिवसुख दायकु ।।१४८।।

अर्थ—प्रथम दर्शन प्रतिमा (प्रतिज्ञा) धारण करो। दूसरी निर्मल व्रत प्रतिमा का उद्धार करो। तीसरी तीन समय सामायिक करो। चौथी शिव सुख दायक प्रोषध प्रतिमा है।

व्याख्या—प्रतिमा का अर्थ है प्रतिज्ञा। संयम की प्रतिज्ञा करना। प्रतिमा मूर्ति को भी कहते हैं। सच्चे श्रावक की आकृति ही ऐसी हो हो जाती है जिसके कारण उसे धर्म मुर्ति, दयामूर्ति एवं अहिंसा की मूर्ति कहा जाता है। पहली दर्शन प्रतिमा है। इसका पालन करने से वह सम्यग्दर्शन की मूर्ति अर्थात दार्शनिक प्रतिभा धारी बन जाता है। देवशास्त्रगुरुधर्म को ही नमस्कार करता है। अन्यको नहीं। वह अष्टमूलगुणों का धारी,सप्तव्यसनो का त्यागी एवं पंचपरमेष्ठी का उपासक होता है। दूसरी प्रतिमा व्रतप्रतिमा है। निरतिचार पूर्वक बारह व्रत पालन करने से उसकी आत्मा निर्मल हो जाती है। आत्मा को पापकार्यों से बचाकर पुण्य की अभिलाषा रहित पुण्यकार्य करने वाला व्रती श्रावक कहलाता है। वह पूर्ण रूप से अहिंसा को अपनाता है।

पंचमि सयल सचित्त विवज्जहु
छट्ठी राइभोयणु ण किज्जहु
सत्तमि बंभबरतु दिढु पालहु
अट्ठमि आपणु आरंभु टालहु ।।१४९।।

अर्थ—पाँचवीं सम्पूर्ण सचित्त का त्याग करो। छठवीं रात्रि भोजन मत करो। सातवीं व ब्रह्मचर्य व्रत का दृढ़ता से पालन करो। आठवीं अपना आरम्भ त्याग करो।

व्याख्या—ये सभी प्रतिमाएँ यथा नाम तथा गुण हैं। इनका क्रम भी अच्छा है। जब पहले दर्शन (श्रद्धान) हो जाए अर्थात् अपने को देख लो तब व्रत करना श्रेष्ठ है। जब व्रतके द्वारा इन्द्रियाँ बंधी जाती है तब सामायिक सम्भव है। इससे एकाग्रता आती है और आत्म शुद्धि होती है। सामयिक के बाद प्रोषधोपवास प्रतिमा की स्थिति ठीक बन जाती है। विषय-कषायों का त्याग हो जाता है। और आत्मा में निर्मलता

बढ़ती जाती है। पाँचवीं प्रतिमा में सचित्त के त्याग से जीव रक्षा होती है। इस बहिरंग शुद्धि से भी आत्मशुद्धि होतीहै। छठवीं प्रतिमा रात्रि भोजन त्याग है। सातवीं प्रतिमा में व्रती घर में रहता हुआ भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस प्रतिमा के पालन से आत्मपरिणति होती है। रागपरिणति समाप्त हो जाती है। आठवीं प्रतिमा में आरम्भ का त्याग करता है। हिंसा से बचने के लिए वह अठवीं प्रतिमा को धारण करता है।

नवमी परिगह रइ मिल्हीज्जइ
सावदि वचनु न दसमी लीअइ
एकादसमी पडिमाइह परि
रिसि जिम ले भिक्षा पर घर फिरि ।।१५०।।

अर्थ—नवमी प्रतिमा में परिग्रह में रति छोड़ो। दसवीं आहारादि की अनुमति रूप सावद्य वचनों का त्याग करो। ग्यारहवीं प्रतिमा यह है कि जैसे ऋषि घर-घर भ्रमण कर आहार ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार आहार ग्रहण करना।

व्याख्या—आठवीं प्रतिमा के बाद वह आगे बढ़ता है और पास के परिग्रह का भी त्याग कर देता है। अल्प आवश्यक परिग्रह रखता है। उसमें भी ममत्व नहीं होने से परिग्रहत्यागप्रतिमाधारी होता है। दशमी प्रतिमा में इस लोक सम्बन्धी कार्यों में अपनी अनुमति नहीं देता है जिसने बुलाया उसी के यहाँ भोजन कर लेता है। भोजन तथा परिग्रह का भार नहीं रहने के कारण वह सदा प्रसन्नचित्त रहता है। अंतिम ग्यारहवीं प्रतिमा में साधु कि तरह वनवासी होता है, गृह त्यागी होता है। वह भी दो प्रकार का है—एक क्षुल्लक है दूसरा ऐलक। क्षुल्लक लंगोटी और चादर धारण करता है और ऐलक मात्र लंगोटी। यह लंगोटी भी साक्षात् मोक्ष मार्ग की बाधक है अत: उसका भी त्याग कर पूर्व दिगम्बर वेश को धारण करता है। यह दिगम्बर वेष अंतरंगशुद्धि रूप भावशुद्धि का परिचायक है। यह साक्षात् मोक्ष मार्ग का साधक है। इस प्रकार प्रभु ने परम्परा से मोक्ष मार्ग में सहायक श्रावक वृत्ति का उपदेश दिया।

दोहा छन्द :

इम जे पालहिं भाव सिउं यहु उत्तमु जिणधम्मु।
जगमहि हुवउ तिन्ह तणउ सकयत्थउ नरजम्मु ।।१५१।।

अर्थ—इस प्रकार जो श्रावक भाव पूर्वक जिन धर्म का पालन करते

हैं, उनका इस लोक में मनुष्य-जन्म कृतार्थ होता है ।

व्याख्या—कवि ने श्रावक धर्म की चर्चा करते हुए श्रावकों की प्रशंसा की है । धर्म की व्याख्या करते हुए उन्होने धर्म के दो भेद किये हैं। पहला मुनिधर्म और दूसरा श्रावकधर्म । जो जीव श्रावक धर्मरूप जिनधर्म को पालते हैं वे अपने मनुष्य जन्म को सफल कर लेते हैं। जिन धर्म एक देश से साक्षात् है । बिना भाव तथा शरीर से पालन करना द्रव्यलिंग कहलाता है और भाव तथा शरीर से पालन करना भावलिंग कहलाता है । भावलिंग से मनुष्य जन्म की यथार्थ महिमा होती है । भाव का अर्थ श्रद्धाज्ञान है । कृतार्थ का अर्थ है, जिसने मोक्ष पुरुषार्थ को साधन कर लिया हैं । श्रावकधर्म के एकदेश होने से यदि कोई निरर्थक कहे तो उचित नहीं है । एकदेश से ही सर्वदेश होता है । एकदेश में भी वस्तुस्वभावरूप धर्म है । इसमें भी आत्मा का उद्धार होता है । इसमें विषय कषाय रूप अहित का त्याग है और ज्ञान वैराग्य रूप हित में प्रवृत्ति है । इसी श्रावक धर्म से मुनिधर्म की रक्षा होती है । अतः यह श्रावक वृत्ति भी उपादेय है । ऐसा श्रावक व्रती भी निर्वाण का पात्र होता है । इसलिए भगवान ने श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया ।

वस्तु छन्द :

जं पि सक्कइ करहु तउ तिसउ ।
बलु मंडिवि देह सिउं अहव किं पि जइ नर न सक्कहु
ता सद्दहु ध्यानु धरि निजु हियइ धरत खिणु इकु न थक्कहु
अंति करहु सल्लेहणा सव्वे जीव खिमाइ
पालहु सावय सुखु लहहु आण जिणेसर राइ ।।१५२।।

अर्थ—जिस प्रकार की शक्ति है, उसी के अनुसार उस व्रत को करो । शरीर से बल (शक्ति) प्राप्त करो अथवा हे मनुष्य यदि तुम कुछ भी नहीं कर सकते हो तो ध्यान रखकर श्रद्धान करो । अपने हृदय में ध्यान को धारण करने से एक क्षण भी मत रुको । मरण के अन्त समय में सल्लेखना (समाधि) धारण करके सभी जीवों से क्षमा कराओ । जिनेश्वर राजा की आज्ञा है कि इस प्रकार श्रावकव्रत का पालन करके सुख को प्राप्त करो ।

व्याख्या—मनुष्यों में भी अनेक प्रकार के लोग हैं । बालक वृद्ध, धनी-निर्धन, सबल-निर्बल । इसलिए सबके ऊपर एक सा नियम लागू नहीं हो सकता । अतः प्रभु ने अपने उपदेश में कहा—कि अपनी शक्ति

के अनुसार कर्म करो । शक्ति से अधिक मत करो । शक्ति अनुसार करने से व्रत का निर्दोष पालन होता है । संक्लेश परिणाम नष्ट होते हैं, जिससे परिणामों में विशुद्धि आती है और आनन्द की प्राप्ति होती है । यदि शक्ति नहीं हो तो केवल श्रद्धान करो । ध्यान ठीक कर श्रद्धा को संभालो । श्रद्धा से ही अपना काम बनाओ । यही दार्शनिक रूप है । इसी से परम्परा चलती है परम्परा यथार्थ विश्वास पर आश्रित है । हमेशा हृदय में संयम का भाव रखो । श्रावक का १३वां व्रत सल्लेखना है । जो अन्त समय में दिया जाता है । जब आयुपूर्ण होने का अवसर दिखलाई पड़े । तब सभी जीवों को क्षमा करके उनसे क्षमा मांगे । अच्छी तरह से इस समाधि को पालने से सुख की प्राप्ति होती है । मनुष्य जन्म की सफलता इसी व्रत से होती है । यह व्रत बड़ा ही दुर्लभ है । यह मंदिर-महल के ऊपर कलश चढ़ाने के समान अत्यन्त कठिन है ।

सुणहु साधहं धम्मु हित कारणु ।
सो पालहु अखलमनि सुगइ होइ दुग्गइ निवारइ
बुड्डंत संसार महि हुइ तरंडु खिणमाहिं तारिइ
बलिय कम्म जे सुह-असुह जीवि अनंतइकालि
ते तपबलि सहु निछलहु भवतरु कंद कुदालि ।।१५३।।

अर्थ—अब हित का कारण साधु-धर्म को सुनो । उसका पालन सम्पूर्ण मन से करो, जिससे सुगति की प्राप्ति और दुर्गति का नाश हो । यह मुनि धर्म संसार में डूबते प्राणियों के लिये नौका के सदृश है और क्षण-भर में पार कर देने वाला है । अनन्त काल में इस जीव के जो बलवान अशुभ कार्य हैं उनको तप के बल से नष्ट करो । यह साधु-धर्म संसाररूपी वृक्ष की जड़ काटने के लिए कुदाली के समान है । इससे आत्मा शुद्ध बन जाती है ।

व्याख्या—साधु धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए उसके पालन का संदेश दिया गया है । मन को स्थिर करके इस धर्म को धारण करो । यह धर्म सकल देश, सकलपापों का त्याग होने के कारण एक क्षण में संसार से पार करा देता है । पापों के कारण जो प्राणी संसार में भ्रमण कर रहे हैं उनके लिए यह धर्म नाव के समान है । यह मुनिधर्म संसार रूपी वृक्ष को छेदने के लिए कुदाली है । यह मुनिधर्म सभी धर्मों में प्रधान है । इसका पालन अवश्य करो । इसके द्वारा अपने मनुष्य भव को सफल बनाओ । जो इस धर्म का पालन नहीं करते वे मनुष्यभव

को नष्ट कर देते हैं । अतोछ सावधान होकर इसका पालन करो ।

षटपद छन्द :

छोडि इक्कु आरंभु रागदोसइ बिहु तज्जहु
तीनि सल्लु परिहरहु कसाथ जि चारि विवज्जहु
पंच प्रमाद निवारि छोडि पीडणु छक्कायहं
वंचि सत्त भयठाण अट्ठ मद तज्जि समायहं
नवविहु अबंभु न हु आचरहु मिथ्या दसविहु परिहरहु
रिसि सुणहु कहिउ सरवन्नि इम इकु अप्पणु पउ उद्धरहु ।।१५४।।

अर्थ—एक आरम्भ को छोड़ो, दूसरा रागद्वेष दोनों को छोड़ो । तीनों प्रकार की शल्य को भी छोड़ दो । चारों कषायों का त्याग करो । पाँचो प्रमादों को निवारों । षट्काय जीवों की पीड़ा (हिंसा) का त्याग करो । सात प्रकार के भय स्थानों छोड़ो । सम्यक्त्व के आठ मदो का परित्याग करो । नव प्रकार के अब्रह्म की अर्चना न करो । दस प्रकार के मिथ्या (असत्य) वचनों का त्याग करो । इस प्रकार सर्वज्ञ देव ने अपने पद का उद्धार करने के लिए उपर्युक्तका त्याग करने के लिए कहा है ।

व्याख्या—यहाँ संख्या क्रम से धर्मका व्याख्यान किया गया है । जो दोष दूर हो जाते है तभी आत्मा गुण रूप हो जाता है । गुण कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ते है-स्वदोष शांत्या विहितात्मशांति: ।'' पहले असि, मसि, कृषि आदि तथा पंच आरम्भ का त्याग करो । इसका त्याग करने से ही सभी प्रकार की पुण्यपाप परिणति छूटती है । पुण्यमें भी आरम्भ है उनसे होने वाले रागद्वेष भावों को छोड़ो । रागद्वेष ही संसार के बन्धन रूप हैं । ये स्वयं विकार हैं और पर विकार के कारण हैं । इनके स्थिर हो जाने पर माया, मिथ्यात्त्व और निदान रूप तीन प्रकार की शल्य का त्याग करो । शल्य अभिलाषा रूप होने से दु:ख की कारण है । कषाय साक्षात् शरीर और आत्मा दोनों को दु:ख देती है । इसलिए इसका त्याग करो । पाँच प्रकार के प्रमाद है—इन्द्रिय विषयों में फंसे रहना, विकथा में आनन्द मानना, कषायों की तीव्रता, स्नेह और निन्द्रा । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पति काय और त्रसकायिक षटकाय के जीवों से संसार भरा हुआ है । इनकी रक्षा करने को प्राणि संयम कहते हैं । भय सात प्रकार के हैं—इहलोकभय, परलोकभय, अनरक्षाभव, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, और अकस्मात भय । इनके त्याग से श्रद्धान दृढ़ होता है । साधु-परीषह उपसर्गों का विजयी होता

है। किसी भी अवस्था में भी अधड़ाता निशंक आत्मा बन जाता है। कुलमद, जातिमद प्रभुताभद, धनमद, बलमद, रूपमद, ज्ञानमद और तपमद। इन आठ प्रकार के मद का त्याग करने से साधु को विश्व बन्धुता प्राप्त हो जाती है। उसकी आत्मा महान बन जाती है। मन् वचन,काय और कृत, कारित, अनुमोदना के भेद से नौ प्रकार का अब्रह्म होता है। वह साक्षात् विषयों में पतन है। अत: इनका त्याग करो। दस प्रकार के मिथ्यात्व या असत्य वचन हैं। श्रद्धाओं वचनों के द्वारा ही पुरुष की परीक्षा होती है। वचन को हितमित रूप बोलना वचन भाषा-वर्गणा है। शरीर और आत्मा के प्रयत्नों से निकले वचन जीव के कहलाते हैं। यह वचन-बल एक प्राण है। सत्य वचन से धर्म की प्रभावना होती है। इसलिए आदीश प्रभु ने साधुओं को छोड़ने योग्य इन दोषों को कहा है।

इकु वसिकरि आतमउ विन्नि थावर तस पालहु
आराहहु तियरयण णाणि चउसरण निहालहु
करहु पंच आचार दव्व छह विद्धि न लिज्जहु
सत्त सुत्त नय जाणि मातु अड समइ गहिज्जहु
नव बंभ-वाडि दिढ़ राखियइ दसलक्खण धम्मिहिं रमहु
इम जिणु भासइ मुणिवर सुणहु गति न चारि इण परिभमहु ।।१५५।।

अर्थ—पहला—आत्माको वश में करो। दूसरा—स्थावर और त्रस जीवों की रक्षा करो। ३. रत्नत्रय ज्ञान की आराधना करो। ४. अर्हन्त, सिद्ध, साधु और केवल प्रज्ञ, धर्म ही शरण है, उसको देखो। ५. दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप और विनय इन पाँच आचारों को सम्हालो। ६. द्रव्य छह ही हैं, छह से अधिक वृद्धि न लेना। ७. सात सूत्रोक्त नयों को जानो। ८. आठ प्रवचन माता कही गई है, इन्हें आगम से ग्रहण करना। ९. शील की नववाड़ हैं, उन्हें दृढ़ रखना तथा १० दशलक्षण धर्म में रमण करना। इस प्रकार जिनेन्द्र देव कहते हैं कि हे मुनिवर सुनो (उपर्युक्त गुणोंको ग्रहण करने से) इनसे चारों गतियों का भ्रमण छूट जायेगा।

व्याख्या—आत्मा को वश में करने का अर्थ उसे स्वाधीन करना है। अभी आत्मा परवश में है। साधु का कर्त्तव्य है कि वह उसे निर्विकार, निर्विकल्प एवं अविनाशी बनाये। स्थावर और त्रस-जीव सब अपने ही तुल्य होते हैं। उनकी रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य है। अपनी किसी भी क्रिया से कोई बाधा न पहुंचायें, ऐसा आचरण करें। आत्मा का

जो स्वरूप है, उसको कभी न भूले। उसके लिए चार आचरण ही शरण हैं। पंचाचारों को पालने वाले ही यथार्थ साधु हैं। स्वप्न में कभी भी इनको मत भूले। जैनधर्म कथित द्रव्य छह ही है। न अधिक है न कम। इन्हें यथार्थ समझें। आगम में सात नय हैं, इनको यथार्थ पूर्वक जानने से ही वस्तुस्वरूप समझ में आता है। इसमें कोई संशय नहीं। आगम में पाँच समिति, तीन गुप्ति रूप आठ प्रवचनमाताएँ कही गई हैं। इनके द्वारा आचरण की पूर्ण शुद्ध होती है, इसे कभी न भूले। शील की नवबाड़ हैं, इनसे ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। जैसे खेत में धान की रक्षा बाड़ से होती है, उसी प्रकार मन्मथ कथा-त्याग पेट भर भोजन त्याग आदि उल्लिखित है। सो इनको दृढ़ता पूर्वक पालन करे। दश लक्षणधर्म ही आत्मा का स्वभाव हैं, इनसे ही आत्मा की पहचान होती है। इस प्रकार अन्य भी साधु के कर्त्तव्य हैं, जो परमात्मा बनने में सहायक हैं। इन्हें कभी न भूले।

समिइ पंच तिय गुत्ति पंच महव्वय चारित परि
संजमु सतरहभेय भेय बारह तपु आचरि
पडिमा दुइ दस वहहु सहहु बावीस परीसहु
भावण भाइ पचीस पाप सुल तजि नव वीसहु
तेतीसा सायण टालियहु जिण चउवीसहं थुति करहु
अडवीस पगइ भडु मोहु जिणि इम सु साध शिवपुरि सरहु ।।१५६।।

अर्थ—पाँच समिति, तीन गुप्ति और पाँच महाव्रत रूप में तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करो। संयम को उसके सत्तरह भेदों सहित धारण करो और तप के बारह भेदोंका आचरण करो। बारह प्रतिमा धारण करो तथा बाइस परीषहों को सहन करो। पच्चीस भावनाओं की आराधना करो। पाप के सूत्र २९ हैं। उनको छोड़ो, ३३ असाताओं को अपने मार्ग से दूर करो। २४ तीर्थकरों की स्तुति करो। मोह भट की २८ प्रकृतियाँ हैं, उन पर विजय प्राप्त करो। इस प्रकार की साधना करके शीघ्र ही मोक्षपुरी को प्रस्थान करो।

व्याख्या—यहाँ साधु के चारित्र का कवि ने अपने शब्दों में प्रभु के नाम से वर्णन किया है। पाँच समिति तीन गुप्ति और पाँच महाव्रत, इस १३ प्रकार के चारित्र का पालन करना साधु का मूल चारित्र है। संयम के अपहृत और उपहृद दो भेद हैं। अपहृत संयम के १७ भेद हैं। यह संयम ही मुनि का धर्म है। तप दो प्रकार का है—१.बहिरंग

और २. अन्तरंग। दोनों छह-छह प्रकार के हैं। ये साधु के अवश्यकरणीय उत्तरगुण हैं। इन तपों से संवर और निर्जरा होती है। मुनि और ज्ञानी इस ध्यान से शीघ्र ही कर्मों को काटकर मोक्ष पद प्राप्त करते हैं।

श्रावक की ११ प्रतिमाएँ होती हैं परन्तु साधु की १२ प्रतिमाएँ होती हैं। उसे उनको पालना आवश्यक है। २२ परीषह को सहन करना, जिससे मार्ग से च्युत न हो जायँ। यह कष्ट परीषह भी एक प्रकार का पाप है, इसको समभाव से जीतना ही साधुत्व है। ५ महाव्रतों की ५-५ भावनायें हैं। सब मिलकर ये २५ होती हैं जैसे खेत की रक्षा बाड़ से होती है, उसी प्रकार व्रत की दृढ़ता भी इनसे होती है। इनसे व्रतों की महिमा कई गुनी बढ़ जाती है।

पंचेन्द्रियों के विषय २० स्वर, ७, मन १, मिथ्यात्व१, इस प्रकार पाप के सूत्र २७ हैं। ये छोड़ने योग्यहैं। ३३ प्रकार की आसादना प्रतिक्रमण पाठ में हैं, उनको भी छोड़ो। २४ भगवान की स्तुति, वन्दना करो। मोह सबसे प्रबल राजा है, उसकी २८ प्रकृतियाँ हैं, इन्हें भी छोड़ो। इनके अभाव में यथाख्यातसंयम साधु के होता है, इसलिए इन पर विजय प्राप्त करो।

वस्तु छन्द :

दिण्णा देसणा एह जिणराइ
जिह गणहर संघु जिह भविय जीव संवेग आयउ
कियउ तित्थु चउ विहउ तित्थकर तव नाउ पायउ
नाउं गोतु दुणि वेयणी आरु सेसु जि हुंतु
ते खयकरि सिवपुरि गयउ सुखु भोगवइ अनतु ।।१५७।।

अर्थ—जहाँ गणधरों का संघ था तथा संवेगी भव्यजीव भी आतेथे, वहाँ श्री जिनेन्द्र प्रभु ने इस प्रकार की देशना दी। वहाँ चतुर्विध तीर्थ किया तब तीर्थंकर नाम पाया। नामकर्म, गोत्र कर्म, दोनों वेदनीय कर्म तथा आयु कर्म शेष रह गए। उनको क्षय करके वे आदीश्वर प्रभु शिवपुरी गए वहाँ अनन्त सुख भोग रहे हैं।

व्याख्या—भगवान की सभा का नाम समवशरण कहलाता है, जहाँ सबको जाने का अधिकार होता है। गणधर ही नहीं होते तो प्रभु की वाणी ही नहीं होती। वे प्रभु की वाणी को ग्रन्थों में गूंथकर तैयार करते हैं। अपना हित चाहने वाले प्राणी संवेगी भव्य जीव कहलाते हैं, गुरु का उपदेश सुनने के लिए वे भी आ पहुँचे। प्रभु ने सागार धर्म पालने

वाले पुरुषों को श्रावक और महिलाओं को श्राविका तथा अनागार धर्म पालने वाले पुरुष को मुनि और महिला को आर्यिका के नाम से अभिहित किया है । इन्हीं का नाम चतुर्विध संघ है । इसी का दूसरा नाम तीर्थ है । इसके कर्ता होने से प्रभु तीर्थंकर कहलाये । नाम कर्म की ९३वीं प्रकृति तीर्थंकर है, उसका उदय होने से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है ।

जब भगवान तीर्थंकर बने तो चार घातिया कर्म पहले ही नष्ट हो चुके थे । फिर जितना आयुकर्म शेष था, उससे धर्म मार्ग का प्रवर्त्तन रूप तीर्थ चलाया तब आयु के अन्त में दोनो साता, असाता वेदनीय तथा नाम, गोत्र और आयु कर्मों का नाश किया । इन अघातिया कर्मों के नाश से शिवपद को प्राप्त किया । इस प्रकार आदि तीर्थंकर अनन्त काल तक अपने अनन्त चतुष्टय स्वरूप में विराजमान रहेंगे ।

षट् पद छन्द :

जिहां जरहा न मरणु जम्मु न हु व्याधि न वेयण
जहिं न देहु न थि नेहु ज्योतिमय तहठइ चेयण
जहठइ सुक्ख अनंत ज्ञान दंसणि अवलोवहि
कालु पणासइ सयलु सिद्ध पुणि कालहु खोवहि
जिसु वण्णु न गंधु न रसु फरसु सद्दहु भेदुन किही लहिउ
बुचराजु कहइ श्रीरिसह जिणु सुथिरु होइ तहठइ रहिउ ।।१५८।।

अर्थ—जहाँ (शिवपुरीमें) बुढ़ापा नहीं है, मरण भी नहीं है और न ही व्याधि और वेदना ही है, जहाँ शरीर नहीं है, स्नेह नहीं है, वहाँ ज्योतिमयी चेतना रहती है । जहाँ अनन्त सुख विद्यमान रहते हैं । जहाँ ज्ञान और दर्शन दोनों है, उनसे एक साथ देखा और जाना जाता है । जहाँ काल (मृत्यु) भी नष्ट हो जाता है समस्त सिद्ध काल (अवधि) को भी मिटा देते हैं अर्थात् वे अनन्त काल तक सिद्ध बने रहते हैं, जिनके वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श भी नहीं हैं, तथा जिनमें स्वर और शब्द का भेद भी नहीं पाया जाता । पण्डित बूचराज जी कहते हैं कि आदीश्वर प्रभु उस शिवस्थान पर (जाकर) स्थिर हो गये हैं ।

व्याख्या—संसार का जीवन पराधीन है । आयु कर्म से संबद्ध है । अतः नष्ट हो जाता है । स्वभाव नष्ट नहीं होता, विभाव नष्ट हो जाता है । बुढ़ापा जन्म, मरण, व्याधि स्नेह यह सब विभावों के नाम हैं । जीव के संसारी होने में पुदगल साधक रूप है । पुदगल कर्मों का नाश होना ही मोक्ष है । ज्ञान दर्शन का क्रम से उपयोग कराने में कारण कर्म

है । उसका अभाव होने से ज्ञान दर्शन उपयोग एक साथ होते हैं । पदार्थों के झलकने को ज्ञान कहते हैं, उस झलकन सहित आत्मा की झलकन को दर्शन कहते हैं । पदार्थ सभी स्वयं ही आकार दे देते हैं । वहाँ कोई विकल्प नहीं है ।

वहाँ मृत्यु रूप काल नहीं है । मृत्यु तो आयु पूर्ण होने से होती है । आयु है ही नहीं मरण कैसा? स्वकाल है, सो स्वभाव का अन्त न होने से परिणमन का अन्त नहीं है । अत: अनन्त काल तक एक रूप ही रहते हैं । गमन का कारण धर्मास्ति न होने से उनमें आगे जाने की शक्ति नहीं इसलिये वहीं ठहर जाते हैं । उस स्थान का नाम शिवपुरी है ।

इस प्रकार यह जीव कर्मों से मुक्त है परन्तु ज्ञानादि गुणों से अमुक्त है । ऐसा मुक्तामुक्त रूप है । इस प्रकार से आदि प्रभु ऋषभ जिनेश शिवपुरी गये ।

वस्तु छन्द :

राय विक्कम तणउ संवत्तु
नव्वासिय पनरसय सरदरुति आसउज वखाणहु
तिथि पडिवा सुकुल पखु सनिवासरु कर नखितु जाणहु ।
तिसि दिन वल्ह पसंठियउ मदनजुद्ध सविसेसु
कहत पढ़त निसुणत नरह जयउ स्वामि रिसहेसु ।।१५१।।

अर्थ—विक्रम राजा सम्बन्धी संवत् १५८९ था । शरद ऋतु थी, आश्विन का महीना कहा गया है । (उस दिन) तिथी प्रथमा (एकम) थी । शुक्ल पक्ष, शनिवार का दिन और कर (हस्त) नक्षत्र था । उसी दिन यह मदनयुद्ध नामक का विशेष ग्रन्थ वल्ह (बूचराज) कवि ने बनाकर पूर्ण (समाप्त) किया । जो इस ग्रन्थ को कहने, पढ़ने और सुनने वाले मनुष्य हैं, उनको श्री ऋषभेश स्वामी जयवंत करें । (संसार के दु:खों को दूर कर मुक्ति स्थान प्रदान करें) । इस प्रकार यह मदन युद्ध नामका ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

व्याख्या—इस प्रकार यह मदनयुद्ध नामका लघु ग्रन्थ समाप्त हुआ । इसके रचयिता वुल्ह बूचराज नामके उत्कृष्ट कवि हैं । यह ग्रन्थ देखने में लघु है लेकिन इसके अर्थ में गम्भीरता है ।

उन्होने इस ग्रन्थ की रचना अपने मन, वचन और काय की सफलता के लिए की है । इसका फल कर्मों का क्षय करके सुख प्राप्त करना

है। ऋषभ प्रभु ने सुख प्राप्त किया। इस ग्रन्थ को पढ़ने, सुनने और उच्चारण करने वालों को भी ऋषभ प्रभु सुख प्रदान करें और ऋषभदेव प्रभु सभी के हृदय में विराजमान रहें।

'इति मदन जुद्ध समाप्ति''

शब्दानुक्रमणिका

ध्यातव्य— प्रस्तुत प्रकरण में प्रयुक्त प्रथम अंक पद्य संख्या तथा द्वितीय अंक उसकी पंक्ति का सूचक है।

शब्द	पद्य / पंक्ति
अंगाडिय	– अंगड़ाई लेना 68/2
अंगि	– अंग 50/3
अंगेज	– स्त्री 72/2
अंगेजु	– स्वीकार किया 110/1
अंबि	– आम 37/3
अइसी	– ऐसी 32/5
अगणिझाल	अग्निज्वाला 130/2
अगाहु	– अगाध 131/3
अचार	– आचार 9/1
अछल	– छल रहित 52/6
अटल	– दृढ़ 76/2
अट्ठदस	– अठारह 71/4
अणिय	– अनीक (सेना) 130/1
अणिहाए	– बिना सहारा दिये 118/4
अति	– अत्यधिक 28/4
अदेसा	– ईर्ष्या 32/4
अधम्मपुरी	– अधर्मपुरी 21/1
अनंगु	– कामदेव 56/1
अनुप्रेक्षा	– भावना 133/3
अन्यायी	– अन्याय करने वाला 24/5
अपुव्वकरण	– अपूर्वकरण गुणस्थान 121/2
अप्पइ	– अर्पित किया 35/2
अप्पु	– अपने 35/2
अमिउ	– अमृत 4/3
अयाणु	– अनजान 56/1
अर्धमादु	– छत्र 44/4
अवगंजण	– मर्दन 121/3
अवगण्णइ	– अपमान करना 136/2
अवटंभ	– अवलम्बन 127/4
अवर	– दूसरा और 5/3
अवलोइ	– देखना 27/2
असिवर	– तलवार 41/2
अस्सपति	– अश्वपति 52/5
अहंमाण	घमण्ड 31/1
अहि	– सर्प 136/5
अहिल्या	– अहिल्या नामकी नारी 47/1
आउ	– आयु 42/3
आज्ञा	– आदेश 26/2
आदरु	– आदर, सम्मान 8/4
आपण	– अपनी 51/3
आयौ	– आया 51/6
आरत्तउ	– आरती 59/2
आरम्भ	– प्रारम्भिक 15/4
आवइ	– आयेंगे 34/5
आवर्त्तु	– आर्त्त 32/3
आसउज	– आश्विन मास 159/2
आसात	– दुख देने वाली 76/2
इरि	– द्वारा 49/5
इंद	– इन्द्र 47/1
इंदु	– चन्द्रमा 62/1
इक्क	– एक 4/2
इक्खाक	– कुल-इक्ष्वाकु वंश 1/2
इक्यारह	– ग्यारह 17/3
इसु	– इस 6/2

शब्द	पद्य / पंक्ति	शब्द	पद्य / पंक्ति
ईसु	– ईश्वर 36/1	कपटु	– कपट 7/5
ईसर	– ईश्वर 36	कपास	– रूई 90/3
उछलिंग	– उछलना 37/1	कमल	– कमल 3/3
उट्ठि	– उठना 59/2	कम्मफलु	– कर्मफल 127/6
उदर	– पेट 51/6	करंतह	– करने से 42/3
उद्धुरिय	– खुले हो आग 69/1	कर्कलिय	फड़फड़ाना 39/1
उद्योत	– प्रकाशित 64/3	करत	– करना 32/4
उनमतु	– अनुमति 123/1	करवाल	– तलवार 98/4
उपनी	– उपजी 123/1	करूरि	– क्रूर 108/3
उपाधि	– परिग्रह 5/2	कलकलाइ	– कलकलाना 109/3
उल्लासणु	– उल्लास उत्पन्न करना 127/2	कलहु	– कलह 109/3
		कलाप	– सजाना 38/1
उव्वण्ण	– उत्पन्न 1/2	कलिकाल	– कलियुग 69/2
उव्वरउ	– उबरना 53/5	कसि	– कृष्ण 46/3
उसभ	– वृषभ 139/2	कहं	– कहाँ 61/2
उहिउ	– अधिक 116/1	कहहु	– कहो 21/4
एक	– एक 72/2	कहेम	– कहना 23/2
एम	– ऐसे 34/1	काओ	– करें 1/4
एहु	– इस 4/4	काचे	– कच्चे 25/2
कउ	– का 18/2	काछि	– चुनकर 40/3
कंक	– एकपक्षी 77/1	कानि	– कानों से 5/5
कंचन	– सोना 25/2	कापडिय	– कपटी 62/4
कंचु	– काँच 51/2	कामरसि	– कामरस 5/2
कंद	– बाँधे, पहने 30/2	कागढ़	– शरीर रूपी किला 7/1
कंदप्पु	– कामदेव 136/1	काली	– काली नामकी देवी 48/2
कंदि	– युद्ध 135/1	किवि	– भी 5/3
कंधि	– कन्धा 129/3	किसिउं	– किसी 27/1
कंन	– किसको 61/1	किसु	– कृष्ण 61/3
कज्जेण	– कार्य करना 70/2	कुंजर	– हाथी 34/4
कटिह	– सेना 36/4	कुंडरीक	– पुण्डरीक ऋषि 50/1
कट्टिहइ	– सेना 64/4	कुंडल	– कानों का आभुषण 39/1
कड्ढंढनि	– निकाल लेना 78/4	कुंद	– कुन्द पुष्प 37/3
कण्ण	– कान 23/1	कुंदइ	– रोदन 136/2
कन्या	– कन्या 11/1	कुंभ	– घड़ा, कलश 17/4

शब्द	पद्य / पंक्ति
कुक्खि	– कोख 1/2
कुल	– वंश 3/3
कुसत्थ	– कुशस्त्र 13/1
कुसल्लान	– कुशलान 22/2
कुसुम	– पुष्प 40/3
कुसील	– कुशील नामक पाप 154/3
कुहाड	– कुल्हाड़ी 79/1
केहरि	– सिंह 34/4
केम	– कैसे 87/4
केरउ	– का 42/1
कोइल	– कोयल 37/3
कोटवाल	– कोतवाल 14/4
कोड़ाकोड़ी	– कोड़ाकोड़ी 71/4
कोद्दव	– कोदों 90/3
कोप	– क्रोध 68/3
कोवंडु	– धनुष 136/3
खडहडिउ	– हड़बड़ाकर 114/4
खनन	– खोदना 126/3
खबरि	– खबर, समाचार 31/2
खर	– गधा 12/1
खलिउ	– स्खलित 68/5
खाधु	– काट लेता है 30/2
खिद्दि	– शब्द 40/3
खिमा	– क्षमा 152/3
खिल्लइ	– खिलना 4/3
खिसतु	– भगते हुए 120/3
खोइय	– खो देना 116/4
खोजु	– अस्तित्व 110/2
खोजत	– खोजना 14/1
खोडि	– बन्ध्या 102/1
गंध	– सुगन्ध 34/4
गंधव्व	– गन्धर्व 57/2
गंवावउ	– व्यतीत किए 53/5
गजथट्ट	– हाथियों की भीड़ 88/1
गजपति	– हाथीपति 52/5
गडबडियउ	– गड़बड कर देना 68/4
गणहपति	– गणपति, गणधर 139/3
गलइ	– गले में 11/2
गलिय	– गलियाँ 25/2
गह	– ग्रह (रस्सी) 96/2
गहि	– ग्रहण करना 34/5
गुंथि	– गूँथना 36/1
गुज्झमंत	– गुप्त मन्त्रणा 45/1
गुड	– गुड़ 90/3
गुडि	– प्रसनन 36/1
गुणमाल	– गुणों की माला 11/2
गुणस्थान	– गुणस्थान (आत्मविकास के साधन) 133/5
गुरणायउ	– गुर्राया 68/2
गुवालु	– ग्वाला 98/3
गूजरि	– गोपी 46/7
गोतमि	– गौतम ऋषि 47/1
गौरी	– पार्वती 46/1
घट	– घटा 87/4
घणरव	– सघन शब्द 40/3
घणु	– घना 68/4
घरिहि	– घर में 8/1
घल्लिउ	– डाल दिया 63/1
घल्लियउ	– डाल दिया 104/1
घालइ	– डालना 4/4
घाल्या	– पकड़ा 135/1
घिरनी	– घेरनी, चकरी 102/4
घीउ	– घी 67/2
चंद	– चन्द्रमा 62/2
चंदवयणी	– चन्द्रवदन वाली 59/2
चडंर	– चंवर, पूँछ 99/4
चउत्थउ	– चौथा 13/4

शब्द		पद्य / पंक्ति
चउविहु	– चार प्रकार	140/1
चडिउ	– चढ़ा	30/2
चडियउ	– चढ़ना	68/3
चमकि	– चमकना	39/3
चर	– दूत	92/4
चम्म	– चमड़ा	90/3
चरड	– चोर, व्यभिचारी	26/1
चल्लाइउ	– चलाया	35/2
चविओ	– चयकर	1/1
चाउइ	– चढ़ना	29/3
चीर	– वस्त्र	39/1
चुंच	– चोंच	77/2
चुराई	– चोरी करना	47/1
चूतडि	– आम्र	30/2
चेयणराउ	– चेतन राजा	6/2
चोर	– चोर	24/5
छत	– छत्र	132/4
छंदि	– स्वच्छंद	62/2
छदमु	– छल, कपट	32/4
छल	– छल	48/2
छार	– राख	90/2
छींक	– छींक	90/2
छीजय	– क्षय होना	42/3
छेदु	– छेदकर	20/3
जंगम	– घूमने वाले	48/1
जंपइ	– बोलना	34/2
छविय	– छविवाला	132/4
छातु	– छाता	135/4
छोहु	– क्षोभ	129/2
जइसी	– जैसी	23/2
जक्ख	– यक्ष	62/3
जगजणणी	– संसार की माता	2/10
जगतु	– संसार	8/30
जटाधार	– जटाधारी	48/1
जती	– यति	18/20
जतीय	– यति	48/1
जब	– जब	32/2
जगदाग्नि	– जमदाग्नि नामक ऋषि	47/1
जम्मणु	– जन्म	4/5
जहडइ	– जहाँ डाह (ईर्ष्या)	27/1
जारु	– जार पुरुष, उपपति	24/5
जालु	– जाल	78/4
जिम	– जैसे	34/4
जिवइ	– जीवित	33/2
जीते	– जीत लेना	58/2
जीय	– जीव	15/2
जीही	– जीभ	17/5
जुअल	– युगल	3/2
जुद्ध	– युद्ध	2/1
जुहारु	– नमस्ते	21/1
जुवइ	– युवती	5/1
जोगी	– योगी	62/4
जोगीय	– जोगी	48/2
जोडि	– जोड़कर	34/2
जोसउ	– धन	134/1
ज्योति	– प्रकाश	98/2
झंकारु	– झनकार	97/3
झडपडहिं	– झटपट	76/4
झंखड	– पत्ते भरी धूल	89/2
झल्लरी	– झल्लरी नामक वाद्य	97/3
झाणु	– ध्यान	121/4
झुठु	– झूठ	32/1
झाला	– अग्नि की ज्वाला	77/3
झुल्लिय	– झूलने लगी	37/2
झल्लरी	– घंटा	97/3
झिल्लणु	– झेलना	127/4
ठइ	– स्थान	24/5

शब्द	पद्य / पंक्ति
ठार	– अठारह 133/3
ठामि	– स्थान 19/2
डई	– डाह (ईर्ष्या) 27/1
डहिउ	– जलना 119/1
डालि	– डालना 30/2
डिंगायउ	– डिगानी 61/2
ढंक	– एक पक्षी 77/1
ढंढोलिय	– ढूँढना 69/1
ढलंति	– डालना, गिरना 85/4
ढोवउ	– ठोकर मारना 128/2
ढालिउ	– डालना 67/2
ढुक्कु	– प्रवेश करना 95/1
णिग्गंथु	– निर्ग्रन्थ 146/3
णिरवाणि	– निर्वाण 1/4
णिल्लडिय	– ललाट, मस्तिष्क 68/1
णित्थारणु	– समाप्त 3/2
तइं	– उसका 61/1
तइसी	– उसी प्रकार 23/2
तकि	– देखकर 106/4
तणउ	– सम्बन्ध कारक विभक्ति का सूचक प्रत्यय 42/2
तमकिउ	– तमक गया 67/1
तरंडु	– नौका 153/3
तरुणि	– नवयुवती 37/3
तसइं	– त्रास देना 136/2
तसकर	– तसकर, चोर 40/2
तहिं	– वहाँ 8/4
ताडण	– ताडना 15/1
तारइ	– पार करना 153/8
तारायण	– तारागण 62/2
तालु	– ताली बजाई 114/4
तालो	– वज्र शस्त्र 123/3
तिक्ख	– तीक्ष्ण 39/1
तिणो	– तृण, सामान 46/7
तित	– उसी 16/2
तित्थयरू	– तीर्थंकर 3/1
तिन्नउ	– तीनों 65/1
तिन्ह	– उनकी 22/2
तिप्पि	– तृप्ति 24/2
तिम	– उसके 68/4
तिय	– स्त्री 16/2
तिलक	– तिलक 39/1
तिसु	– उसका 26/2
तुट्टि	– तोड़ना 76/4
तूरी	– वाद्य 97/3
तेइ	– उसको 5/5
तेउ	– तेज 42/2
तेणि	– उसने 10/2
त्रिदंडो	– त्रिदण्डी साधु 48/3
त्रिदश	– देव 13/5
थप्पिउ	– स्थापित 24/2
थापिउ	– स्थापित 11/2
थिति	– स्थिति 116/4
थिरू	– स्थित 146/5
थुणो	– स्तुति 48/6
थुति	– स्तुति 28/4
दंभु	– दम्भ नामका मंत्री 43/1
दंसण	– दर्शन 51/2
दरवेश	– पुण्यात्मा, द्वार पर खड़े रहने वाले भक्त जन 48/2
दव्वु	– द्रव्य 43/1
दहवट	– दशवाट, बारावाट 132/8
दहाइअे	– डूबे 39/3
दाउ	– दाँव 85/3
दावानलु	– जंगल की आग 34/3
दिन	– दिवस 25/2
दिपायउ	– दीप्त हुआ 138/3
दियडाह्यू	– दहाड़ना 29/4

शब्द	पद्य / पंक्ति
दिवसि	– दिन 12/2
द्धिगत	– सिद्धगत 127/4
दीठी	– दिखाई दी 23/2
दीठे	– दिखाई दे 9/1
दीनी	– देना, दी 11/1
दीपक	– दीपक 98/2
दीसइ	– दिखाई पड़ना 24/5
दुक्खु	– दुख 32/3
दुडाइयठ	– दौड़ा देना, भागा देना 71/3
दुड़े	– छिपे 62/5
दुसहु	– दुस्सह 45/7
दूत	– दूत 54/1
देखि	– देखना 19/3
देतउ	– देना 115/3
दोनउं	– दोनों 129/5
द्रोह	– किसी के विरोध में षड्यन्त्र करना 7/5
धंधइ	– उद्यम 5/2
धजा	– ध्वजा 39/2
धनुहर	– धनुर्धर 38/2
धयउ	– दौड़ना 32/3
धिट्ठ	– धृष्ट 16/1
धीय	– पुत्री 24/3
धीरज	– धीरज नामका कोतवाल 14/4
धुकंती	– धोंकती हुई 89/4
धुट	– धूर्त, जल्दी 132/7
ध्यातम	– अध्यात्म 93/1
नकटिउ	– नकटा 90/1
नखितु	– नक्षत्र 159/3
नट	– नर्तक 57/2
नट्ठी	– नष्ट हुई 123/2
नत्थियउ	– नाथा हुआ 97/2
नडिय	– भूल जाना 46/2
नफीरी	– युद्ध का बाजा 134/2
नयणि	– नयन 23/2
नयर	– नगर 15/2
नरपति	– राजा 52/5
नलिणी	– कमलिनी 76/2
नवमा	– नवम 5/5
नाभिराय	– ऋषभदेव तीर्थंकर के पिता का नाम 3/3
नारिंग	– नारंगी 100/2
निउलु	– नेवला 99/2
निकंदियउ	– तिरस्कृत करना 137/3
निद्दलणु	– नष्ट करना 127/1
निनेह	– निनाद, शोर 77/1
निपात	– पतन 135/1
निरजरउ	– निर्जरा 115/3
निरनउ	– निर्णय 126/3
निलटासु	– कोयल 99/1
निवर्ति	– निवृत्ति नामकी रानी 7/3
निस्साणु	– निशान 36/2
निहाले	– देखे 100/2
नीति	– आचरण, व्यवहार कुशलता 20/1
नृपति	– राजा 52/6
न्याय	– न्याय 20/1
पंखिय	– पक्षियों 48/6
पइसण	– प्रवेश 15/2
पउरिस	– पौरुष 102/2
पकारण	– प्रकार से 36/1
पक्खिय	– पक्षी 77/1
पचारि	– चलकर 118/1
पच्चारियउ	– फटकारना 72/2
परिव	– तरफ 28/1
पगि	– पैर, चरण 58/1

शब्द		पद्य / पंक्ति
पटंबर	–	रेशमी वस्त्र 41/1
पटराणी	–	पट्टमहिषी 8/1
पटल	–	आवरण 127/1
पट्टणि	–	पट्टण 14/2
पठाए	–	भेजे 12/2
पणच्च	–	डोरी 45/3
पणवउँ	–	प्रणाम करना 2/1
पणासए	–	नष्ट हो जाना 42/2
पत्तिहिं	–	पत्तों से 37/3
पय	–	पैर 12/1
पयज	–	साहस 87/4
पयड	–	प्रकट 24/1
परउपगारु	–	परोपकार 24/4
परकथा	–	दूसरे की कहानी 4/2
परचंड	–	प्रचण्ड 52/2
परणाई	–	परिणय किया 55/2
परतंति	–	परिणति 25/1
पततापहि	–	प्रताप से 64/3
परतापु	–	प्रताप 61/4
परपंचु	–	प्रपंच 27/1
परमत्थु	–	परमार्थ 4/1
परवर्ति	–	प्रवृत्ति नामक की रानी 7/3
परसु	–	स्पर्श 42/2
परिचिउ	–	परिचय 4/4
पलाइ	–	पलायन किया 45/8
पवण	–	प्रवण (चतुर) वायु 25/1
पवलिहि	–	पौली 98/7
पसारि	–	फैलाकर 12/1
पसुव	–	पशुओं 48/6
पहइ	–	पथ से 107/2
पहुत्ती	–	पहुँची 10/2
पहँती	–	पहुँची 99/3
पाइओ	–	प्राप्त किया 10/2
पाइक	–	पैदल सेना 37/3

शब्द		पद्य / पंक्ति
पायाल	–	पाताल 62/2
पालि	–	नट 17/1
पावक्क	–	पावक 98/2
पासा	–	जुआ खेलने का पासा 85/4
पावस	–	वर्षा ऋतु 68/4
पिज्जइ	–	पीना 4/3
पिट्ठि	–	पीठ 56/2
पिरथवी	–	पृथिवी 66/1
पिल्लणु	–	भगाना 127/3
पुच्छइ	–	पूछना 21/4
पुत्तु	–	पुत्र को 10/2
पुनरपि	–	पुनः फिर से 4/5
पुन्नपुरी	–	पुण्यपुरी 10/1
पुन्निया	–	पूर्ण हुई 57/5
पुव्वकरम	–	पूर्वकर्म 61/1
पूछण	–	पूछना 22/1
पेसाच	–	पिशाच 57/2
पोत	–	जहाज 100/3
पोरुष	–	पौरुष 61/5
पोष	–	उपासक 48/3
प्रगटावण	–	प्रगट करने के लिए 122/1
प्रजलंति	–	प्रज्वलित 62/2
प्रशंसना	–	प्रशंसा करना 18/1
प्रेरिउ	–	प्रेरणा देना 121/4
फुंकरिउ	–	फुंकार मारना 68/3
फेडइ	–	नष्ट करना 125/3
फोज	–	फौज, सेना 129/6
फोडि	–	फोड़ना 26/1
बंभदत्त	–	ब्रह्मदत्त नामका चक्रवर्ती 49/5
बइठउ	–	बैठा 7/5
बज्झे	–	बँधे 124/1

शब्द	पद्य / पंक्ति
बधिक	– हिंसक 78/3
बरहिं	– करते हैं 28/4
बलिभद्र	– बलभद्र 52/3
बलु	– बल, शक्ति 68/2
बसंत	– बसन्त ऋतु 37/1
बहुत्ती	– बहुत भी 18/1
बाण	– बाण 38/2
बात	– बात 21/3
बाधु	– बढ़ जाता है 30/1
बुचराजु	– कवि का नाम 158/6
बुलाई	– बुलाकर 21/3
बुलाए	– बुलाना 12/2
बोछू	– वृक्ष 30/2
भगवेंवेष	– गेरुअे वस्त्र 48/3
भग्गईं	– भाग गया 56/2
भजलि	– मंजिल, पड़ाव 92/3
भडु	– भट, वीर 7/4
भरउ	– भ्रष्ट 48/2
भरडाकउ	– भृष्टाकृति, गुप्त वेश 14/3
भरहि	– भरना 16/2
भल्लिय	– भाल पर, मस्तिष्क पर 39/1
भवियण	– भविजन 4/1
भागे	– भागना 15/2
भाट	– बन्दीजन 57/2
भानु	– सूर्य 46/1
भिंतरइ	– भीतर 6/2
भुवंग	– सर्प 38/2
भुवण्पति	– भुवनपति 29/1
भुवाल	– भूपाल, राजा 123/4
भृकुटि	– कटाक्ष 68/1
भेद	– रहस्य 20/3
भेरी	– नगाड़ा 97/3
मंतु	– मन्त्रणा 53/4
मइ	– मति, बुद्धि 17/2
मच्छरु	– मात्सर्य 30/1
मच्छु	– मत्स्य 68/5
मज्जहिं	– स्नान करना 82/4
मेठ	– मठ 51/2
मत्थइं	– माथा 123/3
मत्तिय	– मतवाला 5/3
मत्तु	– मात्र 68/4
मन्मथ	– कामदेव 39/2
मयण	– कामदेव 2/1, 52/6
मयमथु	– बैल 97/2
मरग्गिय	– मर गए 117/1
मलय	– चन्दन 37/3
मलियउ	– मलना 61/4
माइयउ	– समाना, समाहित होना 58/2
मानिनी	– मान करने वाली स्त्री 60/1
माया	– माया नामकी रानी 57/4
मायाजाल	– छल कपट का जाल 46/3
मारगु	– मार्ग 20/1
माहिं	– में 33/1
मिरदंग	– मृदंग नामक बाजा 97/3
मुहु	– मुख 60/1
मुत्तिमग्गु	– मुक्ति-मार्ग 115/3
मुसिउ	– लूटना 104/2
मृगमद	– कस्तूरी 39/1
मिरदंग	– मृदंग 87/3
मेदिनी	– पृथिवी 27/2
मेहुणु	– मैथुन 42/3
मोडि	– मोड़ना 60/1
मोहिनी	– मन को मोहन वाली 46/3
मोहु	– मोहित करना 7/4

शब्द		पद्य / पंक्ति
यह	– यह 27/3	
यहु	– यह 5/5	
रगि	– राग 50/3	
रडवडिड	– रिपट पड़ना 119/3	
रतपति	– कामदेव 3/5	
रदु	– दाँत 114/4	
रसाल	– आम 124/3	
रसु	– रस 5/5	
रहसु	– हर्ष 94/1	
रहिरा	– रह गये 50/3	
राइ	– रात्रि 149/2	
राई	– राजा 58/2	
राडि	– लड़ाइ 50/2	
राम	– अकेला 122/2	
रिसह	– ऋषभदेव तीर्थंकर 3/1	
रिसहेश	– ऋषभेश 54/1	
रिसि	– ऋषि 62/2	
रुद्द	– रुद्र, भयंकर 64/3	
रुति	– ऋतु 159/2	
रोम	– रोम 68/1	
रोस	– क्रोध 32/1	
लंकपति	– रावण 47/2	
लखमी	– लक्ष्मी, सौभग्यवती नारी 98/1	
लगु	– तक 33/2	
लग्गहि	– लगना 39/2	
लग्गिकरि	– लगकर 58/1	
लहरि	– लहर 68/3	
लिय	– लिया 68/3	
लेइ	– लेकर 7/5	
लें	– लेना 62/5	
वइं	– कामनी नारियाँ 49/3	
वधियउ	– बाँध लिया 6/1	
वइट्ठ	– बैठा 16/2	

शब्द		पद्य / पंक्ति
वखाणहु	– वर्णन करना 7/2	
वज्रदंड	– वज्रदंड 11/1	
वज्जिउ	– वर्जित 36/1	
वटपांडे	– मार्ग के चोर 137/4	
वडइं	– बड़ों की 66/1	
वणखंड	– वनप्रदेश 52/4	
वधावणउ	– वधावा देना 57/4	
वधूलिउ	– गोल-गोल वायु 89/2	
वल्ह	– कवि का नाम 159/4	
वांदरउ	– बन्दर 30/2	
वांवइ	– बाँबी 91/3	
वांवइ	– आम्र 99/2	
वागवाणी	– सरस्वती 2/1	
वाझुहु	– बँधा हुआ 91/1	
वाट	– रास्ता 16/1	
वाणी	– वाणी 17/2	
वाय	– वायु 89/2	
वासहि	– निवास स्थल 70/2	
विकलप्पु	– विकल्प 32/2	
विक्कम	– विक्रम संवत् 159/1	
विछोइय	– विक्षोभ 67/1	
विज्जुल	– बिजली 39/3	
विदारिउ	– विदीर्ण करना, खंड-खंड कर देना 110/4	
विद्याधर	– विद्याधर 62/3	
विरंचि	– ब्रह्मा 46/3	
विरख	– वृक्ष 76/2	
विवेक	– विवेक 53/2	
विश्वामित्र	– विश्वामित्र ऋषि 47/1	
वीडउ	– बीड़ा, पान का बीड़ा 35/1	
वीरचरण	– वीर प्रभु के चरण 50/5	
वृक्ष	– पेड़ 17/2	
वेणि	– चोटी 38/2	
संक	– शंका 8/2	

शब्द	पद्य / पंक्ति	शब्द	पद्य / पंक्ति
संकर	– शंकर, महादेव 46/1	सिखरहु	– सिर के ऊपर 50/2
संकल्प	– संकल्प, दृढ़ निश्चय 32/2	सिहिणि	– स्तन 40/1
संचरियउ	– संचार किया 19/1	सीझहिं	– सिद्ध होना 72/1
संजमश्री	– संयमश्री 55/2	सीय	– सीता 47/2
संडासी	– सड़सी 77/2	सील	– सच्चरित्र 43/1
संताप	– दुख 32/2	सुकल	– शुक्लध्यान 159/3
संपत्तो	– प्राप्त होना 1/4	सुगुरु	– सद्गुरू 146/3
संवूहि	– व्यूह रचना 86/2	सुणि	– सुनकर 29/1
सखाई	– सखा या मित्र 115/2	सुनरु	– उत्तम मनुष्य 37/3
सज्जिअ	– सज्जित 36/1	सुपनि	– स्वप्न में 24/5
सट	– जोर से 132/7	सुभ	– शुभ 28/2
सत्ति	– सत्यनामक राजा 11/1	सुभलक्षण	– शुभलक्षण 19/2
सत्तु	– शत्रु 43/1	सुमति	– सुमति नामकी कन्या 11/1
सभाइ	– स्वभाव 145/4	सुरज्ज	– सुराज्य 1/3
समप्पिउ	– समर्पित 24/3	सुरत	– श्रुति 135/5
समरु	– स्मारक, कामदेव 32/4	सुरभी	– गाय 98/3
समसरि	– बराबरी, तुलना 98/2	सुविचक्षण	– चतुर 19/3
समाइयइ	– समाहित होना 58/2	सुसर	– सुस्वर 50/3
सरकि	– सरकना 136/5	सुहमति	– शुभमति 115/1
सरप्पु	– श्राप 47/2	सेणिक	– श्रेणिक राजा 50/6
सरवण्णु	– सर्वज्ञ 58/2	सेवहु	– सेवा करना 146/3
सरवत्ति	– सर्वज्ञ 144/4	सोक	– शोक 32/2
सरवन्नि	– सर्वज्ञ 154/6	सोचकर	– सोच-विचार पूर्वक 12/2
सवइ	– सभी 27/2	सोवइ	– सोना, सोना था 12/1
सव्वट्ठ	– सर्वार्थसिद्धि 1/1	हउं	– मैं, हूँ 53/5
सहजि	– स्वाभाविक 138/1	हक्कारि	– बुलाकर 96/1
सहिय	– सहन करना 68/5	हणिउ	– मारना 104/1
सहु	– साथ 140/1	हम	– हम 33/2
सागर	– सागर 71/4	हर	– महादेव 36/2
साविड्डू	– सॉप 99/2	हरखु	– हर्षित होना 53/1
सायण	– असाता 156/5	हरि	– विष्णु 36/2
सार	– विशेषता 48/1	हुंति	– हुए 1/1
सालु	– शल्य 12/1	हेटिट्ठ	– दबाकर 108/4

●